भारत का विधि आयोग

मीडिया द्वारा विचारण

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अधीन स्वतंत्र वाक् और ऋजु विचारण

संबंधी

200वीं रिपोर्ट

अगस्त, 2006

न्यायमूर्ति
एम. जगन्नाथ राव
अध्यक्ष

भारत का विधि आयोग
शास्त्री भवन
नई दिल्ली-110 001
टेली. : 23384475
फैक्स : (011)23073864, 23388870
ई-मेल : सीएच.एलसी@एसबी.एनआईसी.इन

निवास :
1, जनपथ
नई दिल्ली-110 011
टेली. : 23019465

प्रिय श्री भारद्वाज जी,

मुझे "मीडिया द्वारा विचारण : दंड प्रक्रिया के अधीन स्वतंत्र वाक् बनाम ऋजु विचारण (न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 में संशोधन)" संबंधी विधि आयोग की 200वीं रिपोर्ट आपको प्रस्तुत करते हुए हार्दिक प्रसन्नता हो रही है । यह विषय संदिग्ध और अभियुक्त व्यक्तियों के बारे में, प्रिन्ट और इलेक्ट्रानिक मीडिया, दोनों में, अपराध और सूचना के व्यापक प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले प्रसारण को ध्यान में रखते हुए स्वप्रेरणा से लिया गया था । आज यह भावना है कि टेलीविजन और केबिल सेवाओं के व्यापक उपयोग की दृष्टि से, समाचारों के प्रकाशन के पूर्ण ढांचे में परिवर्तन हो गया है और ऐसे कई प्रकाशनों से संदिग्धों, अभियुक्तों, साक्षियों और न्यायाधीशों पर भी तथा साधारणतया, न्याय के प्रशासन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है । हमारी विधि के अनुसार कोई संदिग्ध/अभियुक्त ऋजु प्रक्रिया का हकदार है और न्यायालय में उसके दोषी साबित होने तक उसके निर्दोष होने की अवधारणा की जाती है । किसी को भी उसके मामले का विचारण प्रारंभ होने के समय तक पूर्व निर्णय देने या उस पर प्रतिकूल प्रभाव डालने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती ।

भारत के संविधान का अनुच्छेद 19(1)(क) वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की गारंटी देता है और अनुच्छेद 19(2) 'न्यायालय के अवमान' को सम्मिलित करते हुए विभिन्न मामलों के प्रयोजनों के लिए कानून द्वारा युक्तियुक्त निर्बन्धनों की अनुज्ञा देता है । अनुच्छेद 19(2) 'न्याय के प्रशासन' के प्रति निर्देश नहीं करता किंतु न्याय के प्रशासन में

बाधा डालने के प्रति न्यायालय का अवमान अधिनियम, 1971 की धारा 2 में 'दांडिक अवमान' की परिभाषा में और उसकी धारा 3 में उसे अवमान के बराबर मानते हुए स्पष्ट रूप से निर्देश किया गया है । अतः ऐसे प्रकाशन, जो न्याय के प्रशासन में बाधा डालते हैं या बाधा डालने का प्रयास करते हैं उस अधिनियम के अधीन न्यायालय अवमान के बराबर है और यदि ऐसी बाधा का निवारण करने के लिए उस अधिनियम के उपबंध वाक् स्वतंत्रता पर युक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित करते हैं, तो ऐसे निर्बन्धन विधिमान्य होंगे ।

इस समय न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 की धारा 3(2), उसके नीचे दिए गए स्पष्टीकरण के साथ पठित, के अधीन, प्रकाशनों को पूर्ण उन्मुक्तता प्रदान की गई है चाहे वे किसी आपराधिक मामले में न्याय के अनुक्रम में प्रतिकूल रूप से बाधा डालते हों, यदि प्रकाशन की तारीख तक कोई आरोप पत्र या चालान फाइल नहीं किया गया है अथवा यदि समन या वारंट जारी नहीं किया गया है । ऐसे प्रकाशन केवल तभी अवमान होंगे यदि दांडिक कार्यवाही वास्तव में लंबित है अर्थात् यदि न्यायालय द्वारा प्रकाशन की तारीख तक आरोप पत्र या चालान फाइल किया गया है अथवा समन या वारंट जारी किए गए हैं । प्रश्न यह है कि क्या इसको हमारे संविधान के अधीन इस प्रकार बने रहने की अनुज्ञा दी जा सकती है अथवा संदिग्धों या अभियुक्तों से संबंधित प्रकाशनों को उनकी गिरफ्तारी की तारीख से विनियमित किया जाना चाहिए ।

उच्चतम न्यायालय और हाउस आफ लार्ड्स स्वीकार करते हैं कि प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले प्रकाशन न्यायाधीशों पर अवचेतन रूप से प्रभाव डाल सकते हैं :

उच्चतम न्यायालय और हाउस आफ लार्ड्स ने, जैसा कि हमारी रिपोर्ट के अध्याय 3 में इंगित किया गया है, यह संप्रेक्षण किया है कि ऐसे प्रकाशन, जो किसी संदिग्ध या अपराधी पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले हैं, न्यायाधीशों को भी अवचेतन रूप से प्रभावित कर सकते हैं । ऐसा जमानत मंजूर करने या उससे इन्कार करने या विचारण के प्रक्रम पर हो सकता है ।

उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि 'गिरफ्तारी' के पश्चात् प्रतिकूल रूप से प्रभाव डालने वाले प्रकाशन आपराधिक अवमान हो सकते हैं :

1926 और 1952 के न्यायालय अवमान अधिनियमों के अधीन, 1971 के अधिनियम के असमान, 'सिविल' या 'आपराधिक' अवमान की कोई विनिर्दिष्ट परिभाषा नहीं थी । इसके अतिरिक्त 1971 के पूर्व सामान्य विधि सिद्धांतों को किसी व्यक्ति की 'गिरफ्तारी' के पूर्व भी किए गए प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले प्रकाशनों को अवमान के रूप में मानने के लिए लागू किया गया था । वस्तुतः कुछ न्यायालय प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले प्रकाशनों को 'आपराधिक अवमान' के रूप में मान रहे थे चाहे वे प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्र.सू.रि.) के फाइल किए जाने के पश्चात् किए गए थे । किंतु उच्चतम न्यायालय ने, सुरेन्द्र महांति बनाम उड़ीसा राज्य (क्रि.अपील 107/56 तारीख 19-1-1961) में तथापि यह अभिनिर्धारित किया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट का फाइल किया जाना किसी आपराधिक मामले के लंबित होने का प्रारंभिक बिन्दु नहीं हो सकता । उस निर्णय के कारण, प्रथम सूचना रिपोर्ट के फाइल किए जाने के पश्चात किए गए प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले प्रकाशन को अवमान की विधि से उन्मुक्तता प्राप्त हो गई । किंतु 1969 में उच्चतम न्यायालय ने ए. के. गोपालन बनाम नूरदीन 1969(2) एस सी सी 734 (15 सितंबर, 1969) में अभिनिर्धारित किया कि किसी व्यक्ति की 'गिरफ्तारी' के पश्चात् किया गया कोई प्रकाशन अवमान हो सकता है यदि वह संदिग्ध या अभियुक्त पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला है । यह आज भी विधि बनी हुई है जहां तक अनुच्छेद 19(1)(क), 19(2) और अनुच्छेद 21 का संबंध है ।

सान्याल समिति के 'गिरफ्तारी' को प्रारंभिक बिन्दु के रूप में स्वीकार करने वाले प्रस्ताव (1963) को संयुक्त समिति द्वारा छोड़ दिया जाना :

इस बीच 1963 से अवमान की नई विधि बनाने के प्रयास किए गए थे । सान्याल समिति (1963) ने, जिसे इस प्रयोजन के लिए नियुक्त किया गया था, यह संप्रेक्षण करते हुए भी कि हमारा देश बहुत विशाल है और एक स्थान पर किए गए प्रकाशन अन्य स्थानों पर नहीं पहुंचते हैं, यह सिफारिश की कि जहां तक आपराधिक मामलों का संबंध है,

'गिरफ्तारी' की तारीख निर्णायक तारीख है और उसे किसी आपराधिक कार्रवाई के 'लंबित' होने के प्रारंभिक बिन्दु के रूप में माना जाना चाहिए । उसने माना कि किसी प्रथम सूचना रिपोर्ट का फाइल किया जाना प्रारंभिक बिन्दु नहीं हो सकता । सान्याल समिति ने एक विधेयक, 1963 को यह कहते हुए तैयार किया कि प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले प्रकाशन आपराधिक अवमान हो सकते हैं यदि आपराधिक कार्यवाहियां 'आसन्न' है । किंतु तदुपरान्त छह वर्ष तक कुछ नहीं हुआ ।

सान्याल समिति द्वारा तैयार किए गए 1963 के विधेयक का संसद् की संयुक्त समिति (1969-70) (भार्गव समिति) द्वारा पुनर्विलोकन किया गया था और संक्षेप में कुछ विचार विमर्श के पश्चात्, संयुक्त समिति ने 'आसन्न' कार्यवाहियों के प्रति निर्देश को छोड़ने का विनिश्चय किया । ऐसा दो कारणों से किया गया था (1) यह कि 'आसन्न' शब्द अस्पष्ट था और (2) ऐसी अस्पष्ट अभिव्यक्ति असम्यक् रूप से वाक् स्वतंत्रता को निर्बन्धित कर सकती है यदि विधि को ' आसन्न' आपराधिक कार्यवाहियों को लागू किया जाता है । संयुक्त समिति की सिफारिशों का परिणाम 1971 अधिनियम के रूप में में हुआ, जिसने 'आसन्न' कार्यवाहियों या 'गिरफ्तारी' के प्रति सभी निर्देशों का, किसी आपराधिक कार्रवाई के लंबित होने के प्रारंभिक बिन्दु के रूप में, लोप कर दिया ।

संयुक्त समिति के कारण दोषरहित हैं :

संयुक्त समिति का ध्यान ए. के. गोपालन बनाम नूरदीन (1969) (2) एस.सी.सी. 734) तारीख 15 सितंबर, 1969 में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय की ओर, जब उसने 23 फरवरी, 1970 को अपनी रिपोर्ट दी, आकर्षित नहीं किया गया था । एक बार जब उच्चतम न्यायालय के निर्णय ने 'गिरफ्तारी' की तारीख को किसी दांडिक कार्यवाही के लंबित होने के रूप में मानने के लिए नियत कर दिया तो विधि में कोई अस्पष्टता नहीं रह गई । उस मामले में उच्चतम न्यायालय ने एक तरफ संदिग्ध और अभियुक्त के अधिकारों को और प्रकाशन के लिए मीडिया के अधिकारों को भी संतुलित किया है । वस्तुतः, ए. के. गोपालन के मामले में समाचार पत्र का संपादक और अन्य, जिन्होंने गिरफ्तारी के पश्चात् प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले प्रकाशन किए थे, अवमान के लिए दोषसिद्ध किए गए थे जबकि

श्री ए. के. गोपालन को, जिसने प्रथम सूचना रिपोर्ट के पश्चात् किंतु गिरफ्तारी के पूर्व कथन किया था, उच्चतम न्यायालय द्वारा माफी दे दी गई थी ।

ए. के. गोपालन बनाम नूरदीन (1969) में उच्चतम न्यायालय द्वारा यथा उपर्युक्त विधि की घोषणा और प्रतियोगी अधिकारों के उचित संतुलन के अतिरिक्त, गिरफ्तारी की तारीख यू.के. कटेम्प्ट आफ कोर्ट एक्ट, 1981 और न्यू साउथ वेल्स ला कमीशन द्वारा तैयार किए गए 2003 के विधेयक के अधीन प्रारंभिक बिन्दु है । स्काटलेंड, आयरलेंड, आस्ट्रेलिया की निर्णयज विधि में या उन देशों के विधि आयोगों की रिपोर्टों में भी यह घोषित किया गया है कि यदि किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया गया है या यदि आपराधिक कार्यवाहियां आसन्न हैं तो प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले प्रकाशन आपराधिक अवमान होंगे । हॉल वर्सस एसोसिएटेट न्यूजपेपर 1978 एस.एल.पी. 241 (स्काटलेंड) में अग्र निर्णय को अन्य अधिकारिताओं में अपनाया गया है और वह ' गिरफ्तारी' को, किसी आपराधिक मामले के लंबित होने के प्रारंभिक बिन्दु के रूप में, नियत करने के लिए 1981 के यू. के. एक्ट में उपबंध का आधार है ।

24 घंटे का नियम :

हाल के अनुसार, एक बार किसी व्यक्ति को गिरफ्तार कर लिया जाता है, तो वह न्यायालय की ' देखभाल' और संरक्षण के भीतर आ जाता है क्योंकि उसे 24 घंटे के भीतर न्यायालय में प्रस्तुत किया जाना होता है । भारत में, यह संविधान के अनुच्छेद 22(2) के अधीन गारंटी है । गिरफ्तारी को प्रारंभिक बिन्दु के रूप में नियत करने के लिए कारण यह है कि, यदि कोई प्रकाशन गिरफ्तारी के पश्चात् किसी व्यक्ति के चरित्र, पूर्व दोषसिद्धि या संस्वीकृति आदि के प्रति निर्देश करते हुए किया जाता है तो उससे उस व्यक्ति के मामले पर जमानत की कार्यवाहियों में भी, जब इस बारे में यह विवाद्यक उठता है कि जमानत मंजूर की जानी है या उससे इन्कार किया जाना है या इस बारे में कि कौन सी शर्तें अधिरोपित की जानी हैं और क्या पुलिस प्रतिप्रेषण या न्यायिक प्रतिप्रेषण होना चाहिए, प्रतिकूल रूप से प्रभाव पड़ेगा । ऐसे प्रकाशन विचारण पर भी, जब वह बाद में होता है, प्रभाव डाल सकते हैं । इसको आधार बनाते हुए, इग्लैंड और अन्य देशों में ' गिरफ्तारी'

और ' सन्निकट' कार्यवाहियों को पर्याप्त माना जाता है और उन्हें अस्पष्ट नहीं माना जाता है । इस संदर्भ में हमने कई देशों में तुलनात्मक विधि के प्रति निर्देश किया है, जहां संविधान वाक् स्वतंत्रता के संरक्षण की साथ ही संदिग्ध व्यक्तियों और अभियुक्त की स्वतंत्रता की भी गारंटी देता है ।

यहां दूसरा महत्वपूर्ण मुद्दा यह है कि, वर्ष 1978 में, मेनका गांधी बनाम भारत संघ, ए.आई.आर. 1978 एस.सी. 597 में उच्चतम न्यायालय ने उस विधि में, जैसी वह 1978 के पूर्व थी, यह कहने के लिए परिवर्तन कर दिया कि जहां तक अनुच्छेद 21 में निर्दिष्ट स्वतंत्रता का संबंध है अनुच्छेद 21 में 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' ऋजु, न्यायोचित और युक्तियुक्त प्रक्रिया होनी चाहिए । यह 1970 में, जब संयुक्त समिति ने अपनी रिपोर्ट दी थी, विधि नहीं थी और न ही तब जब 1971 का अधिनियम अधिनियमित किया गया था ।

अतः संयुक्त समिति के संप्रेक्षण और उसका ' सन्निकट' शब्द का लोप करना और उसका 'गिरफ्तारी' को प्रारंभिक बिन्दु के रूप में न मानना संवैधानिक रूप से विधिमान्य प्रतीत नहीं होते हैं ।

लंबित होने का प्रारंभिक बिन्दु ' गिरफ्तारी' होना चाहिए और आरोप पत्र का फाइल किया जाना नहीं : धारा 3 के स्पष्टीकरण का संशोधित किया जाना :

हमारे देश की सांविधानिक विधि में परिवर्तनों की दृष्टि से, जैसा उच्चतम न्यायालय द्वारा ए.के.गोपालन बनाम नूरदीन 1969(2) एस.सी.सी.734 में घोषित किया गया है, जहां तक अनुच्छेद 19(1)(क) और अनुच्छेद 21 का संबंध है, और मेनका गांधी मामले (ए.आई.आर. 1978 एस.सी. 597) में जहां तक अनुच्छेद 21 का संबंध है, 1970 में संयुक्त समिति द्वारा ' सन्निकट' शब्द का लोप करने के लिए और ' गिरफ्तारी' को प्रारंभिक बिन्दु न मानने के लिए दिए गए दो कारण अब मान्य नहीं रह गए हैं । अधिनियम की धारा 3(2) और धारा 3 के नीचे दिया गया स्पष्टीकरण, जैसा अब है, दांडिक कार्यवाही को लंबित के रूप में केवल तभी मानते हैं यदि कोई आरोप पत्र या चालान फाइल किया जाता है या यदि समन अथवा वारंट ' गिरफ्तारी' के समय जारी किए जाते हैं । इसमें धारा 3 के नीचे दिए गए स्पष्टीकरण में ' गिरफ्तारी' खंड को जोड़कर सुधार किया जाना

है क्योंकि वह दांडिक कार्यवाही के 'लंबित' होने की गणना करने के लिए प्रारंभिक बिन्दु है, जैसा 1981 के यू.के. एक्ट में है और जैसा दूसरे देशों के प्रस्तावों में विधि सुधार आयोगों द्वारा प्रस्तावित किया गया है । इसके अतिरिक्त जब ऐसा कोई संशोधन किया जाता है, तो ऐसा नहीं है कि किसी प्रकाशन को गिरफ्तारी के पश्चात् अनुज्ञा दी ही न जाए । केवल उनको, जो प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले प्रकाशन हैं, अनुज्ञा नहीं दी जाती है । इसके अतिरिक्त गिरफ्तारी की या चालान फाइल किए जाने की जानकारी के बिना या समन अथवा वारंट की जानकारी के बिना किए गए प्रकाशन संरक्षित रहते हैं ।

इस रिपोर्ट में हमने यूरोपियन कोर्ट के सन्डे टाइम्स जजमेंट 1979 (2) ई.एच.आर.आर. 245 पर, जो ' सिविल' मामले से संबंधित प्रकाशनों के पूर्व निर्बन्धन से संबंधित है और वहां निर्बन्धन पूर्ण है न कि अस्थाई, व्यापक रूप से विचार विमर्श किया है । वह मामला वर्तमान संदर्भ में पूर्व उदाहरण नहीं है ।

'गिरफ्तारी' के बारे में, उसके प्रारंभिक बिन्दु होने के रूप में, उक्त संशोधन का प्रस्ताव धारा 3 में 'सक्रिय' शब्द का, बजाय 'लंबित दांडिक कार्यवाही' के, उपयोग करके और धारा 3 के नीचे स्पष्टीकरण में 'गिरफ्तारी' शब्द अंतःस्थापित करके, किया गया है ।

उच्च न्यायालय में सीधे, न कि अधीनस्थ न्यायालय से निर्देश द्वारा, पहुंचना :

पुनः, जैसा कि इस समय है यदि अधीनस्थ न्यायालयों का दांडिक अवमान है तो अधीनस्थ न्यायालयों को उच्च न्यायालय को निर्देश करना होगा । यह प्रक्रिया न्यायाधीशों को बदनाम करने के लिए (धारा 2) (ग)(i) और साथ की धारा 2 (ग) (ii) और (iii) के अधीन न्याय के प्रशासन में बाधा डालने वाले प्रकाशनों को लागू होती है । जहां तक प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले प्रकाशनों के अवमान का संबंध है, अधीनस्थ न्यायालय द्वारा उच्च न्यायालय को निर्देश की प्रक्रिया जटिल और अधिक समय लगाने वाली है । अतः हमने धारा 10क का प्रस्ताव किया है कि जहां तक धारा 2(ग) (ii) और (iii) के अधीन प्रकाशन के रूप में अधीनस्थ न्यायालयों के आपराधिक अवमान का संबंध है, अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा किसी निर्देश की आवश्यकता नहीं है, किंतु यह कि उच्च

न्यायालय को सीधे महाधिवक्ता की सहमति के बिना पहुंचा जा सकता है । यह विधेयक की धारा 10क में उपबंधित है ।

उच्च न्यायालय का यू. के. एक्ट, 1981 की धारा 4(2) के आधारों पर, 'स्थगन' आदेश पारित करने के लिए सशक्त होना :

इसके अतिरिक्त न्यायालयों को प्रकाशन के बारे में 'स्थगन' आदेश पारित करने के लिए सशक्त करने की आवश्यकता है । जबकि न्यायालयों ने अभिनिर्धारित किया है कि पूर्व निर्बन्धन के आदेश पारित करने के लिए शर्तों को केवल कठोर दशाओं के अंतर्गत अनुज्ञा दी जानी चाहिए, तथापि, यह स्वीकार किया जाता है कि प्रकाशन का अस्थायी स्थगन पारित किया जा सकता है । यह संपूर्ण विश्व में कई अधिकारिताओं में स्वीकार किया जाता है । 'स्थगन आदेश' पारित करने के लिए, 1981 का यू.के. एक्ट 'प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली गंभीर जोखिम' का विशेष सबूत दर्शित करने की अपेक्षा करता है । हमने स्पष्ट शब्दों में प्रस्ताव किया है कि 'गंभीर प्रतिकूल प्रभाव डालने की वास्तविक जोखिम' को कोई 'स्थगन' आदेश जारी किए जाने के पूर्व साबित किया जाना होगा । हमने इसका धारा 14क में प्रस्ताव किया है । किसी स्थगन आदेश का कोई भंग धारा 14ख के अधीन अवमान होगा । ऐसी प्रक्रिया यू.के. में भी विद्यमान है ।

मीडिया में ऐसे प्रकाशनों की, जो प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले हैं, गणना रिपोर्ट के अध्याय 9 में कथित है :

रिपोर्ट अध्याय 9 में इस बारे में भी वर्णन करती है कि कौन से प्रकाशन, यदि किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी के पश्चात् किए गए हों तो, प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले हो सकते हैं । इसको कई देशों में और भारत में भी मान्यता प्राप्त है कि ऐसे प्रकाशन, जो चरित्र पूर्व दोषसिद्धियों, संस्वीकृतियों को निर्दिष्ट करते हैं, दांडिक अवमान हो सकते हैं । फोटोग्राफों का प्रकाशित करना किसी पहचान परेड में उचित पहचान में बाधा डाल सकता है । विभिन्न अन्य पहलू भी हैं, जैसे अभियुक्त का दोषी या निर्दोष होने का निर्णय करना या साक्षियों आदि पर भरोसा न करना, जो अवमान हो सकते हैं । हमने इन पहलुओं को मीडिया के लिए जानकारी के विषय के रूप में निर्दिष्ट किया है । हमने संभावित साक्षियों

का साक्षात्कार करने वाले मीडिया के आश्चर्यजनक रुख और उस प्रचार के बारे में भी, जो पुलिस द्वारा किया जाता है और अन्वेषणकारी पत्रकारिता के बारे में भी विचार विमर्श किया है ।

हमने एक प्रारूप विधेयक भी संलग्न किया है ।

पत्रकारों का विधि के कतिपय पहलुओं के बारे में प्रशिक्षित होना :

हमने यह भी सिफारिश की है कि पत्रकारों को संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) में वाक् स्वातंत्र्य और अनुच्छेद 19(2) के अधीन अनुज्ञेय निर्बन्धनों, मानव अधिकारों, मानहानि और अवमान की विधि से संबंधित विधि के कतिपय पहलुओं के बारे में प्रशिक्षित किए जाने की आवश्यकता है । हमने यह भी सुझाव दिया है कि ये विषय पत्रकारिता के लिए पाठ्य विवरण में और पत्रकारिता संबंधी विशेष डिप्लोमा या डिग्री पाठ्यक्रम में सम्मिलित किए जाने चाहिए और विधि को प्रारंभ किया जाना चाहिए ।

रिपोर्ट महत्वपूर्ण है और उन विवाद्यकों के संबंध में व्यापक है जो आज हमारे देश में निर्णायक हैं, जहां तक आपराधिक न्याय का संबंध है और हमारा विचार है, जैसा कि इस समय है कि दांडिक न्याय के सम्यक् प्रशासन में पर्याप्त हस्तक्षेप हो रहा है और इसका संसद् द्वारा उपचार किया जाना होगा ।

सादर,

भवदीय,

(एम. जगन्नाथ राव)

श्री एच. आर. भारद्वाज,
केंद्रीय विधि और न्याय मंत्री,
भारत सरकार,
शास्त्री भवन,
नई दिल्ली ।

अनुक्रमणिका

अध्याय	विषय वस्तु	पृष्ठ सं.
1.	प्रस्तावना	4-9
2.	मानव अधिकार कन्वेंशन, मैड्रिड सिद्धांत, भारतीय संविधान और न्यायालय अवमान अधिनियम	10-31
3.	क्या मीडिया के प्रकाशन अवचेतन रूप से न्यायाधीशों पर प्रभाव डालते हैं ?	32-43
4.	कैसे 'सन्निकट' आपराधिक कार्यवाहियों को न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 से अपवर्जित किया गया : ऐतिहासिक और महत्वपूर्ण विचारधारा	44-58
5.	क्या संसदीय संयुक्त समिति यह कहने में ठीक थी कि 'सन्निकट' शब्द अस्पष्ट है ?	59-70
6.	क्या 'ए. के. गोपालन बनाम नूरदीन' (1969) (एस.सी.) 'सन्निकट' को केवल गंभीर अपराधों के लिए गिरफ्तारियों के संबंध में सुसंगत बनाता है ? चौबीस घंटे के नियम का क्या प्रभाव है ?	71-89
7.	अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, न्यायालय का अवमान, स्वतंत्रता के संरक्षण के लिए सम्यक् प्रक्रिया	90-122
8.	न्यायालय द्वारा प्रकाशनों का स्थगन : चाहे प्रतिकूल प्रभाव पड़ने का सारवार खतरा जैसा यू.के. में है, समुचित नहीं है ?	123-150
9.	मीडिया प्रकाशनों के किन प्रवर्गों को संदिग्ध या अभियुक्त के लिए प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले के रूप में मान्यता दी जाती है ?	151-172

10. न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 के उपबंधों का संशोधन करने के लिए सिफारिशें 173-181

(धारा 3 में 'सक्रिय' और 'गिरफ्तारी' का और नई धारा 14क में 'सारवान प्रतिकूल प्रभाव का वास्तविक खतरा' का प्रयोग करते हुए)

उपाबंध 1 प्रारूप विधेयक 182-186
न्यायालय अवमान (संशोधन) विधेयक, 2006

अध्याय 1

प्रस्तावना

आजकल लगभग प्रत्येक दिन 'मीडिया द्वारा विचारण' विषय पर सिविल अधिकार संबंधी कार्यकर्ताओं, संवैधानिक वकीलों, न्यायाधीशों और शिक्षाविदों द्वारा चर्चा की जाती है । टेलीविजन और केबिल चैनलों के अस्तित्व में आने से वह प्रचार, जो किसी अपराध या संदिग्ध अथवा अपराधी व्यक्ति को मीडिया से प्राप्त होता है, खतरनाक अनुपातों तक पहुंच गया है । निर्दोष व्यक्तियों की बिना किसी कारण के निंदा की जा सकती है अथवा उन व्यक्तियों को, जो दोषी हैं, निष्कपट विचारण नहीं मिल सकता है या विचारण के पश्चात् उन्हें उससे उच्चतर दंडादेश मिल सकता है जिसके वे योग्य हैं । जहां तक दांडिक न्याय के प्रशासन का संबंध है मीडिया में बहुत कम निर्बन्धन लगे हुए प्रतीत होते हैं ।

हम इस बात से अवगत हैं कि हमारे जैसे प्रजातांत्रिक देश में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एक महत्वपूर्ण अधिकार है किंतु ऐसा अधिकार जहां तक स्वयं संविधान का संबंध है पूर्ण नहीं है, जब कि संविधान ने अनुच्छेद 19(1)(क) के अधीन स्वतंत्रता प्रदान की है तभी विधान मंडल को विभिन्न विषयों के हितों में, जिसमें से एक न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 द्वारा यथा संरक्षित न्याय का ऋजु प्रशासन है, अधिकार पर युक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित करने की अनुज्ञा दी है ।

यदि मीडिया किसी आपराधिक मामले के बारे में जानकारी प्रकाशित करने में अनिर्बन्धित या वस्तुतः अनियमित स्वतंत्रता का प्रयोग करता है और जनता के मस्तिष्क पर और उन पर, जिन्हें अभियुक्त के दोष पर न्याय निर्णयन करना है, प्रतिकूल प्रभाव डालता है और यदि वह किसी संदिग्ध अथवा किसी अभियुक्त को इस रूप में सामने लाता है कि मानो वह पहले से ही न्यायालय में विचारण के पर्याप्त पूर्व दोषी न्यायनिर्णीत कर दिया गया है, तो अपराधी पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है । वास्तव में चाहे अंततोगत्वा उस व्यक्ति को न्यायालय में सम्यक् प्रक्रिया के पश्चात् दोषमुक्त कर दिया जाता है, किंतु ऐसी

दोषमुक्ति अभियुक्त की सोसाइटी में खोई हुई छवि को पुनः निर्मित करने में सहायता नहीं कर सकती ।

यदि विचारण के पूर्व किसी संदिग्ध या किसी अभियुक्त के बारे में मीडिया में अत्यधिक प्रचार से ऋजु विचारण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है या यदि उसके परिणामस्वरूप उसका ऐसे व्यक्ति के रूप में, जिसने अपराध किया है, चरित्र चित्रण होता है तो वह "न्याय के प्रशासन" में असम्यक् हस्तक्षेप के बराबर होगा, जो मीडिया के विरुद्ध न्यायालय के अवमान के लिए कार्यवाहियों की मांग करेगा । व्यक्तियों या प्रतिवादियों के एकान्तता संबंधी अधिकारों के बारे में अन्य मुद्दे भी उठ सकते हैं । लोक प्रसिद्ध व्यक्ति, जिनके मानहानि के विरुद्ध न्यून अधिकार होते हैं, आर. राजगोपाल बनाम तमिलनाडु राज्य : ए.आई.आर. 1995 एस.सी. 264 में निर्णय के पश्चात्, मीडिया के हाथों में अधिक खतरे में और आक्रमण योग्य हैं ।

अभिव्यक्ति और मत की स्वतंत्रता पर यू. एन. स्पेशल रिपोर्टियर को मिसेज बर्नाडेट और मिस्टर माइकल मैककेविट पर प्रेस द्वारा किए गए बहुत सहन करने वाले आक्रमण के विरुद्ध ब्रिटिश आयरिश वाच से, जो आयरलैंड के लिए राष्ट्रीय प्रभुसत्ता की वकालत करता रहा था और जो समिति के माध्यम से स्वतः अवधारण के आयरिश जनता के अधिकार का दावा कर रहा था, एक प्रस्तुतिकरण प्राप्त हुआ था । यह मीडिया था जिसने इन दोनों व्यक्तियों को 15 अगस्त, 1998 की ओमाघ बम डालने की घटना से, जिसने 29 व्यक्तियों को मार दिया था, जोड़ना प्रारंभ किया था । मीडिया का आक्रमण पुलिस द्वारा इन दोनों व्यक्तियों से प्रश्न पूछने के पूर्व ही प्रारंभ हो गया था । ब्रिटिश आयरिश वाच द्वारा यू. एन. रिपोर्टियर को दिए गए प्रतिवेदन की अंतर्वस्तुएं नीचे उद्धृत की गई हैं जो उस बारे में पूर्ण रूप से सही प्रतीत होती हैं जो हमारे देश में मीडिया के साथ हो रहा है । प्रतिवेदन में निम्नलिखित कहा गया था-

> "संगम द्वारा दोषिता पक्षपात के कारण खटकने वाली युक्ति है । बर्नाडेट और माइकल मैक केविट के मामले में मीडिया ने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है जिसमें

आयरलैंड में लगभग कोई भी इस संभावना को समर्थन देने के लिए तैयार नहीं है कि वे निर्दोष हो सकते हैं, इस तथ्य के होते हुए भी कि उनमें से किसी से भी ओमाग बम डालने के संबंध में पुलिस द्वारा प्रश्न तक नहीं पूछा गया है । उन्हें पिशाच जैसा बना दिया गया है, ... ऐसा मीडिया प्रचार स्वतः को पराजित करने वाला है । यदि मीडिया बार-बार व्यक्तियों पर उनके विरुद्ध कोई साक्ष्य प्रस्तुत किए बिना अभियोग लगाता है तो वह जनता के मस्तिष्क में उनके दोष की ऐसी निश्चितता उत्पन्न कर देता हे कि, यदि वे व्यक्ति वास्तव में आरोपित किए जाते हैं और उनका विचारण किया जाता है तो उन्हें ऋजु विचारण की कोई आशा नहीं होती । जब ऐसे विचारण असफल हो जाते हैं तो अपराध के पीड़ितों के लिए कोई उपचार नहीं रह जाता है । समान रूप से प्रतिवादी अभिमुक्त किए जा सकते हैं किंतु उनका अच्छा नाम खो जाता है । (दि ब्लेंकेट, जर्नल आफ प्रोटेस्ट एंड डिसेंट, नवंबर, 2000 देखिए) ।

दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा मदर डेरी फूड्स एंड प्रोसेसिंग लिमिटेड बनाम जी-टेलीफिल्म्स (वाद नं. 1543/2003 तारीख 24-1-2005 में आई.ए. 8185/2003) में उद्धृत मि. एन्ड्रू वैल्से के उसके लेख 'पत्रकारिता और नैतिकता, क्या वे सह-अस्तित्व में रह सकते हैं' (मीडिया नीतिशास्त्र : एक दार्शनिक अवलोकन, मैथ्यू कीरन द्वारा संपादित) में संप्रेक्षण आज की मीडिया की सही कार्य स्थिति का यथोचित वर्णन करते हैं । वह कहता है कि पत्रकारिता और नैतिकता पृथक स्तर पर हैं । जब कि पत्रकार इसके लिए सुभिन्न सुगमकर्ता हैं कि लोकतांत्रिक प्रक्रिया बिना बाधा के कृत्य करे, मीडिया को 'शुद्धता, ईमानदारी, सत्यता, उद्देश्यपूर्णता, ऋजुता, संतुलित रिपोर्टिंग, सामान्य जनता के आदर या स्वायत्तता के गुणों का अनुसरण करना होता है । ये सभी लोकतांत्रिक प्रक्रिया के भाग हैं । किंतु व्यवहारिक आधारों अर्थात् सफल कैरियर का अनुसरण, प्राप्त की जाने वाली प्रोन्नति, निर्धारित समय में कार्य करने की अनिवार्यता और विकास लक्ष्यों को पूरा करके मीडिया प्रबंधकों को संतुष्ट करना, को 'अभद्र रूप से प्रस्तुत की जाने वाली छोटी कहानियां छापने

के लिए प्रलोभन' के कारकों के रूप में मान्यता दी जाती है । कहानियां बेचने के प्रलोभन में, जो कुछ प्रस्तुत किया जाता है वह वह है 'जिसमें जनता रुचि रखती है' बजाय उसके 'जो जनता के हित में है' ।

संदिग्धों और अभियुक्त से पृथक, पीड़ितों और साक्षियों तक को अत्यधिक प्रचार और उनकी एकान्तता के अधिकार पर आक्रमण से कष्ट सहना पड़ता है । पुलिस को मीडिया द्वारा हलके रूप में प्रस्तुत किया जाता है और इससे उनकी नैतिकता को भी पीड़ा होती है । उस दिन के पश्चात जब अपराध की रिपोर्ट प्रकाशित की जाती है, मीडिया कहता है कि 'पुलिस के पास कोई संकेत नहीं है' । तत्पश्चात् जो भी गपसप मीडिया शासकीय अभिकरणों द्वारा अन्वेषण की लाइन के बारे में एकत्र करता है, वह उस जानकारी के संबंध में ऐसा प्रचार करता है कि वह व्यक्ति, जिसने अपराध किया है, सुरक्षित स्थानों को दूर जा सकता है । मीडिया से पुलिस पर दबाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता जाता है और उस प्रक्रम पर पहुंच जाता है जहां पुलिस अपनी प्रसिद्धि बचाने के लिए जनता में कुछ न कुछ कहने के लिए अपने आपको विवश अनुभव करती है । कभी-कभी जब, ऐसे दबाव के नीचे, पुलिस ऐसी कहानी के साथ आगे आती है कि उसने संदिग्ध को गिरफ्त में ले लिया है और यह कि उसने संस्वीकृति दे दी है, तो 'प्रथम बार समाचार देने' की मदें प्रारंभ हो जाती है और मीडिया में कुछ ही यह जानते हुए प्रतीत होते हैं कि विधि के अधीन, पुलिस के सामने संस्वीकृति दांडिक विचारण में ग्राह्य नहीं है । यदि एक बार संस्वीकृति पुलिस और मीडिया दोनों के द्वारा प्रकाशित कर दी जाती है तो संदिग्ध का भविष्य समाप्त हो जाता है । जब वह मजिस्ट्रेट के सामने संस्वीकृति को वापस लेता है तो जनता कल्पना करती है कि वह व्यक्ति झूठा है । इस प्रकार सम्यक् प्रक्रिया की संपूर्ण कार्यवाही विकृत और भ्रमपूर्ण हो जाती है ।

मीडिया साक्षियों के लिए अन्य समस्याओं का भी सृजन करता है । यदि साक्षी की पहचान प्रकाशित हो जाती है तो साक्षियों के अभियुक्त या उसके सहयुक्तों दोनों से और साथ ही पुलिस से भी दबाव के अधीन आने का खतरा हो जाता है । प्रारंभिक प्रक्रम पर

साक्षी वापस जाना और कीचड़ से बाहर आना चाहते हैं । उस समय साक्षी का संरक्षण गंभीर घटना होती है । इससे पक्षद्रोही साक्षी के साक्ष्य की ग्राह्यता के बारे में और इस बारे में कि विधि को साक्षियों को उनके कथनों का परिवर्तन करने से निवारित करने के लिए संशोधित किया जाना चाहिए, प्रश्न उत्पन्न होता है । पुनः यदि संदिग्ध के चित्र मीडिया में दर्शित किए जाते हैं तो अभियुक्त की पहचान करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन संचालित 'शिनाख्त परेड' के दौरान समस्याएं उठ सकती हैं ।

कभी-कभी मीडिया समरूप अन्वेषणों को संचालित करता है और ऐसे व्यक्तियों पर उंगली उठाता है जो निर्दोष हो सकते हैं । वह अन्वेषण प्रक्रिया में, उसके पूरा होने के पूर्व ही दोष निकालने की कोशिश करता है और यह जनता के मस्तिष्क में शासकीय अन्वेषण तंत्र की दक्षता के बारे में संदेह उत्पन्न करता है । प्रिन्ट और इलेक्ट्रॉनिकी मीडिया के बीच भयंकर प्रतियोगिता चल रही है, बहुसंख्या में कैमरों से संदिग्धों या अभियुक्त पर प्रकाश डाला जाता है और पुलिस को संदिग्धों या अभियुक्त को उनके परिवहन यानों से कोर्ट में या विपर्येन ले जाने की भी अनुज्ञा नहीं दी जाती है । भारतीय प्रेस परिषद् ने समय-समय पर मार्गदर्शक सिद्धांत जारी किए हैं और कुछ मामलों में वह कार्रवाई भी करती है । किंतु चाहे माफियां प्रकाशित किए जाने के लिए निदेशित की जाती हैं किंतु वे इस प्रकार प्रकाशित की जाती हैं कि या तो वे माफियां नहीं होती हैं या माफियां समाचार पत्रों में ऐसे स्थानों पर प्रकाशित की जाती हैं जो बहुत महत्वपूर्ण नहीं होते ।

इन परिस्थितियों से पृथक् मूलतः इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि एक तरफ मीडिया की वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा संदिग्ध और अभियुक्त के सम्यक् प्रक्रिया संबंधी अधिकारों के बीच सही संतुलन स्थापित किया जाए । संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क), अनुच्छेद 19(2), अनुच्छेद 21 और अनुच्छेद 14 सही संतुलन स्थापित करने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । जैसा कि हम आगे आने वाले अध्यायों में दर्शित करेंगे, वर्तमान न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 उस विधि की दृष्टि से जो उच्चतम न्यायालय द्वारा दो निर्णयज मामलों में, एक ए. के. गोपालन बनाम नूरदीन 1969(2)एस.सी.सी. 734

और दूसरा मेनका गांधी बनाम भारत संघ ए.आई.आर. 1978 एस.सी. 597 है, घोषित की गई है, कुछ परिवर्तनों की अपेक्षा करता है । इन निर्णयों ने प्रतियोगी मौलिक अधिकारों के बीच संतुलन किया है जिन पर उस समय ध्यान नहीं दिया गया था या जो उस समय उपलब्ध नहीं थे जब संयुक्त संसदीय समिति (1969) ने सान्याल समिति (1963) द्वारा तैयार किए गए विधेयक में कुछ कठोर परिवर्तन किए थे । इन विवाद्यकों पर विचार किया जाना है ।

इसके अतिरिक्त हमारे पास प्रेस के प्रकाशनों पर पूर्व निर्बन्धन संबंधी यूरोपियन न्यायालय द्वारा विनिश्चित सन्डे टाइम्स मामला, (यू.के.) कन्टेंप्ट आफ कोर्ट एक्ट, 1981 और कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड तथा अन्य देशों के विधि आयोगों की रिपोर्टें हैं, जिन्होंने प्रतियोगी मौलिक अधिकारों के बीच समान संतुलन करने की कोशिश की है ।

ऊपर वर्णित समस्याओं को ध्यान को रखते हुए भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, अनुच्छेद 19, अनुच्छेद 21 के निर्वचन में कठोर परिवर्तन, जो उच्चतम न्यायालय के निर्णयों और अन्य अधिकारिताओं में लाए गए या प्रस्थापित सुधारों के कारण सामने आए हैं, हमने स्वप्रेरणा से उठाए हैं ।

हम बहुत से महत्वपूर्ण विवाद्यकों पर, जो वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा दंड विधि के अधीन ऋजु विचारण के लिए सम्यक् प्रक्रिया के अधिकार से संबंधित हैं, अगले अध्यायों में विचार विमर्श करेंगे ।

(इस अध्याय में और अगले अध्यायों में, जहां कहीं हम किसी दांडिक कार्यवाही में निष्कपट विचारण के लिए 'सम्यक् प्रक्रिया' शब्द का प्रयोग करते हैं, वहां उससे हमारा अभिप्राय अनुच्छेद 21 के अधीन विधि द्वारा स्थापित उस प्रक्रिया से है, जो ऋजु, न्यायसंगत और युक्तियुक्त है तथा मनमानी या उच्च न्यायालय द्वारा यथा विनिश्चित भारत संविधान के अनुच्छेद 14 की अतिक्रामक नहीं है । (ऊपर निर्दिष्ट मेनका गांधी का मामला)।

अध्याय 2

मानव अधिकार कन्वेंशन, मैड्रिड सिद्धांत, भारतीय संविधान और न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971

हमारी दंड विधि और आपराधिक विधिशास्त्र इस सिद्धांत पर आधारित हैं कि न्यायालय में आरोपित किसी व्यक्ति का दोष युक्तियुक्त संदेह से परे साबित किया जाना है और यह कि अभियुक्त के निर्दोष होने की, जब तक कि उसके प्रतिकूल जनता में, न्यायालय में, किसी अभियुक्त के लिए सभी विधिक रक्षोपायों का अनुपालन करते हुए, साबित नहीं हो जाता है, उपधारणा की जाती है । केवल इतना ही नहीं अभियुक्त को शांत रहने का मूल अधिकार भी प्राप्त है । कई संविधानों के लिए सामान्य अभियुक्त के संवैधानिक अधिकार से वह अधिकार उद्‌भूत होता है कि अभियुक्त को स्वयं को अपराध में फसाने के लिए विवश नहीं किया जा सकता । यह भी कारण है कि पुलिस को दी गई संस्वीकृति किसी न्यायालय में अग्राह्य है ।

शांत रहने के अधिकार पर हमारी एक सौ अस्सी वीं रिपोर्ट (2001) जिसका नाम "भारत के संविधान का अनुच्छेद 20(3) और शांत रहने का अधिकार" है, में ब्यौरेवार विचार किया गया है । प्रारंभ में यह आवश्यक है कि अंतर्राष्ट्रीय कन्वेंशनों, मैड्रिड सिद्धांतों और हमारे संविधान तथा न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 में यथा अंतर्विष्ट मानव अधिकारों से संबंधित मौलिक संकल्पनाओं पर विचार किया जाए ।

मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (1948) :

संदिग्धों और अभियुक्त के कतिपय अधिकार हैं जो आधारभूत मानव अधिकार हैं । उनके बारे में मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (1948) के विभिन्न अनुच्छेदों में स्पष्ट रूप से निर्देश किया गया है ।

उस घोषणा का अनुच्छेद 3 कथन करता है कि प्रत्येक के पास जीवन, स्वतंत्रता और शरीर की सुरक्षा का अधिकार है ।

अनुच्छेद 10 किसी अभियुक्त के " किसी स्वतंत्र और निष्पक्ष अधिकरण द्वारा उसके अधिकारों और बाध्यताओं के और उसके विरुद्ध किसी दांडिक आरोप के अवधारण में ऋजु और सार्वजनिक सुनवाई के पूर्ण समानता" के अधिकार के बारे में है ।

सार्वभौमिक घोषणा का अनुच्छेद 11 निर्दोष होने की उपधारणा किए जाने के अधिकार के बारे में है और यथा निम्नलिखित है-

"अनुच्छेद 11(1). दांडिक अपराध से आरोपित प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार है कि उसके बारे में तब तक निर्दोष होने की उपधारणा की जाए जब तक कि वह किसी ऐसे लोक विचारण में, जिसमें उसे उसकी प्रतिरक्षा के लिए आवश्यक सभी गारंटी प्राप्त हों, विधि के अनुसार दोषी साबित नहीं हो जाता है ।

(2) कोई भी किसी ऐसे कार्य या लोप के कारण, जो राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय विधि के अधीन किसी दंडनीय अपराध का गठन नहीं करता है, उस समय जब वह किया गया है, किसी दंडनीय अपराध का दोषी नहीं माना जाएगा । न ही उसके ऊपर उस शास्ति से, जो उस समय जब दंडनीय अपराध किया जाता है, लागू है, भारी शास्ति अधिरोपित की जाएगी ।"

अनुच्छेद 12 व्यक्ति के एकांतता अधिकारों के बारे में है और निम्न प्रकार पढ़ा जाता है :

"अनुच्छेद 12. कोई भी, उसकी एकांतता, परिवार, गृह या पत्राचार में मनमाने ढंग से बाधा डाले जाने, उसके सम्मान और प्रसिद्धि पर आक्रमण किए जाने के, अधीन नहीं होगा । प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी बाधा डाले जाने और आक्रमण किए जाने के विरुद्ध विधि के संरक्षण का अधिकार है ।"

इनके अतिरिक्त, अनुच्छेद 9 कथन करता है कि " कोई भी मनमाने ढंग से गिरफ्तारी, निरोध या निर्वासन के अध्यधीन नहीं किया जाएगा ।"

जहां तक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का संबंध है, मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा का अनुच्छेद 19 निम्नलिखित पढ़ा जाता है :

"अनुच्छेद 19. प्रत्येक व्यक्ति को मत और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार है : इस अधिकार के अंतर्गत बिना बाधा के मत बनाने की स्वतंत्रता और किसी मीडिया के माध्यम से और सीमांतों का ध्यान रखे बिना सूचना तथा विचार मांगने, प्राप्त करने और देने की स्वतंत्रता है ।"

सिविल और राजनैतिक अधिकारों संबंधी अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966 :

अंतर्राष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकारों संबंदी प्रसंविदा, 1966 (आई.सी.सी.पी.आर.) का भारत द्वारा 1976 में अनुसमर्थन किया गया था और वह अनुच्छेद 14(2) में यथा निम्नलिखित कथित करती है :

"अनुच्छेद 14(2). दांडिक अपराध से आरोपित प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार होगा कि उसके बारे में तब तक निर्दोष होने की उपधारणा की जाए जब तक कि वह विधि के अनुसार दोषी साबित नहीं हो जाता है ।"

अनुच्छेद 14(3) का खंड (छ) व्यक्ति के महत्वपूर्ण अधिकार " स्वयं के विरुद्ध साक्ष्य देने के लिए या दोष संस्वीकार करने के लिए विवश न किया जाना" के प्रति निर्देश करता है ।

किसी दांडिक विचारण में अंतर्राष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकारों संबंधी प्रसंविदा के अनुच्छेद 14(3) के उक्त खंड (छ) से पृथक् सूचीबद्ध कई अन्य रक्षोपाय हैं :

"अनुच्छेद 14(3) : प्रत्येक व्यक्ति को उसके विरुद्ध किसी दांडिक आरोप का अवधारण करने में निम्नलिखित न्यूनतम गारंटियों का, पूर्ण समानता में, अधिकार होगा :

(क) उसके विरुद्ध आरोप की प्रकृति और कारण को तत्परता से और ब्यौरेवार उस भाषा में जो वह समझता है, सूचित किए जाने का ;

(ख) अपनी प्रतिरक्षा की तैयारी के लिए पर्याप्त समय और प्रसुविधाएं पाने का और अपनी पसंद के परामर्शी के साथ संसूचित करने का ;

(ग) बिना असम्यक् विलंब के विचारण किए जाने का ;

(घ) उसकी उपस्थिति में विचारण किए जाने का और व्यक्तिगत रूप से या अपनी पसंद की विधिक सहायता के माध्यम से स्वयं की प्रतिरक्षा करने का ; यदि उसके पास विधिक सहायता नहीं है तो इस अधिकार के सूचित किए जाने का ; और किसी भी दशा में, जहां न्याय के हित ऐसी अपेक्षा करते हैं और किसी ऐसे मामले में, यदि उसके पास संदाय करने के पर्याप्त साधन नहीं हैं, तो उसके द्वारा संदाय किए बिना, उसे समनुदेशित विधिक सहायता प्राप्त करने का ;

(ङ) उसके विरुद्ध साक्षियों की परीक्षा करने या परीक्षा करवाए जाने का और उसकी ओर से साक्षियों को हाजिर कराने और परीक्षा करने का उन्हीं शर्तों के अधीन जो उसके विरुद्ध साक्षियों की हैं ;

(च) किसी निर्वचक की, यदि वह न्यायालय में प्रयुक्त भाषा को समझ नहीं सकता है या बोल नहीं सकता है तो निःशुल्क सहायता प्राप्त करने का ;

(छ) अपने विरुद्ध साक्ष्य देने या दोष संस्वीकार करने के लिए विवश न किए जाने का ।"

अनुच्छेद 4 किशोरों के विशेष अधिकारों के प्रति निर्देश करता है और कथन करता है :

"अनुच्छेद 4 : किशोर व्यक्तियों की दशा में प्रक्रिया ऐसी होगी जो उनकी आयु और उनके पुनर्वास को प्रोन्नत करने की वांछनीयता का ध्यान रखेगी ।"

अनुच्छेद 15 अपेक्षा करता है कि "कोई व्यक्ति किसी ऐसे कार्य के लिए दंडित नहीं किया जाएगा, जो उस समय कोई अपराध नहीं था जब वह किया गया था ।"

यूरोपीय प्रसंविदा :

मानव अधिकारों और मूलभूत स्वतंत्रताओं संबंधी यूरोपियन प्रसंविदा, 1950, अनुच्छेद 10(1) में, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के बारे में, सार्वभौमिक घोषणा के अनुच्छेद 19 के आधारों पर, उसी अधिकार की घोषणा करती है । किंतु अनुच्छेद 10(2) निर्बन्धनों के बारे में है :

"10(2) : इन स्वतंत्रताओं का प्रयोग, चूंकि उनके साथ कर्तव्य और उत्तरदायित्व हैं, ऐसी औपचारिकताओं, शर्तों, निर्बन्धनों या शास्तियों के, जो विधि द्वारा विहित की गई हैं और राष्ट्रीय सुरक्षा, राज्यक्षेत्रीय ईमानदारी या सार्वजनिक सुरक्षा के हित में किसी प्रजातांत्रिक समाज में अव्यवस्था या अपराध के निवारण के लिए, स्वास्थ्य या नैतिकता के संरक्षण के लिए, दूसरों की प्रसिद्धि के संरक्षण के लिए, विश्वास में प्राप्त सूचना के प्रकट करने के निवारण के लिए या प्राधिकार के और विशेष रूप से न्यायपालिका के बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं, अधीन हो सकता है ।"

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के बारे में अनुच्छेद 10(1) के उपर्युक्त अधिकार को उस प्रसंविदा के निम्नलिखित अनुच्छेदों के साथ पढ़ा जाना है :-

(क) अनुच्छेद 2 : जीवन का अधिकार : (1) प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के अधिकार का विधि द्वारा संरक्षण किया जाएगा । किसी को भी किसी न्यायालय के दंडादेश के निष्पादन में के सिवाय, जो कि उस अपराध की उसकी दोषसिद्धि के लिए होगा जिसके लिए इस शास्ति का विधि द्वारा उपबंध किया गया है, साशय उसके जीवन से वंचित नहीं किया जाएगा ।

(ख) अनुच्छेद 5 : स्वतंत्रता और सुरक्षा का अधिकार : प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता और स्वयं की सुरक्षा का अधिकार है । किसी को भी उसकी स्वतंत्रता से, निम्नलिखित मामलों में और विधि द्वारा यथा विहित के अनुसार के सिवाय वंचित नहीं किया जाएगा ; खंड (क) किसी व्यक्ति के, सक्षम न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि के पश्चात्, विधिपूर्ण निरोध के प्रति निर्देश करता है । खंड (ख) से खंड (च) तक गिरफ्तारी और निरोध की रीति के बारे में है ।

अनुच्छेद 5(2) गिरफ्तार किए गए व्यक्ति के ऐसी भाषा में जो वह समझता है, उसकी गिरफ्तारी के कारणों और उसके विरुद्ध किसी आरोप को तत्परता से सूचित किए जाने के अधिकार के बारे में है ।

अनुच्छेद 5(3) से (5) तक गिरफ्तारी और निरोध से प्रासंगिक अधिकारों के प्रति निर्देश करते हैं ।

(ग) अनुच्छेद 6 : ऋजु विचारण का अधिकार : यह निम्न प्रकार है -

(1) प्रत्येक व्यक्ति, उसके सिविल अधिकारों और बाध्यताओं अथवा उसके विरुद्ध किसी दांडिक आरोप के अवधारण में युक्तियुक्त समय के भीतर विधि द्वारा स्थापित स्वतंत्र और निष्पक्ष अधिकरण द्वारा ऋजु और सार्वजनिक सुनवाई का हकदार है ।

....

....

(2)किसी दांडिक अपराध से आरोपित प्रत्येक व्यक्ति के बारे मे यह उपधारणा की जाएगी कि वह तब तक निर्दोष है जब तक कि वह विधि के अनुसार दोषी साबित नहीं हो जाता है ।

(3) दांडिक अपराध से आरोपित प्रत्येक व्यक्ति के निम्नलिखित न्यूनतम अधिकार हैं :

(क) उसके विरुद्ध अभियोग की प्रकृति और कारण को उस भाषा में जो वह समझता है, तत्परता से और ब्यौरेवार सूचित किए जाने का ;

(ख) अपनी प्रतिरक्षा की तैयारी के लिए पर्याप्त समय और प्रसुविधाएं पाने का ;

(ग) बिना असम्यक् विलंब के विचारण किए जाने का ;

(घ) व्यक्तिगत रूप से या अपनी पसंद की विधिक सहायता के माध्यम से स्वयं की प्रतिरक्षा करने का या ; यदि उसके पास विधिक सहायता के लिए संदाय करने के पर्याप्त साधन नहीं हैं, तो उसे निःशुल्क दिए जाने का जब न्याय के हित ऐसी अपेक्षा करते हैं ;

(ङ) उसके विरुद्ध साक्षियों की परीक्षा करने या परीक्षा करवाए जाने का और उसकी ओर से साक्षियों को हाजिर कराने और परीक्षा करने का उन्हीं शर्तों के अधीन, जो उसके विरुद्ध साक्षियों की हैं ;

(च) किसी निर्वचक की, यदि वह न्यायालय में प्रयुक्त भाषा को समझ नहीं सकता है या बोल नहीं सकता है तो निःशुल्क सहायता प्राप्त करने का ।

अनुच्छेद 7 :

"(1) कोई भी किसी ऐसे कार्य या लोप के कारण, जो राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय विधि के अधीन किसी ऐसे दांडिक अपराध का गठन नहीं करता है, उस समय जब वह किया गया है, किसी दांडिक अपराध का दोषी अभिनिर्धारित नहीं किया जाएगा ।

(2) ....

....

अनुच्छेद 8 : निजी और पारिवारिक जीवन के लिए आदर का अधिकार :

(1) प्रत्येक व्यक्ति को अपने निजी और पारिवारिक जीवन, अपने घर और अपने पत्राचार के लिए आदर करने का अधिकार है ।

(2) लोक प्राधिकारी द्वारा इस अधिकार के प्रयोग में, सिवाय उसके जो विधि के अनुसार है और किसी प्रजातांत्रिक समाज में राष्ट्रीय सुरक्षा, सार्वजनिक सुरक्षा या देश के आर्थिक कल्याण में अव्यवस्था या अपराध के निवारण के लिए स्वास्थ्य और नैतिकता के संरक्षण के लिए या अधिकारों के संरक्षण और अधिकारों की स्वतंत्रता और दूसरों की स्वतंत्रता के लिए आवश्यक है, कोई बाधा नहीं डाली जाएगी ।"

अमेरिकन मानव अधिकार संबंधी अमेरिकन प्रसंविदा, 1969 और अफ्रिकन मानव अधिकार और जनता के अधिकार संबंधी चार्टर में समरूप उपबंध हैं ।

मीडिया और न्यायिक स्वतंत्रता के बीच संबंध पर मैड्रिड सिद्धांत (1994)

40 विशिष्ट विधि विशेषज्ञों और मीडिया प्रतिनिधियों के समूह का, अंतर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग (अं.वि.आ.) द्वारा, उसके केंद्र में न्यायाधीशों और वकीलों की स्वतंत्रता के लिए संयोजन किया गया था और यूनिसेफ की स्पेनिश कमेटी मैड्रिड, स्पेन में 18-20, जनवरी, 1994 के बीच मिली । इस बैठक के उद्देश्य निम्नलिखित थे :

(1) न्यायपालिका की स्वतंत्रता संबंधी संयुक्त राष्ट्र सिद्धांत, 1985 द्वारा गारंटीकृत रूप में मीडिया और न्यायिक स्वतंत्रता के बीच संबंध की परीक्षा करना ।

(2) अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और न्यायिक स्वतंत्रता के बीच संबंध को संबोधित करते हुए सिद्धांतों को बनाना ।

(2) ....

....

अनुच्छेद 8 : निजी और पारिवारिक जीवन के लिए आदर का अधिकार :

(1) प्रत्येक व्यक्ति को अपने निजी और पारिवारिक जीवन, अपने घर और अपने पत्राचार के लिए आदर करने का अधिकार है ।

(2) लोक प्राधिकारी द्वारा इस अधिकार के प्रयोग में, सिवाय उसके जो विधि के अनुसार है और किसी प्रजातांत्रिक समाज में राष्ट्रीय सुरक्षा, सार्वजनिक सुरक्षा या देश के आर्थिक कल्याण में अव्यवस्था या अपराध के निवारण के लिए स्वास्थ्य और नैतिकता के संरक्षण के लिए या अधिकारों के संरक्षण और अधिकारों की स्वतंत्रता और दूसरों की स्वतंत्रता के लिए आवश्यक है, कोई बाधा नहीं डाली जाएगी ।"

अमेरिकन मानव अधिकार संबंधी अमेरिकन प्रसंविदा, 1969 और अफ्रिकन मानव अधिकार और जनता के अधिकार संबंधी चार्टर में समरूप उपबंध हैं ।

मीडिया और न्यायिक स्वतंत्रता के बीच संबंध पर मैड्रिड सिद्धांत (1994)

40 विशिष्ट विधि विशेषज्ञों और मीडिया प्रतिनिधियों के समूह का, अंतर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग (अं.वि.आ.) द्वारा, उसके केंद्र में न्यायाधीशों और वकीलों की स्वतंत्रता के लिए संयोजन किया गया था और यूनिसेफ की स्पेनिश कमेटी मैड्रिड, स्पेन में 18-20, जनवरी, 1994 के बीच मिली । इस बैठक के उद्देश्य निम्नलिखित थे :

(1) न्यायपालिका की स्वतंत्रता संबंधी संयुक्त राष्ट्र सिद्धांत, 1985 द्वारा गारंटीकृत रूप में मीडिया और न्यायिक स्वतंत्रता के बीच संबंध की परीक्षा करना ।

(2) अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और न्यायिक स्वतंत्रता के बीच संबंध को संबोधित करते हुए सिद्धांतों को बनाना ।

मीडिया प्रतिनिधियों के समूह और विधिवेत्ताओं ने 'उद्देशिका' में यह कथन करते हुए कि 'मीडिया की स्वतंत्रता, जो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अभिन्न भाग है, विधि के शासन द्वारा शासित किसी लोकतांत्रिक समाज में अनिवार्य है और यह कि यह न्यायाधीशों का उत्तरदायित्व है कि वे मीडिया की स्वतंत्रता को उनके पक्ष में मूल उपधारणा को लागू करके और मीडिया की स्वतंत्रता पर केवल ऐसे निर्बन्धनों को, जो अंतर्राष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकारों संबंधी प्रसंविदा ("अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा") द्वारा प्राधिकृत हैं और विशिष्ट विधि में विनिर्दिष्ट हैं, अनुज्ञा देते हुए मान्यता दें और प्रभावी बनाएं, इस बात पर जोर दिया कि-

> "मीडिया की यह बाध्यता है कि वह अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा और न्यायपालिका की स्वतंत्रता द्वारा संरक्षित व्यक्तियों के अधिकारों का आदर करे" ।

यह उन सिद्धांतों के प्रति निर्देश करता है जिनका अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के संरक्षण के "न्यूनतम" मानकों के रूप में प्रारूपण किया गया है ।

आधारी सिद्धांत :

(1) मीडिया की स्वतंत्रता को सम्मिलित करते हुए अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता (प्रसंविदा के अनुच्छेद 19 में यथापरिभाषित) प्रत्येक समाज की, जो लोकतांत्रिक होने का दावा करता है, अनिवार्य बुनियादों में से एक का गठन करती है । यह मीडिया का कृत्य और अधिकार है कि वह जनता के लिए सूचना इकट्ठी करे और उस तक उसे पहुंचाए और निर्दोष होने की उपधारणा का अतिक्रमण किए बिना विचारण के पूर्व, दौरान और पश्चात् मामलों सहित न्याय के प्रशासन पर टिप्पणी करे ।

(2) इस सिद्धांत से केवल उन परिस्थितियों में हटा जा सकता है, जो अंतर्राष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकारों संबंधी प्रसंविदा में परिकल्पित है, जैसा कि अंतर्राष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकार संबंधी प्रसंविदा (यू.एन. डाक्यूमेंट

ई./सी.एन./4/1984/4) में परिसीमा और न्यूनीकरण उपबंधों का 1984 सिराकुशा सिद्धांतों द्वारा निर्वचन किया गया है ।

(3) न्याय के प्रशासन पर टिप्पणी करने का अधिकार किन्हीं विशेष निर्बन्धनों के अधीन नहीं होगा ।

आधारी सिद्धांतों की परिधि (किसी अपराध के अन्वेषण के दौरान मीडिया के अधिकारों के बारे में है " ।

(1)

(2)

(3)

(4) आधारी सिद्धांत विधि द्वारा गोपनीयता के परिरक्षण को किसी अपराध के अन्वेषण के दौरान, उस समय भी जब अन्वेषण न्यायिक प्रक्रिया का भाग हो, अपवर्जित नहीं करते हैं । ऐसी परिस्थितियों में गोपनीयता को ऐसे व्यक्तियों के, जो संदिग्ध या अभियुक्त हैं लाभ के लिए और निर्दोषिता की उपधारणा का परिरक्षण करने के लिए मुख्य रूप से माना जाना चाहिए । यह किसी ऐसे व्यक्ति के प्रेस को संसूचित करने के, अन्वेषण के बारे में सूचना या अन्वेषित की जाने वाली परिस्थितियों के बारे में सूचना के अधिकार को निर्बन्धित नहीं करेगा ।

(5) आधारी सिद्धांत प्राइवेट विवादों में सुलह या परिनिर्धारण के लिए आशयित कार्यवाहियां बंद कमरे में करने को भी अपवर्जित नहीं करता है ।

(6) आधारी सिद्धांत न्यायालय कार्यवाहियों का प्रसारण करने या उन्हें अभिलिखित करने के अधिकार की अपेक्षा नहीं करता है । जहां यह अनुज्ञात है वहां आधारी सिद्धांत लागू रहेगा ।

निर्बन्धन :

(7) आधारी सिद्धांत के किसी निर्बन्धन को विधि द्वारा कठोरतः विहित किया जाना चाहिए । जहां कोई ऐसी विधि किसी विवेकाधिकार या शक्ति को प्रदान करती है वहां वह विवेकाधिकार या शक्ति का प्रयोग किसी न्यायाधीश द्वारा ही किया जाना चाहिए ।

(8) जहां किसी न्यायाधीश को आधारी सिद्धांत को निर्बन्धित करने की शक्ति है और वह उस शक्ति के प्रयोग को अनुध्यात कर रहा है वहां मीडिया (साथ ही प्रभावित होने वाले किसी अन्य व्यक्ति) को उस शक्ति के अनुक्रम के लिए आक्षेप करने के प्रयोजन के लिए सुने जाने का अधिकार और, यदि उसका प्रयोग किया गया है, तो अपील का अधिकार होगा ।

(9) विधियां आधारी सिद्धांत के निर्बन्धनों को किसी लोकतांत्रिक समाज में अल्प वयस्कों के संरक्षण और विशेष संरक्षण की आवश्यकता वाले अन्य समूहों के सदस्यों के लिए आवश्यक सीमा तक प्राधिकृत कर सकती हैं ।

(10) विधियां किसी लोकतांत्रिक समाज में आवश्यक सीमा तक न्याय के प्रशासन के हित में आपराधिक कार्यवाहियों के संबंध में आधारी सिद्धांत को निर्बन्धित कर सकती हैं :

(क) किसी प्रतिवादी पर गंभीर रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ने का निवारण करने के लिए ;

(ख) किसी साक्षी, किसी जूरी के सदस्य या किसी पीड़ित को गंभीर हानि के या उस पर अनुचित दबाव डालने के निवारण के लिए ।

(11) जहां आधारी सिद्धांत के किसी निर्बन्धन की राष्ट्रीय सुरक्षा के आधारों पर मांग की जाती है, वहां इससे पक्षकारों के अधिकारों को, जिनके अंतर्गत प्रतिरक्षा के अधिकार भी हैं, खतरे में नहीं डाला जाना चाहिए । प्रतिरक्षा करने वालों

और मीडिया को अधिकतम संभव सीमा तक उन आधारों को, जिन पर निर्बन्धन की मांग की गई है (यदि निर्बन्धन अधिरोपित किए जाते हैं तो गोपनीयता के कर्तव्य के, यदि आवश्यक हो तो, अधीन रहते हुए) जानने का अधिकार होगा और इस निर्बन्धन के संबंध में प्रतिरोध करने का अधिकार होगा ।

(12) सिविल कार्यवाहियों में आधारी सिद्धांत के निर्बन्धन, यदि विधि द्वारा प्राधिकृत किया जाए तो, उस सीमा तक अधिरोपित किए जा सकते हैं जो किसी लोकतांत्रिक समाज में किसी प्राइवेट पक्षकार के विधि सम्मत हितों की गंभीर अपहानि का निवारण करने के लिए आवश्यक हों ।

(13) कोई निर्बन्धन मनमाने रूप में या विभेदकारी रीति से अधिरोपित नहीं किया जाएगा ।

(14) कोई निर्बन्धन सिवाय इसके अधिरोपित नहीं किया जाएगा कि वह कठोर रूप से अपने प्रयोजन की पूर्ति के लिए आवश्यक न्यूनतम विस्तार के लिए और न्यूनतम समय के लिए हो और कोई निर्बन्धन अधिरोपित नहीं किया जाएगा यदि अधिक सीमित निर्बन्धन से उस प्रयोजन की पूर्ति की संभावना हो । सबूत का भार निर्बन्धन का अनुरोध करने वाले पक्षकार पर होगा । इसके अतिरिक्त निर्बन्धित करने का आदेश किसी न्यायाधीश द्वारा पुनर्विलोकन किए जाने के अधीन रहते हुए होगा ।

कार्यान्वयन के लिए रण-कौशल :

पैरा 1 कथन करता है कि न्यायाधीश को प्रेस के संबंध में कार्रवाई करने में मार्गदर्शन प्राप्त होना चाहिए और न्यायाधीश लोकहित के मामलों के लंबे या पूर्ण निर्णय का संक्षेप देकर प्रेस की सहायता करने के लिए प्रोत्साहित होगा ।

पैरा 2 कहता है कि न्यायाधीश को प्रेस आदि से पूछे जाने वाले प्रश्नों का उत्तर देने के लिए निषिद्ध नहीं किया जाएगा ।

पैरा 3 महत्वपूर्ण है और कथन करता है :

"3. न्याय की स्वतंत्रता, प्रेस की स्वतंत्रता और व्यक्ति के - विशिष्ट रूप से विशेष संरक्षण की आवश्यकता वाले अवयस्कों और अन्य व्यक्तियों के - अधिकारों के सम्मान के बीच संतुलन प्राप्त करना कठिन है । परिणामस्वरूप यह अपरिहार्य है कि एक या अधिक निम्नलिखित उपाय प्रभावित व्यक्तियों या समूहों ; विधिक अवलंब, प्रेस परिषद्, प्रेस के लिए अम्बुड्समैन (लोकपाल) के अधिकार में इस समझ के साथ रखे जाएं कि ऐसी परिस्थितियों से मीडिया के लिए नैतिकता की संहिता, जो व्यवसाय द्वारा स्वयं विस्तार से विकसित की जानी चाहिए, स्थापित करके बड़ी सीमा तक बचा जा सकता है ।

सरकुशा सिद्धांत : (मैड्रिड सिद्धांतों के आधारी सिद्धांत के पैरा 2 में निर्दिष्ट)

निम्नलिखित उद्धरण अंतर्राष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकार प्रसंविदा (यू.एन.डाक्यूमेंट ई./यू एन.4/1984/4) में परिसीमा और अल्पीकरण उपबंध संबंधी सरकुशा सिद्धांतों से हैं । सिद्धांत परिसीमा खंडों के प्रति विभिन्न शीर्षकों के अधीन विभिन्न शीर्षकों के अधीन, निर्वचन की पद्धति, 'विधि द्वारा विहित', 'लोकतांत्रिक समाज', 'लोक व्यवस्था', 'लोक स्वास्थ्य', 'लोक नैतिकता', 'राष्ट्रीय सुरक्षा', 'लोक सुरक्षा', 'दूसरों के अधिकार और स्वतंत्रता' या 'दूसरों के अधिकार या प्रषिद्धि' के अर्थ के बारे में, जिनका अंतर्राष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकार प्रसंविदा में उपयोग किया गया है ।

जहां तक मीडिया और आपराधिक विधि का संबंध है निम्नलिखित मद 'लोक विचारण पर निर्बन्धन' सुसंगत है । वह कहती है :

"(ix) लोक विचारण पर निर्बन्धन :

38. सभी विचारण सार्वजनिक होंगे जब तक कि न्यायालय विधि के अनुसार अवधारित न करे कि :

(क) प्रेस या जनता को विनिर्दिष्ट निष्कर्षों के आधार पर, जिन्हें खुले न्यायालय में यह दर्शित करते हुए आख्यापित किया गया हो कि पक्षकारों या उनके परिवारों या किशोरों की निजी जिंदगियों के हित ऐसी अपेक्षा करते हैं, किसी विचारण के सभी या किसी भाग से वर्जित किया जाना चाहिए ; या

(ख) अपवर्जन विचारण की ऋजुता पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले या लोकतांत्रिक समाज में लोक नैतिकता, लोक व्यवस्था या राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरे में डालने वाले, प्रचार से बचने के लिए कठोर रूप से आवश्यक है ।

भारत का संविधान : संदिग्धों और अभियुक्त के अधिकार और वाक् स्वतंत्रता :

हमारा संविधान पृथक् रूप से प्रेस की स्वतंत्रता या इलेक्ट्रानिक मीडिया की स्वतंत्रता के प्रति भाग 3 में निर्देश नहीं करता है किंतु इन अधिकारों को विधि द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 (1)(क) द्वारा गारंटीकृत 'वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' के भागरूप में माना गया है । गारंटी ' युक्तियुक्त निर्बन्धनों' के, जो अनुच्छेद 19(2) द्वारा अनुज्ञात सीमा तक विधान द्वारा लगाए जा सकते हैं, के अधीन रहते हुए है :

"अनुच्छेद 19(1) : सभी नागरिकों को–

(क) वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य का,

(ख) ....

(ङ)

का अधिकार होगा ।

(2) खंड (1) के उपखंड (क) की कोई बात उक्त उपखंड द्वारा दिए गए अधिकार के प्रयोग पर भारत की प्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों, लोक व्यवस्था, शिष्टाचार या सदाचार के हितों में अथवा न्यायालय-अवमान, मानहानि या अपराध- उद्दीपन के संबंध में युक्तियुक्त निर्बन्धन जहां तक कोई विद्यमान विधि अधिरोपित करती है, वहां तक उसके प्रवर्तन

पर प्रभाव नहीं डालेगी या वैसे निर्बन्धन अधिरोपित करने वाली कोई विधि बनाने से राज्य को निवारित नहीं करेगी ।

'न्यायालय का अवमान विधि' "न्याय के प्रशासन" में बाधा न डालने के बारे में है और यह कि कैसे "न्याय का सम्यक अनुक्रम" जो ऋजु विचारण के लिए आवश्यक है, वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर परिसीमाएं अधिरोपित करने की अपेक्षा कर सकता है ।

संविधान का अनुच्छेद 20, खंड (1) कथन करता है कि कोई व्यक्ति किसी अपराध के लिए तब तक सिद्धदोष नहीं ठहराया जाएगा, जब तक कि उसने ऐसा कोई कार्य करने के समय, जो अपराध के रूप में आरोपित है, किसी प्रवृत्त विधि का अतिक्रमण नहीं किया है या उससे अधिक शास्ति का भागी नहीं होगा जो उस अपराध के किए जाने के समय प्रवृत्त विधि के अधीन अधिरोपित की जा सकती थी । अनुच्छेद 20 का खंड (2) कथन करता है कि किसी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए एक बार से अधिक अभियोजित और दंडित नहीं किया जाएगा । अनुच्छेद 20 का खंड (3) महत्वपूर्ण है और वह स्वयं को अपराध में फसाने के विरुद्ध अधिकार के बारे में है । यह कहता है :

"अनुच्छेद 20(3): किसी अपराध के लिए अभियुक्त किसी व्यक्ति को स्वयं अपने विरुद्ध साक्षी होने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा ।"

अनुच्छेद 21 निर्णायक अनुच्छेद है जो प्राण और दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार गारंटी देता है । यह निम्न प्रकार है :

"अनुच्छेद 21 : किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा अन्यथा नहीं ।"

अनुच्छेद 22(2) अपेक्षा करता है कि किसी व्यक्ति को, जो गिरफ्तार किया गया है, गिरफ्तारी के चौबीस घंटे के भीतर मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाएगा ।

मेनका गांधी के मामले (ए.आई.आर. 1978 एस.सी. 597) में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 21 में ' विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार' शब्दों को ऐसी कार्यवाही की, जो ऋजु, न्यायपूर्ण और साम्यापूर्ण है और मनमानी नहीं है, अपेक्षा करने वाले के रूप में निर्वचित किया है ।

भारतीय जीवन बीमा निगम बनाम मनुभाई डी. शाह (1992 (3)एस.सी.सी. 637) में भारत के उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि अनुच्छेद 19(1)(क) में "वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता" से किसी की धारणाओं और मतों को स्वतंत्रतापूर्वक मुंह के शब्द, लेखन, मुद्रण, चित्रों या इलेक्ट्रानिक मीडिया द्वारा या किसी अन्य रीति से प्रकट करने का अधिकार अभिप्रेत है ।

रमेश थापर बनाम मद्रास राज्य : 1950 एस.सी.आर. 594 में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि स्वतंत्रता के अंतर्गत विचारों, उनके प्रकाशन और परिचालन की स्वतंत्रता है । हमदर्द दवाखाना बनाम भारत संघ : 1960(2)एस.सी.आर. 671 में यह कहा गया था कि अधिकार के अंतर्गत सामान्य हित के मामलों के बारे में विचार और जानकारी अर्जित करने और देने का अधिकार है ।

टेलीविजन द्वारा प्रसारण के अधिकार के अंतर्गत शिक्षा देने, सूचित करने और मनोरंजन करने का अधिकार और शिक्षित होने, सूचना प्राप्त करने और मनोरंजन प्राप्त करने का अधिकार भी है । पूर्ववर्ती टेलीविजन प्रसारणकर्ता का अधिकार है जबकि पश्चातवर्ती देखने वालों का अधिकार है (सचिव, सूचना और प्रसारण मंत्रालय बनाम पश्चिम बंगाल क्रिकेट संगम : 1995(2) एस.सी.सी. 161) । अनुच्छेद 19(1)(क) के अधीन अधिकार के अंतर्गत सूचना का अधिकार और मीडिया के सभी प्रकारों, चाहे प्रिन्ट में, चाहे इलेक्ट्रानिक या श्रव्य-दृश्य में, के माध्यम से प्रसारित करने का अधिकार है : (पूर्वोक्त) ।

उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि प्रेस, इलेक्ट्रानिक मीडिया द्वारा या लोक आंदोलन के रूप में विचारण विधि के शासन की प्रतिकूलता है और इससे न्याय की

हत्या हो सकती है । न्यायाधीश को ऐसे दबाव के विरुद्ध स्वयं की रक्षा करनी होती है (महाराष्ट्र राज्य बनाम राजेन्द्र जवानमल गांधी : 1997 (8) एस.सी.सी. 386)

अनुकूल चन्द्र प्रधान बनाम भारत संघ, 1996 (6) एस.सी.सी. 354 में उच्चतम न्यायालय ने मत व्यक्त किया कि "ऐसे प्रभाव के लिए कोई अवसर नहीं उत्पन्न होना चाहिए कि इन मामलों (हवाला संव्यवहार) से संलग्न प्रचार की, ऋजु विचारण की अनिवार्यताओं और न्यायशास्त्र के आधारी सिद्धांतों, जिनके अंतर्गत किसी अभियुक्त के बारे में यह उपधारणा कि वह निर्दोष है जब तक कि उसे विचारण के अंत में दोषी न पाया जाए, है, पर जोर को हल्का करने की प्रवृत्ति है ।"

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 :

जहां तक आपराधिक विधि में बाधा डालने का संबंध है, न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 की धाराएं 2 और 3 सुसंगत हैं । धारा 2(ग) 'आपराधिक अवमान' को निम्नलिखित रूप में परिभाषित करती है :

" धारा 2(ग) : 'आपराधिक अवमान' से किसी भी ऐसी बात का (चाहे बोले गए या लिखे गए शब्दों द्वारा, या संकेतों, द्वारा या दृश्य रूपणों, द्वारा या अन्यथा) प्रकाशन अथवा किसी भी अन्य ऐसे कार्य का करना अभिप्रेत है--

(i) ....

(ii) जो किसी न्यायिक कार्यवाही के सम्यक् अनुक्रम पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है, या उसमें हस्तक्षेप करता है या जिसकी प्रवृत्ति उसमें हस्तक्षेप करने की है ; अथवा

(iii) जो न्याय प्रशासन में किसी अन्य रीति से हस्तक्षेप करता है या जिसकी प्रवृत्ति उसमें हस्तक्षेप करने की है अथवा जो उसमें बाधा डालता है या जिसकी प्रवृत्ति उसमें बाधा डालने की है" ।

धारा 3(1), तथापि, निम्नलिखित को छूट देती है :

"निर्दोष प्रकाशन, यदि प्रकाशक के पास यह विश्वास करने के समुचित आधार नहीं थे कि वह कार्यवाही लंबित थी ।"

हम धारा 3 के उपबंधों के प्रति व्यापक रूप से निर्देश करेंगे :

"3. **किसी बात के निर्दोष प्रकाशन और वितरण का अवमान न होना**--(1) कोई व्यक्ति इस आधार पर कि उसने किसी ऐसी बात को (चाहे बोले गए या लिखे गए शब्दों द्वारा या संकेतों द्वारा या दृश्य रूपणों द्वारा या अन्यथा) प्रकाशित किया है जो प्रकाशन के समय लंबित किसी सिविल या दांडिक कार्यवाही के संबंध में न्याय के अनुक्रम में हस्तक्षेप करती है या जिसकी प्रवृत्ति उसमें हस्तक्षेप करने की है अथवा जो उसमें बाधा डालती है या जिसकी प्रवृत्ति उसमें बाधा डालने की है, उस दशा में न्यायालय अवमान का दोषी नहीं होगा जिसमें उस समय उसके पास यह विश्वास करने के समुचित आधार नहीं थे कि वह कार्यवाही लंबित थी ।

(2) इस अधिनियम में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी, किसी ऐसी सिविल या दांडिक कार्यवाही के संबंध में, जो प्रकाशन के समय लंबित नहीं है, किसी ऐसी बात के प्रकाशन के बारे में, जो उपधारा (1) में वर्णित है, यह नहीं समझा जाएगा कि उससे न्यायालय अवमान होता है ।

(3) कोई भी व्यक्ति इस आधार पर कि उसने ऐसा कोई प्रकाशन वितरित किया है जिसमें कोई ऐसी बात अंतर्विष्ट है जो उपधारा (1) में वर्णित है, उस दशा में न्यायालय अवमान का दोषी नहीं होगा जिसमें वितरण के समय उसके पास यह विश्वास करने के समुचित आधार नहीं थे कि उसमें यथापूर्वोक्त कोई बात अंतर्विष्ट थी या उसके अंतर्विष्ट होने की संभावना थी :

परंतु यह उपधारा निम्नलिखित के वितरण के बारे में लागू न होगी--

(i) कोई ऐसा प्रकाशन जो प्रेस और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1867 की धारा 3 में अंतर्विष्ट नियमों के अनुरूप मुद्रित या प्रकाशित न होते हुए अन्यथा मुद्रित या प्रकाशित पुस्तक या कागजपत्र है ;

(ii) कोई ऐसा प्रकाशन जो उक्त अधिनियम की धारा 5 में अंतर्विष्ट नियमों के अनुरूप प्रकाशित न होते हुए अन्यथा प्रकाशित समाचारपत्र है ।

स्पष्टीकरण-- इस धारा के प्रयोजनों के लिए कोई न्यायिक कार्यवाही--

(क) सिविल कार्यवाही के मामले में जब वह वादपत्र फाइल करके या अन्यथा संस्थित की जाती है,

(ख) दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 या किसी अन्य विधि के अधीन किसी दांडिक कार्यवाही के मामले में-

(i) जहां वह किसी अपराध के किए जाने से संबंधित है वहां जब आरोप-पत्र या चालान फाइल किया जाता है अथवा जब अपराधी के विरुद्ध न्यायालय, यथास्थिति, समन या वारंट निकालता है, और

(ii) किसी अन्य मामले में जब न्यायालय उस विषय का संज्ञान करता है जिससे कार्यवाही संबंधित है ; और

किसी सिविल या दांडिक कार्यवाही के मामले में तब तक लंबित बनी रही समझी जाएगी जब तक वह सुन नहीं ली जाती और अंतिम रूप से विनिश्चित नहीं कर दी जाती, अर्थात् उस मामले में जहां अपील या पुनरीक्षण हो सकता है, जब तक अपील या पुनरीक्षण को सुन नहीं लिया जाता और अंतिम रूप से विनिश्चित नहीं कर दिया जाता, या जहां अपील

या पुनरीक्षण न किया जाए वहां जब तक उस परिसीमा-काल का अवसान नहीं हो जाता जो ऐसी अपील या पुनरीक्षण के लिए विहित है ;

(ख) जिसे सुन लिया गया है और अंतिम रूप से विनिश्चित कर दिया गया है, केवल इस बात के ही कारण लंबित नहीं समझा जाएगी कि उसमें पारित डिक्री, आदेश या दंडादेश के निष्पादन की कार्यवाही लंबित है ।"

अधिनियम की धारा 4 न्यायिक प्रक्रियाओं की ऋजु और सही रिपोर्ट करने का संरक्षण करती है ।

धारा 7 कथन करती है कि कब चैंबर में या बंद कमरे में कार्यवाहियों के संबंध में जानकारी का प्रकाशन, कतिपय दशाओं को छोड़कर, जो उस धारा में परिगणित की गई हैं, अवमान नहीं हैं ।

धारा 3(2) और स्पष्टीकरण के अधीन उन्मुक्तता प्रदान किए गए विचारण पूर्व प्रकाशन :

धारा 3 के नीचे दिए गए स्पष्टीकरण से यह देखा जाएगा कि किसी आपराधिक कार्यवाही को लंबित के रूप में समझने के लिए प्रारंभिक बिन्दु के लिए यह पर्याप्त है कि यदि कोई आरोप पत्र या चालान फाइल किया गया है या न्यायालय समन या वारंट जारी किया गया है । इस प्रकार जहां तक आपराधिक अवमान का संबंध है, 'विचारण पूर्व' अवधि को न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 के अधीन अपेक्षित महत्व नहीं दिया गया है । धारा 3 के स्पष्टीकरण के अधीन ' लंबित होना' किसी दांडिक मामले में केवल उस समय से प्रारंभ होता है जब आरोप पत्र या चालान फाइल किया जाता है या समन अथवा वारंट दांडिक न्यायालय द्वारा जारी किया जाता है और यह गिरफ्तारी की तारीख से भी नहीं, यद्यपि गिरफ्तारी के समय से कोई व्यक्ति न्यायालय के संरक्षण के भीतर आ जाता है क्योंकि उसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 22(2) के अधीन चौबीस घंटों के भीतर न्यायालय के समक्ष लाया जाना है, प्रारंभ होता है । यदि गिरफ्तारी के पश्चात् और किसी व्यक्ति को न्यायालय के समक्ष लाए जाने से या जमानत के लिए उसके अभिवाक पर

विचार किए जाने के पूर्व प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले प्रकाशन हों, तो जमानत पर उसे निर्मुक्त कराने में गंभीर खतरे हो सकते हैं ।

विचारण पूर्व प्रक्रम पर मीडिया में प्रकाशनों के समान कतिपय कार्य ऋजु विचारण के लिए अभियुक्त के अधिकारों पर प्रभाव डाल सकते हैं । ऐसे प्रकाशन अभियुक्त की पूर्व दोषसिद्धियों से संबद्ध हो सकते हैं या उसके सामान्य चरित्र अथवा उसकी पुलिस को दी गई अभिकथित संस्वीकृतियों के बारे में हो सकते हैं ।

समान अन्वेषण के संदर्भ में, जिसे गिरफ्तारी और न्यायालय में विचारण के लंबित रहने के दौरान किया गया था, उच्चतम न्यायालय ने 'प्रेस द्वारा विचारण' के रूप में निर्दिष्ट किया । अवश्य ही यह 1971 का अधिनियम अधिनियमित किए जाने के पूर्व था । सांईबल बनाम बी. के. सेन (ए.आई.आर.1961 एस.सी. 633) में उसने कहा :

> "किसी समाचार पत्र के लिए किसी उस अपराध का, जिसके लिए कोई व्यक्ति गिरफ्तार किया गया है, व्यवस्थित रूप से स्वतंत्र अन्वेषण संचालित करना और अन्वेषण के परिणामों को प्रकाशित करना अनिष्टकर होगा । यह इसलिए है कि समाचारपत्रों द्वारा विचारण का, जब कोई विचारण किसी नियमित अधिकरण द्वारा किया जा रहा है, अवश्य निवारण किया जाना चाहिए । इस विचार के लिए आधार यह है कि समाचार पत्र की ओर से ऐसी कार्रवाई न्यायालय के अनुक्रम में बाधा डालने जैसी है"।

उच्चतम न्यायालय द्वारा उपर्युक्त मामले में प्रयोग किए गए " न्याय के अनुक्रम में बाधा डालने की ओर प्रवृत्त" शब्द बहुत महत्वपूर्ण हैं ।

ऊपर निर्दिष्ट मानव अधिकार संकल्पनाओं और हमारे संविधान तथा न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 के उपबंधों की दृष्टि से, प्रश्न उठता है कि क्या संदिग्ध या अभियुक्त के बारे में मामलों का कोई प्रकाशन न्यायालय के अवमान के अवमान के बराबर हो सकता है, केवल तभी नहीं जब वह दांडिक मामले लंबित रहने के दौरान (अर्थात आरोप पत्र के फाइल किए जाने के पश्चात्) किंतु उस घटना के पूर्व अर्थात् यदि एक बार कोई

व्यक्ति गिरफ्तार किया गया है और आपराधिक कार्यवाहियां "सन्निकट" हैं, किया गया है । यह विवाद्यक बहुत व्यापक रूप से परीक्षा किए जाने की अपेक्षा करता है और इस पर आगे आने वाले अध्यायों में विचार किया जाएगा ।

अध्याय 3

क्या मीडिया के प्रकाशन अवचेतन रूप से न्यायाधीशों पर प्रभाव डालते हैं ?

यह अच्छा प्रश्न है कि क्या कोई मीडिया प्रकाशन 'अचेतनता' से न्यायाधीशों या जूरी सदस्यों पर प्रभाव डाल सकता है और क्या न्यायाधीश, मानव होते हुए, ऐसे अप्रत्यक्ष प्रभावों के प्रति, कम से कम अवचेतन रूप से या अचेतनता से संवेदनशील नहीं है ?

अमेरिकन दृष्टिकोण यह प्रतीत होता है कि जूरी सदस्य और न्यायाधीश मीडिया प्रकाशनों द्वारा प्रभावित होने के दायी नहीं है, जब कि एंग्लो-सेक्सन दृष्टिकोण यह है कि न्यायाधीश, किसी भी प्रकार चाहे अवचेतन रूप से (यद्यपि चेतन रूप से नहीं) प्रभावित हो सकते हैं और जनता के सदस्य सोच सकते हैं कि न्यायाधीश ऐसे प्रकाशनों से प्रभावित हैं और ऐसी स्थिति, यह अभिनिर्धारित किया गया है, इस सिद्धांत को आकर्षित करती है कि 'न्याय केवल किया ही नहीं जाना चाहिए किंतु वह किया गया दिखाई भी पड़ना चाहिए' । यह प्रतीत होता है कि उच्चतम न्यायालय ने एग्लो-सेक्सन दृष्टिकोण स्वीकार किया है जैसा कि रिलायंस पेट्रोकैमिकल्स बनाम प्रोप्राइटर ऑफ इंडियन एक्सप्रेस : 1988(4) एस.सी.सी. 592 में निर्णय के गहन रूप से पढ़ने पर देखा जा सकता है । यदि कोई ध्यान पूर्वक पी.सी.सेन (निर्देश में) : ए.आई.आर. 1970 एस.सी. 1821 में न्यायालय के पूर्वतर निर्णय के प्रकाश नें उस निर्णय का ध्यानपूर्वक विश्लेषण करता है तो उच्चतम न्यायालय का यह दृष्टिकोण स्पष्ट हुआ प्रतीत होता है ।

पी.सी.सेन में निर्देश करते हुए उच्चतम न्यायालय ने मत व्यक्त किया: (पृष्ठ 1829)

> "हमारे निर्णय में कोई सुस्पष्टता इस बारे में आवश्यक नहीं है कि किसी लंबित मामले पर टिप्पण या किसी पक्षकार का दुरुपयोग, जब मामला किसी जूरी की सहायता से विचारणीय है, अवमान के बराबर हो सकता है और उस समय नहीं जब कि वह न्यायाधीश या न्यायाधीशों द्वारा विचारणीय है ।"

यह प्रतीत होता है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा यह स्वीकार किया गया था कि न्यायाधीशों के अवचेतन रूप से प्रभावित होने की संभावना है । यही यू. एस. सुप्रीम कोर्ट के जस्टिस फ्रेंक फर्टर का (अपनी विसम्मति में) और हाउस ऑफ लार्ड्स के लार्ड स्कार्मेन और लार्ड डिलहार्न का भी दृष्टिकोण था । हम इस समय इन दृष्टिकोणों के प्रति निर्देश करेंगे ।

पी.सी.सेन (निर्देश में) (ए.आई.आर.1970 एस.सी. 1821), निःसंदेह ऐसा मामला था जहां रिट के माध्यम से कोई सिविल कार्रवाई उच्च न्यायालय में लंबित थी । उस समय पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री ने, जिसे उस रिट याचिका में, जो कलकत्ता उच्च न्यायालय में लंबित थी, वेस्ट बंगाल मिल्क प्रोडक्ट्स कंट्रोल आर्डर 1965 पर आक्षेप किए जाने का ज्ञान था, प्रसारण किया था और उच्च न्यायालय ने उसे अपने रेडियो प्रसारण में नियंत्रण आदेश को न्यायाचित ठहराने के लिए अवमान का दोषी अभिनिर्धारित किया था किंतु बिना दंड के छोड़ दिया था।

अपील में उच्चतम न्यायालय इस बात से सहमत था कि मुख्य मंत्री के भाषण को स्पष्टतया न्याय के प्रशासन में बाधा डालने वाला परिकलित किया गया था । निर्णय के अनुक्रम में यह कहा गया था कि इस आधार पर कोई सुभिन्नता नहीं की जा सकती कि कोई मामला न्यायाधीश द्वारा या जूरी द्वारा विचारणीय है । यदि कोई कार्रवाई जूरी को प्रभावित करने की ओर प्रवृत्त है तो वह किसी न्यायाधीश को भी प्रभावित कर सकती है ।

रिलायंस पेट्रोकैमिकल्स लिमिटेड बनाम प्रोप्राइटर्स आफ इंडियन एक्सप्रेस 1988 (4) एस.सी.सी. 592 में पूर्व निर्बन्धन का आदेश उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रारंभ में, जब कि एक सिविल मामला न्याय निर्णयन के लिए लंबित था, पारित किया गया था । किसी वाणिज्यिक कंपनी ने लोक निर्गम किया था, कंपनी ने पूंजी निर्गम नियंत्रक की मंजूरी अभिप्राप्त करने के पश्चात् लोक निर्गम आरंभ किया था । मंजूरी पर विभिन्न उच्च न्यायालयों में विभिन्न पक्षकारों द्वारा आक्षेप किया गया था और कंपनी ने उच्चतम न्यायालय

में सभी मामलों को उच्चतम न्यायालय के समक्ष लाने के लिए अंतरण याचिका फाइल की थी ।

उस मामले में जो सभी समरूप मामलों के एक न्यायालय में अंतरण से संबंधित था, प्रारंभिक रूप से रिलायंस पेट्रोकैमिकल्स के कहने पर, उच्चतम न्यायालय ने इंडियन एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स को कंपनी द्वारा लोक निर्गम के विषय पर कोई लेख, टिप्पण, रिपोर्ट या संपादकीय प्रकाशित करने से निर्बन्धित करने वाला आदेश पारित किया था । इंडियन एक्सप्रेस ने आदेश बातिल करने के लिए आवेदन किया और आदेश को बातिल करते हुए उच्चतम न्यायालय ने ऐसे प्रकाशनों के बारे में, जो प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले हो सकते हैं, निर्णयज विधि के ऊपर विचार किया और अपवादों के प्रति निर्देश किया ।

उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद (1)(क) के प्रति निर्देश किया, जो वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और अनुच्छेद 19 (2) में कथित निर्बन्धनों के बारे में है । उसने इंगित किया कि अमेरिकन संविधान में विधि द्वारा युक्तियुक्त निर्बन्धनों के अधिरोपण के लिए कोई उपबंध अंतर्विष्ट नहीं हैं ।

इसने उन पूर्ण शब्दों की ओर जिनमें यू.एस. फस्ट अमेंडमेंट, जो वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के बारे में है, व्यक्त किया गया है और 'वास्तविक और विद्यमान खतरे' के सिद्धांत के प्रति, जो अमेरिकन न्यायालयों द्वारा उस देश में उस अधिकार पर केवल निहित परिसीमा के रूप में विकसित किया गया था, ध्यान आकर्षित किया । उच्चतम न्यायालय ने रिलायंस मामले में कथन किया कि भारत में स्थिति भिन्न है, यहां वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार आत्यंतिक नहीं है जैसा कि अमेरिका में है । न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया (पैरा 10 पृष्ठ 602 देखिए) :

> "हमारा संविधान अमेरिकन संविधान के प्रथम संशोधन द्वारा दर्शित वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के संबंध में आत्यंतिक नहीं है ।"

न्यायालय ने पुनः कथन किया (पैरा 12 पृष्ठ 603 देखिए) कि वह न्यायालय के अवमान के संदर्भ में 'न्याय प्रशासन' पर प्रभाव डालने वाले प्रेस के प्रकाशन के मामले में

कार्रवाई नहीं कर रहा है किंतु वह ' लोकहित' से संबंधित मामले के रूप में प्रकाशन के प्रश्न की परीक्षा कर रहा है । अमेरिकन संविधान के प्रथम संशोधन के प्रति, जो आत्यंतिक शब्दों में है, न्यायालय ने कथन किया (पृष्ठ 605, पैरा 15) :

> "अमेरिका में, प्रथम संशोधन के आत्यंतिक शब्दों की दृष्टि से, हमारे संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) के अधीन वाक् स्वतंत्रता के सशर्त अधिकार के असमान, 'वर्तमान और आसन्न खतरे' के सिद्धांत को ध्यान में रखना उचित होगा ।"

तदुपरि उच्चतम न्यायालय ने जौन डी. पेनिकेम्प वर्सस स्टेट आफ फ्लोरिडा (1946) 328 यू.एस. 331) में जस्टिस फ्रेंकफर्टर के इस आशय के संप्रेक्षण के प्रति निर्देश किया कि 'स्पष्ट और विद्यमान खतरे' की धारणा का न्यायाधीश हाल्म्स द्वारा अब्राम्स वर्सस यू.एस. : ((1919) 250 यू.एस. 616 में मामलों का न्यायनिर्णयन करने के लिए तकनीकी सिद्धांत प्रकट करने के लिए या कोई सूत्र बताने के लिए कभी कथन नहीं किया गया था । यह एक साहित्यिक मुहाबरा था जिसे उसके संदर्भ से निकाल कर विकृत्त नहीं किया जा सकता । जस्टिस फ्रैन्क फर्टर के अनुसार यदि जो कुछ प्रेस करती है वह न्यायिक विवेकबुद्धि में एकमात्र उस आधार पर, जो न्यायालय के समक्ष है, उसके कर्तव्य में और कार्य करने की सामर्थ्य में विघ्न डालने के लिए युक्तियुक्त रूप से परिगणित किया जाता है तो न्यायपालिका, उचित रूप से कार्य नहीं कर सकती है । न्यायपालिका तब तक स्वतंत्र नहीं है जब तक कि न्यायालय पक्षपात के बिना या उसके साथ दबाव की अनुपस्थिति में विधि का प्रशासन करने में समर्थ नहीं बनाया जाता है ।

तथापि, न्यायमूर्ति फ्रेंक फर्टर के उक्त निर्णय में एक दूसरा सम्माननीय अनुच्छेद है (जिसे हमारे उच्चतम न्यायालय द्वारा उद्धृत नहीं किया गया है) जिसके प्रति हम निर्देश कर सकते हैं :-

> "कोई न्यायाधीश जो वैसा होने के योग्य है, यह संभावना नहीं है कि वह चेतन रूप से प्रभावित हो सिवाय उसके द्वारा जो वह न्यायालय में देखता है या सुनता है और उसके द्वारा जो न्यायिक रूप से उसके विचार विमर्श के लिए समुचित है । तथापि,

न्यायाधीश भी मानव हैं और हम उससे अधिक अच्छा जानते हैं जितना हमारे पूर्वज जानते थे कि कितना अचेतन का आकर्षण होता है और कितनी विवेकशील प्रक्रिया अविश्वसनीय होती है ..... और चूंकि न्यायाधीश, कितने भी विद्वान क्यों न हों, मानव हैं, अतः न्याय प्रशासित करने का कार्य अनुत्तरदायी लेखन द्वारा असम्यक् रूप से कठिन नहीं बनाया जाना चाहिए । न्यायालय के अवमान के लिए दंड देने की शक्ति रक्षोपाय है, न्यायाधीशों के लिए व्यक्तियों के रूप में नहीं किंतु उन कृत्यों के लिए जिनका वे प्रयोग करते हैं । यह उस कृत्य की शर्त है - स्वतंत्र समाज में अपरिहार्य - कि किसी न्यायालय के समक्ष लंबित और निर्णय की प्रतीक्षा करने वाले किसी विशिष्ट विवाद में, मानव प्राणी, कितने भी मजबूत क्यों न हों, वाह्य प्रभावों की अंतर्धाराओं द्वारा निष्पक्षता के उनके मस्तूलों से पृथक् नहीं होने चाहिए । वाक् स्वतंत्रता सुनिश्चित करने में संविधान का कठिनता से ही न्यायाधीशों और जूरी सदस्यों को प्रभावित करने के अधिकार का सृजन करने का अभिप्राय था ।"

उच्चतम न्यायालय ने आगे नवरश्क प्रेस एसोसिएशन वर्सस हग स्टुवार्ट : (1976) 427 यू.एस. 539 के प्रति निर्देश किया जहां अमेरिकन उच्चतम न्यायालय ने बहु-हत्या मामले में विचारण करने वाले न्यायाधीश द्वारा पारित पूर्व निर्बन्धन आदेश को बातिल किया था जब कि वह मामला इस आधार पर लंबित था कि विचारण करने वाले न्यायाधीश का यह विचार कि जूरी सदस्यों के प्रेस प्रकाशनों द्वारा प्रभावित होने की संभावना है, अनुमानपूर्ण था । अमेरिकन उच्चतम न्यायालय ने कथन किया कि विचारण करने वाले न्यायालय को वैकल्पिक उपचारों जैसे स्थान का परिवर्तन, विचारण का स्थगन, विद्वेष के लिए जूरी पैनल की खोजी विशेष शपथ (वॉयर डायर) और जूरी सदस्यों का पृथक्करण का, निर्बन्धन आदेश पारित करने के पूर्व, आश्रय लेना चाहिए था । नबरश्क के प्रति निर्देश करने के पश्चात् हमारे उच्चतम न्यायालय ने मत व्यक्त किया कि (पृष्ठ 607, पैरा 21) :-

"हमें बुराई की गंभीरता की परीक्षा करनी चाहिए । दूसरे शब्दों में एग्लो-सेक्सन सामान्य विधि न्यायशास्त्र का रूढ़िगत मुहाबरे में सुविधा का संतुलन, कदाचित अपनाए जाने के लिए उचित परीक्षण होगा ।"

इस प्रकार अमेरिकन प्रथम संशोधन को आत्यंतिक होने के रूप में और अमेरिका में विकसित 'वास्तविक और वर्तमान खतरे' के परीक्षण के प्रति निर्देश करने के पश्चात् और यह अभिनिर्धारित करने के पश्चात् कि भारत में स्थिति भिन्न है क्योंकि यहां अनुच्छेद 19(1)(क) में केवल सशर्त अधिकार प्रदान किया गया है, उच्चतम न्यायालय एंग्लो-सेक्सन न्यायशास्त्र की ओर मुड़ा और अंग्रेजी मामलों की परीक्षा की ।

उच्चतम न्यायालय ने अटर्नी जनरल वर्सस बी.बी.सी. : 1981 ए.सी. 303 (एच.एल.) के प्रति निर्देश किया । उस मामले में महान्यायवादी ऐसे मामलों के बारे में, जो स्थानीय मूल्यांकन न्यायालय के समक्ष लंबित किसी अपील से संबंधित थे, कार्रवाई करने वाले किसी कार्यक्रम का प्रसारण करने से प्रतिवादियों को इस आधार पर रोकने के लिए व्यादेश के लिए कार्यवाही लाए थे कि प्रसारण न्यायालय के अवमान के बराबर होगा । उस संदर्भ में, (यद्यपि हाउस आफ लॉर्ड्स ने अभिनिर्धारित किया कि अवमान विधि मूल्यांकन न्यायालय को लागू नहीं थी), लार्ड स्कार्मैन ने मत व्यक्त किया कि 'न्याय के प्रशासन में बिल्कुल भी बाधा नहीं पड़नी चाहिए । अपील न्यायालय में लार्ट डेनिंग ने मत व्यक्त किया था कि व्यावसायिक रूप से प्रशिक्षित न्यायाधीश सरलता से प्रकाशनों द्वारा प्रभावित नहीं होते हैं । किंतु लार्ड डेनिंग के दृष्टिकोण से असहमत होते हुए लार्ड डिलहार्न ने (पृष्ठ 335 पर) दूसरे बहुधा उद्धृत अनुच्छेद में यथा निम्नलिखित कथन किया :-

"कभी-कभी इस पर जोर दिया जाता है कि कोई भी न्यायाधीश अपने निर्णय में मीडिया द्वारा कही गई बात से प्रभावित नहीं होगा और परिणामस्वरूप यह कि ऐसे मामलों के प्रकाशन का, जो किसी मामले की सुनवाई पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हों, निवारण करने की आवश्यकता केवल वहीं होती है जहां विनिश्चय आम आदमी के पास होता है । मानवीय कमजोरी के ऊपर न्यायिक श्रेष्ठता का यह दावा ऐसा

"हमें बुराई की गंभीरता की परीक्षा करनी चाहिए । दूसरे शब्दों में एग्लो-सेक्सन सामान्य विधि न्यायशास्त्र का रूढ़िगत मुहाबरे में सुविधा का संतुलन, कदाचित अपनाए जाने के लिए उचित परीक्षण होगा ।"

इस प्रकार अमेरिकन प्रथम संशोधन को आत्यंतिक होने के रूप में और अमेरिका में विकसित 'वास्तविक और वर्तमान खतरे' के परीक्षण के प्रति निर्देश करने के पश्चात् और यह अभिनिर्धारित करने के पश्चात् कि भारत में स्थिति भिन्न है क्योंकि यहां अनुच्छेद 19(1)(क) में केवल सशर्त अधिकार प्रदान किया गया है, उच्चतम न्यायालय एंग्लो-सेक्सन न्यायशास्त्र की ओर मुड़ा और अंग्रेजी मामलों की परीक्षा की ।

उच्चतम न्यायालय ने अटर्नी जनरल वर्सस बी.बी.सी. : 1981 ए.सी. 303 (एच.एल.) के प्रति निर्देश किया । उस मामले में महान्यायवादी ऐसे मामलों के बारे में, जो स्थानीय मूल्यांकन न्यायालय के समक्ष लंबित किसी अपील से संबंधित थे, कार्रवाई करने वाले किसी कार्यक्रम का प्रसारण करने से प्रतिवादियों को इस आधार पर रोकने के लिए व्यादेश के लिए कार्यवाही लाए थे कि प्रसारण न्यायालय के अवमान के बराबर होगा । उस संदर्भ में, (यद्यपि हाउस आफ लॉर्ड्स ने अभिनिर्धारित किया कि अवमान विधि मूल्यांकन न्यायालय को लागू नहीं थी), लार्ड स्कार्मैन ने मत व्यक्त किया कि ' न्याय के प्रशासन में बिल्कुल भी बाधा नहीं पड़नी चाहिए । अपील न्यायालय में लार्ट डेनिंग ने मत व्यक्त किया था कि व्यावसायिक रूप से प्रशिक्षित न्यायाधीश सरलता से प्रकाशनों द्वारा प्रभावित नहीं होते हैं । किंतु लार्ड डेनिंग के दृष्टिकोण से असहमत होते हुए लार्ड डिलहार्न ने (पृष्ठ 335 पर) दूसरे बहुधा उद्धृत अनुच्छेद में यथा निम्नलिखित कथन किया :-

"कभी-कभी इस पर जोर दिया जाता है कि कोई भी न्यायाधीश अपने निर्णय में मीडिया द्वारा कही गई बात से प्रभावित नहीं होगा और परिणामस्वरूप यह कि ऐसे मामलों के प्रकाशन का, जो किसी मामले की सुनवाई पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हों, निवारण करने की आवश्यकता केवल वहीं होती है जहां विनिश्चय आम आदमी के पास होता है । मानवीय कमजोरी के ऊपर न्यायिक श्रेष्ठता का यह दावा ऐसा

है जिसे स्वीकार करने में मुझे कुछ कठिनाई होती है । न्यायिक पद का प्रत्येक धारक अपना सर्वोत्तम प्रयास करता है कि उसका मस्तिष्क उससे प्रभावित न हो जो उसने न्यायालय से बाहर देखा है या सुना है या पढ़ा है और वह जानबूझकर स्वयं को मीडिया द्वारा किसी भी प्रकार प्रभावित नहीं होने देगा और न मेरी दृष्टि से न्यायिक कर्तव्यों के निर्वहन में अनुभवी कोई आम आदमी ऐसा होने देगा । तथापि, मैं समझता हूं कि इसे मान्यता दी जानी चाहिए कि कोई व्यक्ति उसे अपने मस्तिष्क से पूर्णतया निकालने में समर्थ नहीं हो सकेगा जो उसने देखा है, सुना है या पढ़ा है और यह कि वह अवचेतन रूप से उससे प्रभावित हो सकता है । यह विधि है और यह तब तक विधि रहती है जब तक उसे संसद् द्वारा परिवर्तित नहीं कर दिया जाता है, यह कि उन विषयों के प्रकाशन, जिनसे किसी न्यायालय के समक्ष मामले की सुनवाई पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है, ऐसे न्यायालय अवमान का गठन करेंगे, जो जुर्माने या कारावास या दोनों से दंडनीय हो ।"

निःसंदेह, जैसा ऊपर कहा गया है लार्ड डेनिंग एम.आर. ने अपील न्यायालय में कहा कि न्यायाधीश मीडिया के प्रचार द्वारा प्रभावित नहीं होंगे (अटर्नी जनरल वर्सस बी.बी.सी. : 1981 ए.सी.303 (315) सी.ए.), एक ऐसा दृष्टिकोण है, जिसे हाउस आफ लार्ड्स ने अटर्नी जनरल वर्सस बी.बी.सी. में स्वीकार नहीं किया था ।

वस्तुतः बोरी और लोब ने कंटेम्ट आफ कोर्ट (तीसरा एडिसन, 1996) पर अपनी टीका-टिप्पणी में कहा कि लार्ड डेनिंग का दृष्टिकोण 'शाब्दिक सच्चाई के बजाय नीति का कथन अधिक है' ।

कार्डोजो, अमेरिकन उच्चतम न्यायालय के महानतम न्यायाधीशों में से एक, ने अपनी 'न्यायिक प्रक्रिया की प्रकृति (भाषण पूर्व निर्णय से लगाव । न्यायिक प्रक्रिया में अवचेतन तत्व (1921) (एल यूनिर्वसिटी प्रेस) में "शक्तियां, जो न्यायाधीशों के निष्कर्षों में प्रवेश करती हैं" के प्रति निर्देश करते हुए मत व्यक्त किया कि "बड़े ज्वार-भाटे और

धाराएं जो शेष व्यक्तियों को संवेष्टित करती हैं, अपने अनुक्रम में एक तरफ नहीं होतीं और न्यायाधीश के पास से निकल जाती हैं ।"

कार्डोजो के उक्त निबंध में अनुच्छेद का पूर्ण पाठ इस प्रकार है :

"ये शक्तियां भी कभी पूर्ण रूप से चेतनता में होती हैं । तथापि, वे सतह के इतने निकट होती हैं कि उनकी विद्यमानता और प्रभाव के बारे में दावा न किए जाने की संभावना नहीं होती । किंतु यह विषय उनकी शक्ति को मान्यता देने भर से समाप्त नहीं हो जाता है । चेतनता के गहरे नीचे अन्य शक्तियां हैं, पसंद और नापसंद, पक्षपात और पूर्वाग्रह, संमिश्रित स्वाभाविक प्रवृत्ति और भावनाएं तथा आदतें और पक्के विश्वास, जो मनुष्य को बनाते हैं, चाहे वह मुकदमेबाज हो या न्यायाधीश । इस विषय के अधिकतर विचार-विमर्श में या इस पर विचार-विमर्श करने से इन्कार करने में शायद स्पष्टता की कुछ कमी रही है मानो न्यायाधीश यह स्मरण कराने से आदर और विश्वास खो देंगे कि वे मानवीय परिसीमाओं के अधीन हैं ।...."

कार्डोजो ने तदुपरि एक बहुत प्रसिद्ध उद्धरण में कहा,

"इससे कुछ कम नहीं, यदि न्यायिक प्रक्रिया के मेरे विश्लेषण में कोई वास्तविक चीज है तो वे इन शीतल और दूरस्थ ऊंचाइयों पर अकेले खड़े नहीं होते हैं ..... बड़े-बड़े ज्वार भाटे और धाराएं, जो शेष व्यक्तियों को संवेष्टित करती हैं, अपने अनुक्रम में एक तरफ नहीं होतीं और न्यायाधीशों के पास से निकल जाती हैं ।"

न्यू साउथ वेल्स विधि आयोग ने ' प्रकाशन द्वारा अवमान' संबंधी अपने विचार विमर्श पत्र (2000) (सं. 43) में कहा (पैरा 4.50 देखिए) कि अधिकांश विधि सुधार निकाय "यह दृष्टिकोण अपनाने की ओर प्रवृत्त थे कि न्यायिक अधिकारियों के बारे में साधारणतया यह उपधारणा की जानी चाहिए कि वे मीडिया प्रचार द्वारा किसी महत्वपूर्ण प्रभाव का प्रतिरोध करने में समर्थ हैं । इसके बावजूद वे इतनी दूर तक नहीं गए कि न्यायाधीन अवमान

के लिए दायित्व के संभव आधार के रूप में, किसी न्यायिक अधिकारी पर प्रभाव के खतरे को पूर्ण रूप से अपवर्जित कर सके । इस विचारधारा के लिए न्यायोचित्य दोहरा है : पहला यह सदैव संभव है कि कोई न्यायिक अधिकारी अवचेतन रूप से प्रभावित हो सकता है ; और दूसरा, यह उतना ही महत्वपूर्ण है कि न्यायाधीशों की निष्पक्षता के बारे में जनता की विचारधारा का वैसे ही संरक्षण किया जाए जैसे कि पक्षपात के खतरे के विरुद्ध संरक्षण किया जाता है । विचार विमर्श संबंधी पत्र में यह टिप्पण है कि यू.के. में फिलमोर समिति ने यह देखा कि न्यायाधीश साधारणतया वाह्य सामग्री को अपने मस्तिष्क से बाहर निकालने में समर्थ हैं किंतु समिति ने अपनी सिफारिशों में, न्यायिक अधिकारियों के ऊपर प्रभाव को दायित्व के लिए आधार के रूप में अपवर्जित नहीं किया ।

न्यू साउथ वेल्स विधि आयोग ने एस लेंड्समैन और आर. राकोश के एक निबंध के "सिविल मुकदमेबाजी में न्यायाधीशों और जूरी सदस्यों पर संभावित रूप से पक्षपात करने वाली सूचना के प्रभाव के बारे में एक प्रारंभिक जांच" (1994) (12 व्यवहार संबंधी विज्ञान और विधि 113) के प्रति निर्देश किया जिसने निष्कर्ष निकाला कि इस प्राख्यान का समर्थन करने या उससे इन्कार करने के लिए कोई अनुभव जन्य आंकड़ा नहीं है कि न्यायिक अधिकारियों के मीडिया प्रचार द्वारा महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित होने की संभावना नहीं है, । हम आर. वर्सस ससैक्स जस्टिसेस : एक्स पार्टे मैककार्थी : 1924(1) के.वी. 256 में अधिकथित कॉमन लॉ (सामान्य विधि) नियम को नहीं भूल सकते कि -

> "न्याय केवल किया ही नहीं जाना चाहिए किंतु वह स्पष्ट रूप से और निःसंदेह रूप से किया गया दिखाई पड़ना चाहिए ।"

आयरिस विधि आयोग ने न्यायालय के अवमान पर अपने परामर्श पत्र में इसी प्रकार का संप्रेक्षण किया था । कैनेडियन विधि सुधार आयोग ने भी यह दृष्टिकोण अपनाया कि जब कि न्यायाधीश साधारणतया किसी प्रभाव के लिए अभेद्य हो सकते हैं, ऐसे प्रभाव की संभावना से पूर्णतया इन्कार नहीं किया जा सकता, और यह कि न्यायिक अधिकारियों की दशा में न्यायाधीन नियम ने निष्पक्षता के जनता के दृष्टिकोण का संरक्षण करने का

महत्वपूर्ण कृत्य किया है । (देखिए कैनेडियन विधि सुधार आयोग, न्यायालय का अवमान : न्याय के प्रशासन के विरुद्ध अपराध (कार्यकारी पत्र 20, 1977, पृष्ठ 42-43) और रिपोर्ट 17 (1982) पृष्ठ 30 पर) ।

भारत संघ बनाम नवीन जिंदल : 2004 (2) एस.सी.सी. 510 में यह स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया गया था कि अमेरिका का प्रथम संशोधन आत्यंतिक है जबकि अनुच्छेद 19 (1)(क) के अधीन अधिकार को अनुच्छेद 19(2)(क) में अनुज्ञात रूप में निर्बन्धित किया जा सकता है, यह उसी को प्रतिध्वनित करता है जो रिलायंस पेट्रोकैमिकल्स में कहा गया था ।

एम.पी. लोहिया बनाम पश्चिम बंगाल राज्य : 2005(2) एस.सी.सी. 686, में तथ्य ये थे कि किसी स्त्री ने अपने माता-पिता के घर में कलकत्ते में आत्महत्या कर ली किंतु एक मामला भारतीय दंड संहिता के अधीन पति और ससुराल वालों के विरुद्ध हत्या के लिए यह अभिकथित करते हुए फाइल किया गया था कि यह दहेज-मृत्यु का मामला था । पति (उच्चतम न्यायालय में अपीलार्थी) ने कई दस्तावेज यह साबित करने के लिए फाइल किए थे कि स्त्री पागल, मनोरोग रोगी थी । स्त्री के माता-पिता ने अभियुक्त द्वारा दहेज के लिए मांग के अपने अभिकथनों को साबित करने के लिए दस्तावेज फाइल किए । विचारण अभी प्रारंभ होना था । निचले न्यायालयों ने जमानत से इन्कार कर दिया ।

उच्चतम न्यायालय ने अभियुक्त को अंतरिम जमानत मंजूर कर दी और अंतिम आदेश पारित करते हुए कलकत्ता पत्रिका में छपे कतिपय समाचारों के प्रति बहुत समालोचनात्मक रूप से निर्दिष्ट किया । न्यायालय ने पत्रिका में एक-तरफा रीति से प्रकाशित दो लेखों के विरुद्ध मत व्यक्त किया जिनमें केवल स्त्री के माता-पिता द्वारा किए गए अभिकथनों को उपवर्णित किया गया था किंतु अभियुक्त द्वारा यह साबित करने के लिए कि स्त्री पागल थी फाइल किए गए दस्तावेजों के प्रति निर्देश नहीं किया गया था । उच्चतम न्यायालय ने मत व्यक्त किया :-

"मीडिया में आने वाले इस प्रकार के लेख निश्चित रूप से न्याय के प्रशासन के अनुक्रम में बाधा डालेंगे ।"

न्यायालय ने लेखों के विरुद्ध मत व्यक्त किया और प्रकाशक, संपादक और पत्रकार को जो उक्त लेखों के लिए उत्तर दायी थे

"मीडिया द्वारा ऐसे विचारण में, जब विवाद्यक न्यायाधीन हो, लिप्त होने"

के विरुद्ध सावधान किया और मत व्यक्त किया कि सभी अन्य व्यक्तियों को न्यायालय द्वारा प्रकट की गई अप्रसन्नता को समझना चाहिए ।

पंजाब उच्च न्यायालय ने राव हरनारायन बनाम गुमोरी राम : ए.आई.आर. 1958 पंजाब 273 में कहा कि ' प्रेस की स्वतंत्रता न्याय के प्रशासन के अधीनस्थ है । किसी पत्रकार का सादा कर्तव्य मामलों की रिपोर्ट करना है न कि न्यायनिर्णयन करना ।' उड़ीसा उच्च न्यायालय ने बिजोय नंद बनाम बालाकुश (ए.आई.आर. 1953 उड़ीसा 249) में मत व्यक्त किया कि-

"प्रेस का उत्तरदायित्व किसी व्यक्ति के उत्तरदायित्व से बड़ा है क्योंकि प्रेस को अधिक पाठक उपलब्ध होते हैं । प्रेस की स्वतंत्रता मुकदमेबाजों पर आक्रमण करने और न्याय के दरवाजे बंद करने के लिए अनुज्ञप्ति के रूप में गिरनी नहीं चाहिए, न इसमें सम्माननीय व्यक्तियों की प्रसिद्धि को हानि पहुंचाने के लिए कोई अनिर्बन्धित स्वतंत्रता सम्मिलित हो सकती है ।"

हरिजय सिंह बनाम विजय कुमार : 1996(6) एस.सी.सी. 466 में, उच्चतम न्यायालय ने कहा कि प्रेस या पत्रकार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के किसी विशेष अधिकार का उपभोग नहीं करते हैं और इस स्वतंत्रता की गारंटी वही है जो प्रत्येक नागरिक को उपलब्ध है । प्रेस विधि से किसी विशेष विशेषाधिकार या उन्मुक्तता का उपभोग नहीं करती है ।

इस स्थिति का संक्षेप करते हुए यह देखेंगे कि अमेरिका में स्वतंत्र वाक् का अधिकार आत्यंतिक है और प्रकाशन के विरुद्ध कोई निर्बन्धन आदेश संभव नहीं है जब तक कि अधिकार को स्वयं 'स्पष्ट और विद्यमान खतरा' न हो ।

किंतु भारत में स्थिति भिन्न है । वाक् स्वतंत्रता अधिकार आत्यंतिक नहीं है जैसा कि अमेरिका में है किंतु वह सशर्त और अनुच्छेद 19(2) द्वारा निर्बन्धित है । न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 की धारा 2(ग) के अधीन दांडिक अवमान के रूप में किसी प्रकाशन को मानना, जहां न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि न्यायालय में लंबित मामलों के बारे में प्रकाशन 'की प्रवृत्ति' न्याय के प्रशासन के साथ बाधा डालने की है (देखिए धारा 2(ग) (iii)), स्वतंत्र वाक् पर युक्तियुक्त निर्बन्धन के बराबर है । अमेरिका में प्रचलित दृष्टिकोण कि प्रशिक्षित न्यायाधीश या जूरी सदस्य भी, जैसा कि नबरश्क (1976) 427 यू.एस. 539) में बहुमत द्वारा कहा गया था, मीडिया में प्रकाशन द्वारा प्रभावित नहीं होते हैं, इंग्लेंड में अटर्नी जनरल वर्सस बी.बी.सी. 1981 ए.सी. 303 (एच.एल.) में लॉर्ड डिलहौर्न द्वारा स्वीकार नहीं किया गया था, जिसने कहा कि न्यायाधीश और जूरी सदस्य अवचेतन रूप से प्रभावित हो सकते हैं और न्यायाधीश असाधारण मानव होने का दावा नहीं कर सकते, उच्चतम न्यायालय द्वारा रिलायंस पेट्रोकैमिकल्स में उद्धृत किया गया था । किस प्रकार वे ऐसे प्रभावित होते हैं, यह उनके निर्णय से प्रकट नहीं भी हो सकता है किंतु वे अवचेतन रूप से प्रभावित हो सकते हैं । अमेरिका में भी, जस्टिस फ्रैंकफर्टर ने स्वीकार किया है कि न्यायाधीशों और जूरी सदस्यों के प्रभावित होने की संभावना है । भारतीय उच्चतम न्यायालय का विचार पी.सी.सेन निर्देश में : ए.आई.आर. 1970 एस.सी. 1821 में पहले भी यह था कि न्यायाधीशों और जूरी सदस्यों के प्रभावित होने की संभावना है और यह कि एंग्लो सेक्सन विधि के उस दृष्टिकोण को उच्चतम न्यायालय द्वारा रिलायंस मामले में अधिमान दिया गया प्रतीत होता है । न्यायाधीश कई शक्तियों से अवचेतन रूप से प्रभावित होते हैं, यह भी जस्टिस कार्डोजो और ऊपर निर्दिष्ट विभिन्न विधि आयोगों का विचार था ।

अध्याय 4

कैसे 'सन्निकट' आपराधिक कार्यवाहियों को न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 से अपवर्जित किया गया : ऐतिहासिक और महत्वपूर्ण विचारधारा

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 की धारा 3(2), धारा के नीचे स्पष्टीकरण के साथ पठित, (इस रिपोर्ट का अध्याय 2 देखिए) दांडिक अवमान से, न्यायालय में आरोपपत्र या चालान फाइल किए जाने के पूर्व या समन अथवा वारंट जारी किए जाने के पूर्व किए गए सभी प्रकाशनों को, चाहे ऐसे प्रकाशन न्याय के अनुक्रम में बाधा डालते हों या बाधा डालने की ओर प्रवृत्त हों, अपवर्जित करती हैं ।

किंग वर्सस मिरर 1927 (1) के.बी. 845 में अभियुक्त को 9 जनवरी को गिरफ्तार किया गया था और 24 घंटों के भीतर 10 जनवरी को न्यायालय के समक्ष लाया गया था और अन्वेषण प्रारंभ किया गया था और 13 जनवरी को एक शिनाख्त परेड की गई थी । ठेस पहुंचाने वाले फोटो 17 जनवरी को प्रकाशित किए गए थे । यह अभिनिर्धारित किया गया था कि कार्यवाहियां प्रारंभ हो गई हैं । किंतु दांडिक कार्यवाहियों की सन्निकटता के प्रश्न पर विनिश्चय नहीं किया गया था ।

किंग वर्सस पार्क : (1903) 2 के.बी. 432 में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि न्यायालय के सत्र का अवमान होगा, चाहे कोई सुपुर्दगी नहीं हुई थी और लिखित पत्र फाइल किया गया था । इससे क्या संभव अंतर हो सकता है, कि चाहे कोई विशिष्ट न्यायालय, जिसे इस प्रकार उसकी स्वतंत्रता से और उसकी उस महत्वपूर्ण अंत को, जिसके लिए उसका सृजन किया गया है, प्रभावित करने की शक्ति से वंचित करना चाहा गया है, उस समय सत्र में है या नहीं या उसे वास्तव में गठित भी किया गया है या नहीं ? यह इस मामले में था कि न्यायाधीश बिल्स ने प्रसिद्ध संप्रेक्षण किया :

> "बहुत प्रभावी रूप से न्याय के झरने को, उसके प्रवाहित होने के पूर्व दूषित करना संभव है । ऐसा करना तब संभव नहीं है जब प्रवाह बंद हो गया हो ।"

(के. जे. अय्यर द्वारा लिखित न्यायालय अवमान विधि, छठा संस्करण 1983 को भारतीय निर्णयज विधि के उपर्युक्त विश्लेषण के लिए देखें । किंतु आज यह अच्छी विधि नहीं है, प्रथम सूचना रिपोर्ट के फाइल किए जाने की अपेक्षा गिरफ्तारी की तारीख, हमारे उच्चतम न्यायालय के निर्णय के अनुसार ' लंबित' होने का प्रारंभिक बिन्दु है ।)

प्रश्न यह है कि क्या ऐसा अपवर्जन, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अति संरक्षण और ऋजु दांडिक विचारणों के लिए सम्यक् प्रक्रिया के संरक्षण के विचलन के, बराबर है ?

पहले यह आवश्यक है कि न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 की दृष्टि से आरोप पत्र या चालान फाइल करने के पूर्व किए गए प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले प्रकाशनों के अपवर्जन के ऐतिहासिक आधार को समझा जाए । ऐतिहासिक दृष्टिकोण दर्शित करेगा कि कैसे अवमान दायित्व से ऐसा अपवर्जन, यथा उपर्युक्त, अस्तित्व में आया और क्या ऐसा अपवर्जन न्यायोचित था ?

1971 से पूर्व विधि :

न्यायालय अवमान अधिनियम 1926 और 1952 दोनों के अधीन सिविल अवमान और आपराधिक अवमान की कोई परिभाषा नहीं थी । आगे, न्यायालयों ने अवमान विधि को उन प्रकाशनों को लागू नहीं किया, जिन्होंने न्याय के प्रशासन में, यदि दांडिक कार्यवाहियां "सन्निकट" थीं और व्यक्ति को 'मालुम था या मालुम होना चाहिए था' कि कोई कार्यवाही सन्निकट थी, बाधा डाली या जो बाधा डालने की ओर प्रवृत्त थे (देखिए सुब्रमन्यम निर्देश में : ए.आई.आर. 1943 लाह 329 (335) ; तुल्जा राम बनाम रिजर्व बैंक : ए.आई.आर. 1939 मद्रास 257 ; राज्य बनाम राधा गोविन्द : ए.आई.आर. 1954 उड़ीसा 1 ; राज्य बनाम मात्रभूमि के संपादक आदि : ए.आई.आर. 1955 उड़ीसा 36 ; ले राय फ्रे बनाम आर. प्रसाद : ए.आई.आर. 1958 पंजाब 377 ; एम्परर बनाम कुशतल्चर : ए.आई.आर. 1947 लाह 206) ।

श्रीमती पद्मावती देवी बनाम आर. के. करंजिया ए.आई.आर. 1963 एम.पी. 61 में, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अवमान की अधिकारिता आकर्षित करने के लिए, यह आवश्यक नहीं था कि अभियुक्त का विचारण इस अर्थ में सन्निकट होना चाहिए कि सुपुर्दगी कार्यवाहियां संस्थित कर दी गई हैं । प्रथम सूचना रिपोर्ट का फाइल किया जाना पर्याप्त था । किसी भी प्रकार, गिरफ्तार व्यक्ति को प्रतिप्रेषण के लिए किसी मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किए जाने के द्वारा, आपराधिक मामला वास्तव में किसी दंड न्यायालय में, जो उसके संबंध में न्यायिक रूप से कार्रवाई करने के लिए सक्षम हो, लंबित था । आपराधिक मामलों में, ऐसा कदम असंज्ञेय अपराध के किसी मामले में, न्यायालय में कोई परिवाद फाइल करके और संज्ञेय अपराध के मामले में प्रथम सूचना रिपोर्ट करके उठाया जा सकता है । अन्वेषण के दौरान पुलिस द्वारा अभियुक्त की गिरफ्तारी, इसलिए, वाद हेतुक के लंबित रहने के "दौरान" हो सकती है । यह हो सकता है कि तदोपरांत अन्वेषण व्यर्थ साबित हो, तब अभियोजन बंद किया जा सकता है या अभियुक्त निर्मुक्त किया जा सकता है और आदेश अभियोजन और अभियुक्त को अन्यायपूर्ण आक्रमणों से, जब तक कि अन्वेषण समाप्त नहीं हो जाता है, संरक्षण देते हुए पारित किए जा सकते हैं । इस मुद्दे पर अंग्रेजी विधि और भारतीय विधि के बीच सुभिन्नता के लिए कोई न्यायोचित्य नहीं है । इग्लैंड में भी किसी व्यक्ति को बिना वारंट के गिरफ्तार किया जा सकता है और गिरफ्तारी के पश्चात् अभियोजन साक्ष्य की कमी के कारण बंद किया जा सकता है किंतु इसे आपराधिक मामले को लंबित के रूप में न मानने के लिए अच्छा कारण नहीं समझा गया है ।

यह वहां तक है जहां तक 'गिरफ्तारी' का संबंध है, चाहे कोई आरोप पत्र या चालान 1971 के अधिनियम के पूर्व फाइल नहीं किया गया था ।

किंतु 1971 के अधिनियम के पूर्व, यह श्रीमती पद्मावती देवी के मामले में और निम्नलिखित मामलों में अभिनिर्धारित किया गया है कि जैसे ही पुलिस थाने में कोई शिकायत की जाती है और अन्वेषण प्रारंभ होता है, वह मामला अवमान के लिए दंड देने के लिए न्यायालय की न्यायिक शक्ति आकर्षित करते हुए न्यायाधीन हो जाता है (दीवान चंद

बनाम नरेन्दर : ए.आई.आर. 1950 पूर्वी पंजाब 366, राव नारायन सिंह बनाम गुमानी राम : ए.आई.आर. 1958 पंजाब 273 ; एम्परर बनाम चौधरी : ए.आई.आर. 1947, कलकत्ता 414, मनकद बनाम शेट पन्नालाल : ए.आई.आर. 1954 कच्छ 2 ; राज्य बनाम संपादक आदि मात्रभूमि : ए.आई.आर. 1955, उड़ीसा 36 ; आर. के. गर्ग बनाम एस. ए. आजाद : ए.आई.आर. 1967 इलाहाबाद 37) किंतु यह नीचे निर्दिष्ट ए. के. गोपालन बनाम नूरदीन (1969) में विनिश्चय की दृष्टि से अच्छी विधि नहीं है ।

ए. के. गोपालन बनाम नूरदीन : (1969)

ए. के. गोपालन बनाम नूरदीन : ए.आई.आर. 1969 (2) एस.सी.सी. 734 (1971 के अधिनियम के पूर्व 15 सितंबर, 1969 को विनिश्चित) में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि दांडिक कार्यवाही केवल तभी सन्निकट है जब कोई गिरफ्तारी हुई है । उस मामले में एक व्यक्ति ने एक घटना में अपना जीवन खो दिया था और प्रथम सूचना रिपोर्ट उसी दिन कर दी गई थी । लगभग एक सप्ताह पश्चात् श्री ए. के. गोपालन (अपीलार्थी) ने एक कथन किया था और तीन दिन पश्चात् प्रत्यर्थी और उसके भाई को गिरफ्तार किया गया था और पुलिस अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित किया गया था । वह कथन गिरफ्तारी के पश्चात् एक समाचार पत्र में प्रकाशित किया गया था । प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी संपादक, समाचार पत्र के मुद्रक और प्रकाशक के विरुद्ध अवमान के लिए न्यायालय में समावेदन किया । उच्च न्यायालय ने सभी को न्यायालय के अवमान का दोषी अभिनिर्धारित किया क्योंकि प्रकाशनों में कथन प्रथम सूचना रिपोर्ट के फाइल किए जाने के पश्चात् आए थे । उच्चतम न्यायालय ने श्री ए. के. गोपालन की अपील मंजूर कर ली किंतु संपादक की अपील बर्खास्त कर दी । न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया :

(i) अवमान के लिए सुपुर्दगी वस्तुतः कोई विषय नहीं है । यह न्यायालय के विवेकाधिकार का मामला है और ऐसे विवेकाधिकार का प्रयोग सावधानी से किया जाना चाहिए । इस शक्ति का प्रयोग सतर्कता से और निर्बन्धन के साथ और केवल तब जब वह आवश्यक हो, किया जाना चाहिए ।

(ii) अवमान का गठन करने के लिए प्रकाशन ऐसा दर्शित किया जाना चाहिए कि वह न्याय के सम्यक् अनुक्रम में सारवान रूप से बाधा डालेगा ।

(iii) उस तारीख को जिसको प्रथम अपीलार्थी ने अपना कथन किया, यह नहीं कहा जा सकता था कि किसी दांडिक न्यायालय में कोई कार्यवाही केवल इसलिए सन्निकट थी क्योंकि प्रथम सूचना रिपोर्ट कर दी गई थी । अभियुक्त को उसका कथन किए जाने के पश्चात् तक गिरफ्तार नहीं किया गया था और कार्यवाहियों की सन्निकटता का सुझाव देने के लिए कुछ नहीं था और यह दर्शित करने के लिए कुछ नहीं था कि प्रथम अपीलार्थी कथन को गिरफ्तारी के पश्चात् प्रकाशित कराने में सहायक था ।

(iv) वाक् स्वतंत्रता का मूल अधिकार असम्यक् रूप से निर्बन्धित होगा यदि यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि किसी मामले पर कोई टिप्पण कोई गिरफ्तारी किए जाने के पूर्व भी नहीं होना चाहिए । वस्तुतः, कंपनियों को अंतर्वलित करने वाली लोक निंदाओं के मामले में स्वतंत्र प्रेस का यह कर्तव्य है कि वह ऐसे विषयों पर टिप्पण करे और जनता का ध्यान आकर्षित करे ।

(v) जहां तक संपादक का संबंध है, दांडिक न्यायालय में कार्यवाहियां सन्निकट थीं क्योंकि उस तारीख तक जब कि कथन प्रकाशित हुआ था अभियुक्त गिरफ्तार कर लिया गया था और मजिस्ट्रेट द्वारा प्रतिप्रेषित कर दिया गया था, जो दर्शित करता है कि किसी न्यायालय में कार्यवाहियां सन्निकट थीं । अभियुक्त को और अन्वेषण के पश्चात् निर्मुक्त करने की संभावना थी किंतु दूरस्थ थी । यद्यपि अभियुक्त का नाम उल्लिखित नहीं किया गया था, किंतु यह दर्शित किया गया था कि वह व्यक्ति जिसने हत्या की थी, किसी षडयंत्र के अनुसरण में कार्य कर रहा था और वह निश्चित रूप से जनता को अभियुक्त के विरुद्ध कर देगा ।

(विसम्मत न्यायाधीश मित्तर जे. ने अभिनिर्धारित किया कि प्रथम अपीलार्थी भी न्यायालय के अवमान का दोषी था ।)

हमने पहले श्रीमती पद्मावती देवी बनाम आर. के. करंजिया ए.आई.आर. 1963 एम.पी. 61 और अन्य मामलों के प्रति निर्देश किया है जहां यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अवमान की विधि संज्ञेय अपराधों में उस समय से जब प्रथम सूचना रिपोर्ट फाइल की जाती है, उपलब्ध होनी चाहिए । इस दृष्टिकोण को उच्चतम न्यायालय द्वारा ए. के. गोपालन बनाम नूरदीन में विनिश्चय के द्वारा उस सीमा तक अधिक्रान्त किया गया समझा जाना चाहिए जहां तक उसने कहा कि दांडिक कार्यवाहियों को प्रथम सूचना रिपोर्ट के फाइल करने की तारीख से और कोई गिरफ्तारी किए जाने के पूर्व से भी सन्निकट के रूप में माना जाना चाहिए ।

ए. के. गोपालन में उच्चतम न्यायालय का निर्णय महुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह विनिश्चय करता है कि -

(1) दांडिक कार्यवाही अवश्य सन्निकट समझी जानी चाहिए यदि संदिग्ध को गिरफ्तार किया जाता है ;

(2) यदि कोई प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला प्रकाशन किसी ऐसे व्यक्ति के बारे में किया जाता है, जिसे पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया गया है, तो अनुच्छेद 19(1)(क) के अधीन वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार को बिना किसी प्रतिकूल प्रभाव के संचालित किए जाने वाले ऋजु विचारण के लिए व्यक्ति के अधिकार को मार्ग देना चाहिए, गिरफ्तारी के पश्चात् प्रेस में कोई प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला प्रकाशन ऐसी दांडिक कार्यवाहियों में सारवान रूप से प्रतिकूल प्रभाव कारित कर सकता है, जो इस बात का ध्यान रखे बिना कि वह व्यक्ति पश्चातवर्ती निर्मुक्त किया जाता है, सन्निकट मानी जानी चाहिए ।

सान्याल समिति, 1963 : गिरफ्तारी की तारीख प्रारंभिक बिन्दु होनी चाहिए :

1971 का अधिनियम पारित किए जाने के काफी पहले, सरकार ने सान्याल समिति को 1952 के अधिनियम पर विचार करने और परिवर्तनों का सुझाव देने के लिए नियुक्त

किया था । सान्याल समिति ने 1963 में अपनी रिपोर्ट दी । इसको ए. के. गोपालन के मामले में 1969 के उच्चतम न्यायालय के निर्णय का लाभ प्राप्त नहीं हुआ था ।

सान्याल समिति ने अध्याय 6 "सन्निकट कार्यवाहियों के संबंध में अवमान" में यथा निम्नलिखित मत व्यक्त किया है :

"(1) ....

(2) विधि का यथावत कथन और सुधार :

वह निष्कर्ष जिस पर हम पहुंचे है तुरंत यह प्रश्न उठाता है कि क्या सन्निकट कार्यवाहियों से संबंधित विधि को निश्चित शब्दों में कहना संभव है और कहां तक वह स्पष्ट की जा सकती है या उपांतरित की जा सकती है । न्यायालयों ने, सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए, इस संबंध में अपनी शक्तियों का प्रयोग इस प्रकार करने का प्रयास किया है कि अवमान की विधि गंभीर रूप से वाक् स्वतंत्रता में बाधा नहीं डालती है क्योंकि उन्होंने स्वयं अनुभव किया है कि ऐसे मामलों के जहां कार्यवाहियां सन्निकट कही जा सकती हैं और ऐसे मामलों के, जहां वे नहीं हो सकती हैं, बीच रेखा खींचना अत्यधिक कठिन है । उदाहरण के लिए केवल प्रथम सूचना रिपोर्ट का फाइल किया जाना इस बात का निश्चायक नहीं हो सकता कि कार्यवाहियां सन्निकट हैं, यद्यपि कठोर तर्क यह मांग कर सकता है कि उस बिन्दु पर रेखा खींची जानी चाहिए । वहां भी जहां कोई गिरफ्तारी हुई है, यह सदैव नहीं हो सकता कि उसके पश्चात् न्यायिक कार्यवाहियां हों । केवल मार्गदर्शन, जो हम विनिश्चित मामलों से प्राप्त करते हैं, यह है कि यह प्रश्न प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा (पाद टिप्पण 1 नीचे उद्धृत किया गया है) । क्या हमें विधि को इस असमाधानप्रद रूप में

और अनिश्चित स्थिति में छोड़ना होगा, विशेषरूप से जबकि मूल अधिकार अंतर्वलित हैं ।

(3) सिविल मामले .....

(4) आपराधिक मामले : तथापि, आपराधिक मामलों के संबंध में किंचित भिन्न दृष्टिकोण आवश्यक है । जैसा कि लंबित कार्यवाहियों के मामले में है यदि कोई व्यक्ति यह साबित करने में समर्थ है कि उसके पास यह विश्वास करने का युक्तियुक्त आधार नहीं था कि कार्यवाही सन्निकट हैं तो इस आधार को उसे न्यायालय के अवमान के लिए दायित्व से पूर्णतया मुक्त कर देना चाहिए, शायद ऐसी कोई प्रतिरक्षा अभिकथित निंदा करने वाले को पहले से ही उपलब्ध है, किंतु हम कानूनी अभिव्यक्ति देने को अधिमान देंगे जैसा कि अंग्रेजी विधि के अधीन है जिससे हमारी अवमान की विधि व्युत्पन्न हुई है, जानकारी की कमी अवमान को क्षमा नहीं देगी यद्यपि वह दिए जाने वाले दंड पर प्रभाव रख सकती है । हम थोड़ा आगे जाना और कतिपय अतिरिक्त रक्षोपायों का उपबंध करना भी पसंद करेंगे । यह कई मामलों में देखा गया है कि एक बार कोई व्यक्ति गिरफ्तार किया जाता है तो यह निष्कर्ष निकालना विधिसम्मत होगा कि कार्यवाहियां सन्निकट हैं । (नीचे उद्धृत पाद टिप्पण 2 देखें) किंतु वास्तविकता में तथ्य यह है कि परिणाम लगातार एक से नहीं हो सकते । हम पहले ही कह चुके हैं कि किसी अभिकथित निंदा करने वाले के लिए यह साबित करना विधिमान्य प्रतिरक्षा होनी चाहिए कि उसके पास यह विश्वास करने का युक्तियुक्त आधार नहीं था कि कोई कार्यवाही सन्निकट है । इसमें, हम यह जोड़ना चाहेंगे कि जहां कोई गिरफ्तारी नहीं की गई है, वहां

अभिकथित निंदा करने वाले के पक्ष में यह उपधारणा की जानी चाहिए कि कोई कार्यवाही सन्निकट नहीं है (नीचे उद्धृत पाद टिप्पण 3) ।"

अब हम पाद टिप्पण 1, 2, 3 के प्रति निर्देश करेंगे :

पाद टिप्पण 1- "सुरेन्द्र मोहान्ती बनाम उड़ीसा राज्य (दांडिक अपील 107/56 तारीख 23-1-1961 में उच्चतम न्यायालय का विनिश्चय देखें । श्रीमती पद्मावती देवी बनाम आर. के. करंजिया ए.आई.आर. 1963 एम. पी. 61 में यह सुझाव दिया गया प्रतीत होता है कि विधि को संज्ञेय मामलों की दशा में, जहां पहली सूचना रिपोर्ट की गई है अपने संरक्षण का विस्तार करना चाहिए क्योंकि न्यायालयों के विचार में न्याय के हित की संरक्षण देने से अधिक अच्छी पूर्ति होगी, जब तक कि अन्वेषण समाप्त नहीं होता है । यह प्रतिपादना व्यापक रूप से कही गई प्रतीत होती है । उदाहरण के लिए, प्रथम सूचना रिपोर्ट में कोई नाम नहीं हो सकता है ।

पाद टिप्पण 2- वास्तव में वे मामले जिन पर भरोसा किया गया है ऐसे मामले हैं जहां गिरफ्तारियां हुई हैं ।

पाद टिप्पण 3- आर. वर्सस ओल्थम प्रेस लिमिटेड : 1957 (1) क्यू. बी.73; इग्लेंड में विधि को एडमिनिस्ट्रेसन आप जस्टिस एक्ट 1963 द्वारा पहले ही उपांतरित किया जा चुका है) ।

यह स्पष्ट है कि सान्याल समिति ने स्वीकार किया कि आपराधिक मामलों में गिरफ्तारी की तारीख अवमान विधि के प्रयोजन के लिए लंबित होने के प्रारंभिक बिन्दु के रूप में मानी जा सकती है ।

उस सीमा तक, 1963 की सान्याल रिपोर्ट 1970 में विनिश्चित ए. के. गोपालन के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय से संगत है ।

सान्याल समिति द्वारा तैयार किया गया 1963 का विधेयक ' सन्निकट' कार्यवाहियों के प्रति निर्देश करता है :

सान्याल समिति की रिपोर्ट से उपाबद्ध न्यायालय अवमान विधेयक 1963 में धारा 3 "मामले का निर्दोष प्रकाशन और वितरण अवमान न होना" के बारे में है और " किसी लंबित या सन्निकट दांडिक कार्यवाही" के प्रति प्रकाशन के समय, जो न्याय के अनुक्रम में बाधा डालने के लिए परिगणित है, निर्देश करती है ।

उस विधेयक की धारा 3 इस प्रकार है :

"धारा 3 : मामले का निर्दोष प्रकाशन और वितरण अवमान न होना :

(1) कोई व्यक्ति इस आधार पर न्यायालय के अवमान का दोषी नहीं होगा कि उसने ऐसे किसी मामले को प्रकाशित किया है जो निम्नलिखित के संबंध में न्याय के अनुक्रम में बाधा डालने के लिए परिगणित है-

(क) कोई दांडिक कार्यवाही जो प्रकाशन के समय लंबित या सन्निकट हो, यदि उस समय उसके पास यह विश्वास करने का कोई युक्तियुक्त आधार नहीं था कि कार्यवाही यथास्थिति, लंबित या सन्निकट थी ।

(ख) कोई सिविल कार्यवाही जो प्रकाशन के समय लंबित हो, यदि उस समय उसके पास यह विश्वास करने का कोई युक्तियुक्त आधार नहीं था कि कार्यवाही लंबित थी ।

(2) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि में किसी बात के होते हुए भी, कोई व्यक्ति इस आधार पर न्यायालय के अवमान का दोषी नहीं होगा कि उसने किसी ऐसे मामले को प्रकाशित किया है जो प्रकाशन के समय सन्निकट किसी सिविल कार्यवाही के संबंध में उपधारा (1) में उल्लिखित है, केवल इस कारण कि कार्यवाही सन्निकट थी ।

(3) कोई व्यक्ति इस आधार पर न्यायालय के अवमान का दोषी नहीं होगा कि उसने किसी ऐसे मामले को, जो उपधारा (1) में उल्लिखित है, समाविष्ट करते हुए किसी प्रकाशन का वितरण किया है, यदि वितरण के समय उसके पास यह विश्वास करने का कोई युक्तियुक्त आधार नहीं था कि उसमें यथा पूर्वोक्त कोई ऐसा मामला अंतर्विष्ट था या यह कि उसके ऐसा करने की संभावना थी ।

(4) न्यायालय के अवमान के लिए कार्यवाहियों में किसी व्यक्ति को इस धारा द्वारा दी गई प्रतिरक्षा को स्थापित करने के लिए कोई तथ्य साबित करने का भार उस व्यक्ति पर होगा ।

परंतु जहां किसी अपराध के करने के संबंध में कोई गिरफ्तारी नहीं की गई है वहां, जब तक कि उसके प्रतिकूल साबित नहीं हो जाता है, यह उपधारणा की जाएगी कि न्यायालय के अवमान के अभियुक्त किसी व्यक्ति के पास यह विश्वास करने का कोई युक्तियुक्त आधार नहीं था कि उसके संबंध में कोई कार्यवाही सन्निकट थी ।

स्पष्टीकरण-- इस धारा के प्रयोजनों के लिए कोई न्यायिक कार्यवाही-

(क) तब तक लंबित कही जाएगी जब तक कि उसकी सुनवाई नहीं की जाती है और अंतिम रूप से विनिश्चय नहीं किया जाता है, अर्थात्, किसी मामले में जहां कोई अपील या पुनरीक्षण सक्षम है, जब तक कि उस अपील या पुनरीक्षण पर सुनवाई नहीं की जाती है और उसका अंतिम रूप से विनिश्चय नहीं किया जाता है या जहां कोई अपील या पुनरीक्षण प्रस्तुत नहीं किया गया है, जब तक कि ऐसी अपील या पुनरीक्षण के लिए विहित परिसीमा की कालावधि समाप्त नहीं हो जाती है ।

(ख) जिस पर सुनवाई हो गई है और जिसका अंतिम रूप से विनिश्चय हो गया है केवल इस तथ्य के कारण लंबित नहीं समझी जाएगी कि उसमें पारित डिक्री, आदेश या दंडादेश के निष्पादन के लिए कार्यवाहियां लंबित हैं ।"

इस प्रकार सान्याल समिति ने संदिग्ध के हितों का, जहां दांडिक कार्यवाहियां लंबित या सन्निकट थीं, विनिर्दिष्ट रूप से संरक्षण किया, यदि उस व्यक्ति पास जिसने प्रकाशन किया था, यह विश्वास करने के लिए कोई युक्तियुक्त आधार नहीं था कि कार्यवाही लंबित या सन्निकट थी । उपधारा (3) के अधीन, यदि उसके पास यह विश्वास करने के लिए युक्तियुक्त आधार थे कि प्रकाशन में न्यायालय के अनुक्रम में बाधा डालने के लिए यथा पूर्वोक्त परिगणित कोई मामला अंतर्विष्ट नहीं था, तो वहां कोई अवमान नहीं था । धारा 3(4) के परंतुक में कथन है कि यदि कोई गिरफ्तारी नहीं की गई है तो यह उपधारणा की जाएगी कि यह विश्वास करने के लिए कोई युक्तियुक्त आधार नहीं है कि कार्यवाहियां सन्निकट हैं ।

किंतु यह स्थिति, गिरफ्तारी की तारीख के बारे में, 1968-70 में संसदीय संयुक्त समिति द्वारा छोड़ दी गई थी ।

संसदीय संयुक्त समिति (1968-1970) : 'सन्निकट' शब्द छोड़ दिया और वास्तव में न्यायालय में 'लंबित' होने की अपेक्षा की ।

संसदीय संयुक्त समिति (भार्गव समिति) ने 23-2-1970 को अपनी रिपोर्ट दी । उसने एक प्रारूप विधेयक तैयार किया और उसे गजट में फरवरी, 1968 में प्रकाशित किया और उत्तरों को आमंत्रित किया । उत्तर प्राप्त होने के पश्चात् विधेयक को अंतिम रूप दिया गया था । उसमें 'अवमान' की परिभाषा उपबंधित की गई किंतु खंड (3) से (7) में कथित किया गया कि क्या अवमान नहीं होगा । रिपोर्ट ने पैरा 15 में यथानिम्नलिखित कहा :

"15. ....

(ख) जिस पर सुनवाई हो गई है और जिसका अंतिम रूप से विनिश्चय हो गया है केवल इस तथ्य के कारण लंबित नहीं समझी जाएगी कि उसमें पारित डिक्री, आदेश या दंडादेश के निष्पादन के लिए कार्यवाहियां लंबित हैं ।"

इस प्रकार सान्याल समिति ने संदिग्ध के हितों का, जहां दांडिक कार्यवाहियां लंबित या सन्निकट थीं, विनिर्दिष्ट रूप से संरक्षण किया, यदि उस व्यक्ति पास जिसने प्रकाशन किया था, यह विश्वास करने के लिए कोई युक्तियुक्त आधार नहीं था कि कार्यवाही लंबित या सन्निकट थी । उपधारा (3) के अधीन, यदि उसके पास यह विश्वास करने के लिए युक्तियुक्त आधार थे कि प्रकाशन में न्यायालय के अनुक्रम में बाधा डालने के लिए यथा पूर्वोक्त परिगणित कोई मामला अंतर्विष्ट नहीं था, तो वहां कोई अवमान नहीं था । धारा 3(4) के परंतुक में कथन है कि यदि कोई गिरफ्तारी नहीं की गई है तो यह उपधारणा की जाएगी कि यह विश्वास करने के लिए कोई युक्तियुक्त आधार नहीं है कि कार्यवाहियां सन्निकट हैं ।

किंतु यह स्थिति, गिरफ्तारी की तारीख के बारे में, 1968-70 में संसदीय संयुक्त समिति द्वारा छोड़ दी गई थी ।

संसदीय संयुक्त समिति (1968-1970) : 'सन्निकट' शब्द छोड़ दिया और वास्तव में न्यायालय में 'लंबित' होने की अपेक्षा की ।

संसदीय संयुक्त समिति (भार्गव समिति) ने 23-2-1970 को अपनी रिपोर्ट दी । उसने एक प्रारूप विधेयक तैयार किया और उसे गजट में फरवरी, 1968 में प्रकाशित किया और उत्तरों को आमंत्रित किया । उत्तर प्राप्त होने के पश्चात् विधेयक को अंतिम रूप दिया गया था । उसमें 'अवमान' की परिभाषा उपबंधित की गई किंतु खंड (3) से (7) में कथित किया गया कि क्या अवमान नहीं होगा । रिपोर्ट ने पैरा 15 में यथानिम्नलिखित कहा :

"15. ....

न्यायालय के अवमान की विधि नागरिकों के व्यक्तिगत स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मूल अधिकारों को छूती है और इसलिए यह अनिवार्य है कि सभी को इस बारे में स्पष्ट समझ होनी चाहिए । तथापि, समिति इस बात से अवगत थी कि न्यायालय के अवमान की संकल्पना को निश्चित शब्दों में परिभाषित करना कठिन होगा, फिर भी उसकी उचित परिभाषा बनाना या उसे सूत्र रूप में प्रकट करना मानवीय सूझबूझ के परे नहीं था । अतः समिति ने विधेयक में इस पहलू पर बहुत गंभीर और व्यापक चिंतन के पश्चात् विधेयक के खंड (2) में 'न्यायालय का अवमान' अभिव्यक्ति की परिभाषा विकसित की है । ऐसा करते हुए, समिति ने अवमानों के सुविज्ञात और परिचित वर्गीकरण को 'सिविल अवमान' और 'दांडिक अवमान' में अपनाया है और अवमान के प्रत्येक वर्ग या प्रवर्ग के अनिवार्य संकेत और अवयव दिए हैं । समिति आशा करती है कि प्रस्तावित परिभाषाएं जनता को यह जानने में समर्थ करने में कि न्यायालय के अवमान का क्या अभिप्राय होता है, दूर तक जाएंगी जिससे कि वे इससे बच सकें और न्यायालयों को इसे प्रशासित करने में सरलता होगी । प्रस्तावित परिभाषा, समिति विश्वास करती है कि अपरिभाषित विधि से उत्पन्न होने वाली अनिश्चितताओं को भी हटाएगी और अवमान की विधि का स्वस्थ आधारों पर विकास होने में सहायता करेगी ।"

किंतु पैरा 16 में, समिति ने "विधेयक में समिति द्वारा अन्य मुख्य परिवर्तन" के प्रति निर्दिष्ट किया । उन्होंने कहा कि उसके लिए कारण " उत्तरवर्ती" पैरा में उपवर्णित किए गए हैं और वे यथा निम्नलिखित हैं :

खंड 3 :

"..... ....

पैरा (1) (मौलिक) : समिति ने अनुभव किया कि आसन्न कार्यवाही के संबंध में 'सन्निकट' शब्द अस्पष्ट है और इसकी वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में असम्यक् रूप से बाधा डालने की संभावना है । समिति का विचार है कि ऐसे मामलों के, जहां कार्यवाहियां सन्निकट कही जा सकती हैं और ऐसे मामलों के, जहां वे नहीं हो सकती हैं, विशेष रूप से आपराधिक मामलों में, बीच में कोई रेखा खींचना बहुत कठिन है । अतः समिति ने खंड से सन्निकट कार्यवाहियों के प्रति निर्देश को हटा दिया है और उपखंड (1) को यथोचित रूप से उपांतरित कर दिया है ।

उपखंड (2) (मौलिक) : इस उपखंड का सन्निकट कार्यवाहियों के प्रति निर्देश को हटाने के परिणामस्वरूप, जैसा पहले वर्णित है, लोप किया गया है ।

उपखंड (2) (नया) : समिति ने यह स्पष्ट करने के लिए एक नए उपखंड को जोड़ा है कि किसी मामले का कोई प्रकाशन न्यायालय के अवमान का गठन करने वाला नहीं समझा जाना चाहिए यदि वह किसी ऐसी कार्यवाही के संबंध में किया गया है, जो किसी न्यायालय में प्रकाशन के समय लंबित नहीं है ।

उपखंड (3) : ... .

उपखंड (4) (मौलिक) : सन्निकट कार्यवाहियों में सबूत के भार से संबंधित इस उपखंड के परंतुक का, उपखंड (1) से सन्निकट कार्यवाहियों के प्रति निर्देश को हटाने के परिणामस्वरूप, लोप किया गया है । इसको ध्यान में रखते हुए, समिति ने यह अनुभव किया कि यह उपखंड, जो साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 105 में नियम को अन्यथा पुनः प्रस्तुत करता है, अनावश्यक है और इसलिए समिति ने इस उपखंड को हटा दिया ।

खंड (3) का स्पष्टीकरण– लंबित न्यायिक कार्यवाही से संबंधित मौलिक स्पष्टीकरण में समय की वह कालावधि है जिस तक कोई कार्यवाही उस समय को, जिससे कार्यवाही प्रारंभ हुई कही जाती है, अधिकथित किए बिना लंबित कही गई

है । समिति का विचार है कि वह प्रक्रम या वे प्रक्रम जिनसे लंबित होना प्रारंभ होता है, स्पष्टीकरण में उपबंधित किए जाने चाहिए और कोई कार्यवाही लंबित समझी जानी चाहिए जब मामला वास्तव में किसी न्यायालय के समक्ष जाता है और वह उसका मामला हो जाता है । अतः समिति ने स्पष्टीकरण के पैरा (क) का पुनः प्रारूपण किया और उसमें उन उपायों को इंगित किया जिनको करने के पश्चात् कोई सिविल या आपराधिक मामला प्रारंभ हुआ समझा जाना चाहिए ।"

प्रश्न है कि क्या 1970 में संयुक्त समिति द्वारा किए गए परिवर्तन उच्चतम न्यायालय द्वारा ए. के. गोपालन बनाम नूरदीन और मेनका गांधी मामले में घोषित विधि से संगत है?

1970 में संयुक्त समिति द्वारा लाए गए परिवर्तनों की विधिमान्यता पर, जो 1963 में सान्याल समिति द्वारा तैयार किए गए प्रारूप विधेयक में ' सन्निकट' शब्द छोड़ कर और आरोप पत्र या चालान के फाइल करने की तारीख के पूर्व किए गए सभी प्रकाशनों का अपवर्जन करके, चाहे वह व्यक्ति प्रकाशन की तारीख तक गिरफ्तार किया गया था, लाए गए थे, मेनका गांधी के मामले 1978 (1) एस.सी.सी. 248 में विनिश्चित रूप में विधि की सम्यक् प्रक्रिया और अनुच्छेद 21 में घोषित जीवन और स्वतंत्रता के मूल अधिकार की दृष्टि से और ए. के. गोपालन बनाम नूरदीन ए.आई.आर. 1970 एस.सी. 1694 में इस बारे में प्रकट किए गए विचार की दृष्टि से कि कैसे स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को संतुलित किया जाना अपेक्षित है, विचार किया जाना होगा ।

संयुक्त समिति द्वारा 'सन्निकट' शब्द का लोप करने के लिए दिया जाने वाला प्रथम कारण यह है कि शब्द 'अस्पष्ट' है । इस पहलू पर अध्याय 5 में विचार किया जाएगा ।

संयुक्त समिति द्वारा दिया गया दूसरा कारण यह है कि यदि सन्निकट दांडिक कार्यवाहियों को प्रतिकूल प्रभाव के प्रश्न का विचारण करने के लिए ध्यान में रखा जाना है तो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता असम्यक् रूप से निर्बन्धित हो सकती है । इस पर अध्याय 7 में विचार किया जाएगा ।

अध्याय 5

क्या संसदीय संयुक्त समिति यह कहने में ठीक थी कि 'सन्निकट' शब्द अस्पष्ट है ?

इस अध्याय में, हम संयुक्त समिति (1969) के इस विचार के बारे में कि 1963 में सान्याल समिति द्वारा प्रयुक्त 'सन्निकट' शब्द 'अस्पष्ट' है, चर्चा करेंगे ।

इस पहलू पर आगे चर्चा करने से पूर्व कि क्या संसदीय संयुक्त समिति यह कहने में ठीक थी कि 'सन्निकट' शब्द, जैसा कि उसका 1963 में सान्याल समिति द्वारा प्रयोग किया गया है, अस्पष्ट था, हम सान्याल समिति के दूसरे कथन के प्रति निर्देश करेंगे कि भारत एक विशाल देश है और जो कुछ एक भाग में प्रकाशित होता है वह देश के दूसरे भाग की जनता की पहुंच के अंदर नहीं होता ।

क्या भारत के एक भाग के प्रकाशन दूसरे भागों तक नहीं पहुंचते हैं, जैसा कि सान्याल समिति (1963) द्वारा कथन किया गया है :

यद्यपि सान्याल समिति, 1963 की अपनी रिपोर्ट में, गिरफ्तारी की तारीख के पक्ष में थी, जो किसी आपराधिक मामले के 'लंबित' होने को परिभाषित करने के लिए प्रारंभिक बिन्दु है और उसने विधेयक में 'सन्निकट' शब्द का उपयोग किया । तथापि, उसने कुछ संप्रेक्षण किए कि मीडिया द्वारा देश के एक भाग में किए गए प्रकाशन देश के दूसरे भागों तक नहीं पहुंचते हैं, क्योंकि हमारा देश बहुत विशाल है । 1963 में यह स्थिति थी ।

किंतु, हमारे दृष्टिकोण से, यह संप्रेक्षण उन क्रान्तिकारी परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए जो पिछले दो दशकों में मीडिया प्रकाशनों में लगभग आए हैं, आज मान्य नहीं रह गया है । टेलीविजन और केबिल सेवाओं तथा इंटरनेट में, जो आज शहरों, कस्बों और ग्रामों में लाखों व्यक्तियों की पहुंच के अंदर हैं, नई प्रौद्योगिकी विकसित हुई है । प्रिन्ट मीडिया और रेडियो सेवाओं में बहुत अधिक वृद्धि हुई है । इंटरनेट पर समाचार समग्र विश्व में उपलब्ध है । इलेक्ट्रानिक मीडिया और इंटरनेट द्वारा समाचारों का प्रसारण इतना तीव्र है कि उसी

अध्याय 5

क्या संसदीय संयुक्त समिति यह कहने में ठीक थी कि 'सन्निकट' शब्द अस्पष्ट है ?

इस अध्याय में, हम संयुक्त समिति (1969) के इस विचार के बारे में कि 1963 में सान्याल समिति द्वारा प्रयुक्त 'सन्निकट' शब्द 'अस्पष्ट' है, चर्चा करेंगे ।

इस पहलू पर आगे चर्चा करने से पूर्व कि क्या संसदीय संयुक्त समिति यह कहने में ठीक थी कि 'सन्निकट' शब्द, जैसा कि उसका 1963 में सान्याल समिति द्वारा प्रयोग किया गया है, अस्पष्ट था, हम सान्याल समिति के दूसरे कथन के प्रति निर्देश करेंगे कि भारत एक विशाल देश है और जो कुछ एक भाग में प्रकाशित होता है वह देश के दूसरे भाग की जनता की पहुंच के अंदर नहीं होता ।

क्या भारत के एक भाग के प्रकाशन दूसरे भागों तक नहीं पहुंचते हैं, जैसा कि सान्याल समिति (1963) द्वारा कथन किया गया है :

यद्यपि सान्याल समिति, 1963 की अपनी रिपोर्ट में, गिरफ्तारी की तारीख के पक्ष में थी, जो किसी आपराधिक मामले के 'लंबित' होने को परिभाषित करने के लिए प्रारंभिक बिन्दु है और उसने विधेयक में 'सन्निकट' शब्द का उपयोग किया । तथापि, उसने कुछ संप्रेक्षण किए कि मीडिया द्वारा देश के एक भाग में किए गए प्रकाशन देश के दूसरे भागों तक नहीं पहुंचते हैं, क्योंकि हमारा देश बहुत विशाल है । 1963 में यह स्थिति थी ।

किंतु, हमारे दृष्टिकोण से, यह संप्रेक्षण उन क्रान्तिकारी परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए जो पिछले दो दशकों में मीडिया प्रकाशनों में लगभग आए हैं, आज मान्य नहीं रह गया है । टेलीविजन और केबिल सेवाओं तथा इंटरनेट में, जो आज शहरों, कस्बों और ग्रामों में लाखों व्यक्तियों की पहुंच के अंदर हैं, नई प्रौद्योगिकी विकसित हुई है । प्रिन्ट मीडिया और रेडियो सेवाओं में बहुत अधिक वृद्धि हुई है । इंटरनेट पर समाचार समग्र विश्व में उपलब्ध है । इलेक्ट्रानिक मीडिया और इंटरनेट द्वारा समाचारों का प्रसारण इतना तीव्र है कि उसी

क्षण जब कोई महत्वपूर्ण अपराध किया गया अभिकथित होता है और किसी पर संदेह किया जाता है, प्रत्येक समाचार चैनल उस स्थान पर जल्दी से पहुंच जाता है और मिनटों के अंदर उस समाचार के बारे में रिपोर्ट कर देता है । संदिग्ध को टेलीविजन पर और इंटरनेट पर दर्शित किया जाता है और लगभग समान जांच शुरू हो जाती है । अधिकांश समाचारपत्र अपने दैनिक समाचार पत्र के संक्षेपों को वेब पर प्रकाशित करते हैं ।

2002 तक भारत में लगभग 49,000 समाचार पत्र रहे हैं जिनमें से 20,000 हिंदी में हैं, तेरह सौ लाख (13 करोड़) से अधिक समाचार पत्रों का, सभी को इकट्ठा कर दिया जाए तो मिश्रित प्रसारण है, बारह सौ लाख (12 करोड़) रेडियो सेट हैं जिन्हें 20% जनता नियमित रूप से सुनती है, छह सौ पचास लाख टेलीविजन सेट हैं जिनकी चैनलों को 50% नियमित रूप से देखते हैं, तीन सौ पचास लाख से अधिक गृहस्थियों के पास केबिल टेलीविजन कनेक्शन हैं, 21% जनता एफ.एम. रेडियो सुनती है, करीब-करीब तीन सौ पचास लाख टेलीफोन हैं, सौ लाख से अधिक मोबाइल फोन हैं, 50 लाख से अधिक कंप्यूटर और इंटरनेट अभिदाता हैं । (भारत की प्रेस परिषद् द्वारा प्रकाशित राष्ट्रीय प्रेस दिन सोवैनियर में 2002 में डा. जय प्रकाश नारायण का लेख देखिए) । पिछले चार वर्षों में ये अंक बहुत तेजी से आगे बढ़ गए हैं ।

हिंदू (30 अगस्त 2006) में यह रिपोर्ट किया गया है कि नेशनल रीडरशिप स्टडी (एन.आर.एस. 2006) के अनुसार, जैसा 2006 में है, दैनिक समाचार पत्रों के 2036 लाख पाठक हैं और पत्रिकाओं सहित यह आंकड़ा 2220 लाख पाठकों को छूता है । सेटेलाइट टेलीविजन के 2300 लाख दर्शक हैं और टेलीविजन 1120 लाख भारतीय घरों में पहुंच गया है । केबिल और सेटेलाइट टेलीविजन वाले घरों की संख्या 680 लाख तक पहुंच गई है । इंटरनेट का उपयोग 94 लाख द्वारा किया जा रहा है और इसने पिछले तीन मास में 126 लाख को छू लिया है । रेडियो की पहुंच 100 करोड़ की जनसंख्या में से 27% तक है ।

एक नया विकास आज यह हुआ है कि संदिग्ध किसी टी.वी. चैनल के समक्ष या प्रेस के पास जाता है और अपनी निर्दोषिता का कथन करता है और यह स्पष्ट रूप से

पुलिस का यह दावा करने से निवारण करने के लिए है कि संदिग्ध ने स्वेच्छया अभ्यर्पण कर दिया है और अपने दोष को संस्वीकार कर लिया है । समान रूप से पीड़ितों और संभावी साक्षियों का समाचार चैनलों द्वारा साक्षात्कार किया जाता है । मीडिया में ये प्रौद्योगिकी विकास और इस प्रकार के व्यवहार तब नहीं थे जब सान्याल समिति ने अपनी 1963 की रिपोर्ट में एक पैरा में कहा था कि हमारा देश इतना विशाल है कि देश के एक भाग में किसी अपराध से संबंधित घटनाओं की जानकारी देश के दूसरे भागों तक नहीं फैलती है । यह कारण अब मान्य नहीं रह गया है । कुछ टेलीविजन चैनल राष्ट्रीय हैं और कुछ स्थानीय हैं, इस अर्थ में कि वे स्थानीय भाषाओं में समाचार प्रकाशित करते हैं किंतु एक ही केबिल नेटवर्क का भाग हैं और इन चैनलों तक देश के दूसरे भागों में भी पहुंचा जा सकता है । आज केबिल टी.वी. प्रणाली विभिन्न राज्यों में स्थानीय भाषाओं में प्रादेशिक टी.वी. चैनलों को प्रदर्शित करती है जो ऐसे ग्राहकों को मनोरंजन प्रदान करते हैं, जो उस स्थानीय भाषा को बोलने वाले उस विशिष्ट क्षेत्र के होते हैं । पंजाब में आप केरल या आन्ध्र प्रदेश या तमिलनाडु से समाचार देख सकते हैं, उन भाषा चैनलों से जो उनको, जो इन राज्यों के हैं और विपर्येन को मनोरंजन प्रदान करते हैं । राष्ट्रीय चैनल प्रादेशिक चैनलों से समाचार ले लेते हैं और प्रादेशिक चैनल राष्ट्रीय चैनलों से समाचार ले लेते हैं । समाचार पत्रों का भी प्रसार उससे, जो 1970 में था, बढ़ गया है और दूसरा लक्षण उनका राष्ट्रीय दैनिक समाचार पत्रों में राज्यों से समाचारों को देना और स्थानीय राज्य समाचार पत्रों में जिले के समाचार देना है । इस सब के अतिरिक्त समाचार पत्र विश्वव्यापी वेब पर अपने समाचार प्रकाशित करते हैं । अतः सान्याल समिति का संप्रेक्षण अब विधिमान्य नहीं रह गया है ।

<u>क्यों संयुक्त समिति अपनी रिपोर्ट 1111 (1969-70) में यह कहने में सही नहीं है कि सान्याल समिति द्वारा 1963 के विधेयक में प्रयुक्त 'सन्निकट' शब्द 'अस्पष्ट' है</u> :

संयुक्त समिति (1969-70) का तर्क कि सान्याल समिति द्वारा 1963 के अपने प्रारूप विधेयक में प्रयुक्त 'सन्निकट' दांडिक कार्यवाही शब्द 'अस्पष्ट' है और इससे अनिश्चितता होने की संभावना है, अब स्वीकार्य नहीं रह गया है । वस्तुतः उस तारीख तक

जब समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, उच्चतम न्यायालय ने ए. के. गोपालन बनाम नूरदीन ए.आई.आर. 1970 एस.सी. 1694 : (1969 (2) एस.सी.सी. 734) में विनिश्चित कर दिया था कि 'सन्निकट' शब्द से वह समय अभिप्रेत था जब कोई व्यक्ति गिरफ्तार किया गया था, यद्यपि लंबित होने की गणना उस समय से नहीं की जानी थी जब कोई प्रथम सूचना रिपोर्ट फाइल की गई थी । वह प्रथम बिन्दु उच्चतम न्यायालय द्वारा एक तरफ अनुच्छेद 19 (1)(2क) (अनुच्छेद 19 (2) के साथ पठित) में वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का और अनुच्छेद 21 के अधीन व्यक्ति की स्वतंत्रता का, जो सम्यक् प्रक्रिया की गारंटी देती है, संतुलन करने के प्रयोजन के लिए नियत किया गया था । उस निर्णय में वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रति स्पष्ट निर्देश है । अतः 'अस्पष्टता' के बारे में संयुक्त समिति का तर्क अब उपलब्ध नहीं रह गया है और कदाचित समिति का ध्यान उच्चतम न्यायालय के निर्णय की ओर, जो उस समय उसकी रिपोर्ट की तारीख तक आ गया था, आकर्षित नहीं किया गया था । यह प्रतीत होता है कि समिति की अंतिम बैठक 5 अक्तूबर, 1969 को हुई थी जब कि रिपोर्ट 20 फरवरी, 1970 को प्रस्तुत की गई थी । गोपालन के मामले में निर्णय 15 सितंबर, 1969 को परिदत्त किया गया था ।

आगे यह तथ्य कि 'सन्निकट' शब्द अस्पष्ट नहीं है, उससे स्पष्ट हो जाता है जो दूसरे देशों में किया गया है । कई देशों में गिरफ्तारी की तारीख को, जो प्रथम सूचना रिपोर्ट से पहले हो सकती है, किसी दांडिक कार्यवाही को 'लंबित' के रूप में मानने के लिए, चाहे न्यायालय में पुलिस द्वारा कोई आरोप पत्र या चालान फाइल न किया गया हो, प्रारंभिक बिन्दु के रूप में माना जाता है-

(क) यूनाइटेड किंगडम : गिरफ्तारी की तारीख को प्रारंभिक बिन्दु के रूप में स्वीकार किया गया है :

यू. के. कंटेम्प आफ कोर्ट एक्ट, 1981 की धारा 1 'कठोर दायित्व नियम' को पुरःस्थापित करती है जिससे अभिप्रेत है किविधि का शासन जिसके द्वारा आचरण को न्याय के अनुक्रम में, किसी विशिष्ट विधिक कार्यवाही में, बाधा डालने के लिए प्रवृत्ति के रूप में,

ऐसा करने के आशय के प्रति उदासीन होते हुए, न्यायालय का अवमान माना जा सकता है । धारा 2(1) कथन करती है कि कोई प्रकाशन, जिसके अंतर्गत प्रसारण है, केबिल कार्यक्रम या किसी भी रूप में अन्य संसूचना, जो जनता को स्वतंत्र रूप से या जनता के किसी भाग को संबोधित की जाती हैं, अवमान होगी यदि वह-

"सारवान रूप से ऐसे खतरे का सृजन करती है कि जिससे प्रश्नगत कार्यवाहियों में न्याय के अनुक्रम में गंभीर रूप से बाधा पड़ेगी या प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा" ।

उपधारा (3) कथन करती है कि कठोर दायित्व नियम प्रकाशन को केवल तब लागू होता है यदि प्रश्नगत कार्यवाहियां प्रकाशन के समय इस धारा के अर्थान्तर्गत सक्रिय हों । धारा 2 की उपधारा (4) महत्वपूर्ण है और यह कथन करती है :

"धारा 2(4) : अनुसूची 1 उन समयों का अवधारण करने के लिए लागू होती है जिन पर कार्यवाहियों को इस धारा के अर्थान्तर्गत सक्रिय माना जाना है" ।

अनुसूची 1 (खंड 3) कथन करती है कि 'दांडिक कार्यवाहियां' पैरा 4 में विनिर्दिष्ट सुसंगत प्रारंभिक कदम से तब तक सक्रिय हैं जब तक कि पैरा 5 में वर्णित रूप में समाप्त नहीं हो जाती हैं । खंड (4) दांडिक कार्यवाहियों में प्रारंभिक कदमों के प्रति निम्नलिखित रूप में निर्देश करता है :

"(क) वारंट के बिना गिरफ्तारी ;

(क) गिरफ्तारी के लिए किसी वारंट का जारी करना या स्कॉटलैंड में मंजूर करना ;

(ख) उपसंजात होने के लिए समन जारी करना या स्कॉटलैंड में न्यायालय में प्रस्तुत होने के लिए किसी वारंट की मंजूरी ;

(ग) किसी अभ्यारोपण की या आरोप विनिर्दिष्ट करने वाले अन्य दस्तावेज की तामील,

(घ) स्कॉटलैंड के सिवाय, मौखिक आरोप ।

खंड (5) दांडिक कार्यवाहियों के निष्कर्ष के प्रति निम्नलिखित रूप में निर्देश करता है :

(क) यथास्थिति, दोषमुक्ति द्वारा या दंडादेश द्वारा,

(ख) किसी अन्य अधिमत, निष्कर्ष, आदेश या विनिश्चय द्वारा जो कार्यवाही को समाप्त करता है ;

(ग) बंद करके या विधि के प्रवर्तन द्वारा ।

खंड (11) कथन करता है कि दांडिक कार्यवाहियां, जो उसकी गिरफ्तारी के लिए किसी वारंट की मंजूरी के जारी होने पर सक्रिय होती हैं, वारंट की तारीख से प्रारंभ होने वाली बारह मास की अवधि के अंत पर सक्रिय नहीं रह जाती हैं जब तक कि उसे उस अवधि के भीतर गिरफ्तार न कर लिया गया हो, किंतु पुनः सक्रिय हो जाती हैं यदि उसे पश्चातवर्ती गिरफ्तार कर लिया जाता है ।

यू. के. में, अभी हाल ही में, लॉर्ड होप ने 'मोंटोगोमरी वर्सेस एच.एम. एडवोकेट' (2001(2) डब्ल्यू एल. आर. 779) (पी.सी.) में यथा निम्नलिखित कहा :

"किसी व्यक्ति का किसी स्वतंत्र और निष्पक्ष अधिकरण द्वारा ऋजु विचारण का अधिकार बिना शर्त है । इसे अपराध का पता चलाने और दमन दमन करने के लोकहित के अधीनस्थ नहीं किया जाना है । इस संबंध में यह कहा जा सकता है कि परंपरागत अधिकार सामान्य विधि अधिकार से श्रेष्ठ है ।"

(ख) आस्ट्रेलिया : (न्यू साउथ वेल्स) : गिरफ्तारी की तारीख प्रारंभिक बिन्दु के रूप में :

न्यायालय अवमान संबंधी न्यू साउथ वेल्स विधि सुधार आयोग की रिपोर्ट (रिपोर्ट 100) 2003 (जिसे विचार विमर्श पत्र 43 (2000) के पश्चात जारी किया गया था) में एक प्रारूप विधेयक है जो संभावी जूरी सदस्यों, संभावी साक्षियों और संभावी पक्षकारों के प्रति निर्देश करता है और दांडिक अवमान को 'सक्रिय' दांडिक कार्यवाहियों को लागू करता है ।

प्रकाशन द्वारा 'सन्निकट' कार्यवाहियों पर प्रतिकूल प्रभाव न्यू साउथ वेल्स (आस्ट्रेलिया) में विधि का भाग है । प्रकाशन की प्रवृत्ति कार्यवाहियों की विरचना पर प्रतिकूल प्रभाव डालने की होनी चाहिए । रिपोर्ट से संलग्न विधेयक की धाराएं 7 (घ), 8(घ), 9(ग) अपेक्षा करती हैं कि प्रकाशन, प्रकाशन के समय परिस्थितियों के अनुसार, सारवान खतरे का सृजन करता है, यह कि जूरी सदस्य, साक्षी या पक्षकार या संभावी जूरी सदस्य या संभावी साक्षी या संभावी पक्षकार प्रभावित हो सकते हैं ।

अनुसूची 1 वर्णन करती है कि कब दांडिक कार्यवाहियां सक्रिय हैं और वह निम्नलिखित रूप में है :-

"अध्याय 1, भाग 1

(1) कब कोई दांडिक कार्यवाही सक्रिय है ?

(1) कोई दांडिक कार्यवाही धारा 7 के प्रयोजनों के लिए सक्रिय है :

(क) निम्नलिखित के शीघ्रतम से :

(i) न्यू साउथ वेल्स में या दूसरे राज्य अथवा राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी,

(ii) किसी आरोप का लगाना,

(iii) न्यायालय में उपस्थिति की सूचना का जारी किया जाना और उसका सुसंगत न्यायालय की रजिस्ट्री में फाइल किया जाना,

(iv) पदेन अध्यारोपण का फाइल किया जाना,

(v) आस्ट्रेलिया से भिन्न किसी देश में किसी आदेश का करना कि किसी व्यक्ति को किसी अपराध के विचारण के लिए न्यू साउथ वेल्स में प्रत्यर्पित किया जाए ।

(ग) न्यूजीलैंड निर्णयज विधि गिरफ्तारी की तारीख को प्रारंभिक बिन्दु के रूप में स्वीकार करती है ।

न्यूजीलैंड बिल आफ राइट्स, 1990 के अधीन धारा 25(क) किसी स्वतंत्र अधिकरण द्वारा ऋजु और सार्वजनिक सुनवाई के अधिकार का और धारा 25(ग) निर्दोष होने की उपधारणा किए जाने के अधिकार का, जब तक कि विधि के अनुसार दोषी साबित न हो जाए, संरक्षण करती है । धारा 24(ङ) किसी अपराध से आरोपित किसी अभियुक्त के जूरी के समक्ष विचारण के लिए अधिकार का, जब अपराध के लिए शास्ति तीन मास से अधिक का कारावास हो, संरक्षण करती है । न्यूजीलैंड क्रिमिनल जस्टिस एक्ट, 1985 की धारा 138(2) न्यायालयों को दांडिक कार्यवाहियों पर रिपोर्ट करने से प्रेस को निवारित करने वाले आदेश करने के लिए सशक्त करती है, जब यह समझा जाए कि न्याय के हित, लोक नैतिकता, किसी लैंगिक अपराध या उद्दापन के पीड़ित की प्रसिद्धि या न्यूजीलैंड की सुरक्षा अपेक्षा करती है कि ऐसा आदेश पारित किया जाए ।

कई ऐसे मामले हैं जो गिरफ्तारी की तारीख के प्रति प्रकाशनों द्वारा प्रतिकूल प्रभाव डालने के प्रश्न पर विचार करने के लिए प्रारंभिक बिन्दु के रूप में निर्देश करते हैं । यह कहा जाता है कि यह जूरी द्वारा विचारण के अधिकार से प्रासंगिक है कि "कोई व्यक्ति, जो किसी अपराध का अभियुक्त है, हकदार है कि वह ..... ऐसी जूरी को मामला प्रस्तुत करवाए जिसके सदस्यों के मस्तिष्क स्वतंत्र हों और जो पक्षपात रहित हों और जिन पर ऐसी किसी चीज से बाधा न पड़ती हो जिसे कि कोई समाचारपत्र, अपने पाठकों की सुविधा के लिए, ... मामले के किसी भाग की सुनवाई होने के पूर्व प्रकाशित करने का भार अपने ऊपर ले ।" (अटर्नी जनरल टोन्क्स : 1934 एन जेड एल आर 141 (149) (एफ. सी.) । उस मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि किसी ऐसे व्यक्ति के, जो गिरफ्तार किया गया है विचारण के पूर्व फोटोग्राफों का प्रकाशन प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला होगा यदि पहचान के एक विवाद्यक होने की संभावना हो और वह अवमान के बराबर होगा । न्यायाधीश ब्लेयर ने मत व्यक्त किया :

"यदि किसी अभियुक्त व्यक्ति का फोटो किसी समाचार पत्र में उसकी गिरफ्तारी के तुरंत पश्चात् प्रसारित किया जाता है तो ऐसे साक्षी, जिन्होंने तब तक उसे नहीं देखा है, अचेतन रूप से यह विश्वास कर सकते हैं कि अभियुक्त, जैसा वह फोटो में है, वह व्यक्ति है जिसे उन्होंने देखा है । यह तथ्य कि अभियुक्त व्यक्ति की पहचान करने का दावा करने वाले साक्षी ने, उसकी पहचान करने के पूर्व उसकी फोटो देखी है, प्रतिवादी को साक्षी की पहचान की गंभीरता को प्रश्नगत करने के लिए बहाना देता है ।"

टोन्क्स ने 1934 में न्यूजीलैंड में जो विनिश्चित किया उसको हाल में आस्ट्रेलियन न्यायालय द्वारा अटर्नी जनरल (एन एस डब्ल्यू) वर्सस टाइम इंक. मैगजीन कंपनी लिमिटेड (रिपोर्ट नहीं किया गया । सी.ए. 40331/94 तारीख 15 सितंबर, 1994) में बैक पैकर, क्रमिक हत्याओं के मामले में अभियुक्त की एक आइवान मिलट, फोटो के प्रकाशन से उद्भूत होने वाले मामले में अपनाया गया था । साप्ताहिक पत्रिका 'हू' ने मिलट के फोटो को उसकी गिरफ्तारी के पश्चात् अपने प्रथम पृष्ठ पर प्रकाशित किया था । उस खतरे के प्रति निर्देश करते हुए जो ऐसे कार्य सृजित करते हैं, मुख्य न्यायमूर्ति ग्लीसन ने मत व्यक्त किया :

"पहचान साक्ष्य के बारे में एक विशिष्ट समस्या वह कठिनाई है जो वहां विद्यमान होती है जहां किसी व्यक्ति को, किसी अभियुक्त की पहचान का कार्य पूरा करने के पूर्व, अभियुक्त की फोटो दर्शित की जाती है । यदि उदाहरण के लिए पुलिस की क्रमबद्ध पंक्ति में किसी अभियुक्त व्यक्ति की पहचान करने के पूर्व किसी साक्षी को पुलिस अधिकारी द्वारा अभियुक्त की फोटो दर्शित की गई हो तो यह जोर से बहस की जाएगी कि अभियुक्त लाइन में पहचान निरर्थक थी या कम से कम उसका बहुत सीमित मूल्य था । यह तर्क दिया जाएगा कि उसके कारण जिसे कभी-कभी विस्तापन प्रभाव के रूप में वर्णित किया जाता है इस बात की बड़ी जोखिम थी कि क्रमबद्ध पंक्ति के समय, साक्षी उस व्यक्ति की पहचान का नहीं, जिसे साक्षी ने

किसी पूर्व अवसर पर देखा था, किंतु फोटोग्राफ वाले व्यक्ति की पहचान का कार्य कर रहा था ।"

न्यूजीलैंड में, पुलिस के समक्ष की गई अभिकथित संस्वीकृतियों को दिया गया प्रचार किसी संदिग्ध या अभियुक्त पर गंभीर रूप से प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है । संस्वीकृति को बाद में अग्राह्य माना जा सकता है, जिस दशा में, किसी संस्वीकृति की रिपोर्ट का किसी जूरी के सदस्य द्वारा पुनः स्मरण करना अत्यधिक प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला हो सकता है । किसी अभियुक्त के मनोवैज्ञानिक इतिहास की रिपोर्ट, जिसकी प्रवृत्ति किसी व्यक्ति को खतरनाक के रूप में दर्शित करने की हो, समान रूप से विचारण पर प्रभाव डाल सकती है ।

सालिसिटर जनरल वर्सस वेलिंग्टन न्यूजपेपर्स लिमिटेड : 1995 (1) एन जेड एल आर 45 में गिसबोर्न हेरल्ड और दो अन्य समाचार पत्र प्रकाशकों को जॉन गिल्स की पूर्व दोषसिद्धियों की, किसी पुलिस कान्स्टेबल की प्रयाशित हत्या के आरोप पर, गिसबोर्न में उसकी गिरफ्तारी के समय रिपोर्ट करने के लिए अवमान का सिद्धदोषी ठहराया गया था ।

सालिसिटर जनरल वर्सस टेलीविजन न्यूजीलैंड : 1989 (1) एन जेड एल आर पृष्ठ 1 (सी.ए.) में, अपीली न्यायालय ने इस प्रतिवाद को नामंजूर कर दिया कि न्यायालय सन्निकट न्यायालय कार्यवाहियों पर प्रतिकूल प्रभाव का निवारण करने के लिए कोई व्यादेश नहीं दे सका । उसने मत व्यक्त किया :

> "हमारी राय में न्यूजीलैंड की विधि को इसको अवश्य मान्यता देनी चाहिए कि ऐसे मामलों में, जहां दांडिक कार्यवाहियों का प्रारंभ बहुत ही होने की संभावना है न्यायालय को किसी व्यादेश को देकर न्यायालय के अवमान के खतरे का निवारण करने की अंतर्निहित अधिकारिता प्राप्त है । किंतु प्रेस और अन्य मीडिया की स्वतंत्रता में आसानी से बाधा नहीं डाली जानी है और यह अवश्य दर्शित किया जाना चाहिए कि ऐसी सामग्री के, जो विचारण की ऋजुता पर गंभीर रूप से प्रतिकूल प्रभाव डालेगी, प्रकाशन की वास्तव में संभावना है ।" (न्यायाधीश कुक)

ऐसे तथ्यों पर, कोई कार्रवाई नहीं की गई थी क्योंकि प्रकाशन में कोई व्यौरे नहीं थे । अटर्नी जनरल वर्सस स्पोर्ट्स न्यूजपेपर्स लिमिटेड : 1992(1) एन जेड एल आर 503, में न्यूजीलैंड खंडपीठ न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि दांडिक कार्यवाहियां अवश्य ही लंबित या सन्निकट होनी चाहिए । टेलीविजन न्यूजीलेंड मामले में इस पर निर्णय को आधार बनाने के बजाय कि दांडिक कार्यवाहियां सन्निकट थी या नहीं, न्यायालय ने 'उस सामग्री के, जो विचारण की ऋजुता पर गंभीर रूप से प्रतिकूल प्रभाव डालेगी, प्रकाशन की वास्तविक संभावना' के परीक्षण को अधिकथित किया' ।

(घ) आस्ट्रेलिया : निर्णयज विधि और विधि सुधार आयोग का 'सन्निकट' कार्यवाहियों के कारण प्रतिकूल प्रभाव : आस्ट्रेलिया में स्वीकार किया गया :

पश्चिमी आस्ट्रेलिया में एविडेंस एक्ट 1906 की धारा 11क में एक उपबंध है जो किसी न्यायाधीश को किसी कार्यवाही में, ऐसे साक्ष्य के प्रकाशन को निर्बन्धित करने के लिए प्राधिकृत करता है जहां न्यायाधीश समझता है कि प्रकाशन किसी अभियोजन पर, जो किसी व्यक्ति के विरुद्ध किया गया है या किया जा सकता है, प्रतिकूल प्रभाव डालने की ओर प्रवृत्त हो सकता है ।

आस्ट्रेलिया के विधि सुधार आयोग ने 1986, 1987 और 2000 में प्रकाशन द्वारा अवमान के विवाद्यकों को संबोधित करते हुए कई विचार विमर्श पत्र जारी किए । ये पत्र जोर देकर कहते हैं कि अवमान तब उद्भूत होता है जब प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली सामग्री का, इस ओर ध्यान दिए बिना कि किसी सन्निकट या चल रहे न्यायालय मामले में चेतन रूप से बाधा डालने का आशय है या नहीं, प्रकाशन किया जाता है । प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले प्रचार के विशिष्ट उदाहरणों में किसी अभिकथित अभियुक्त के पूर्व आपराधिक रिकार्ड का प्रकाशन या अपराधी के दोषी या निर्दोष होने का परोक्ष संकेत और किसी संस्वीकृति का रिपोर्ट करना सम्मिलित है (आस्ट्रेलियन लॉ रिफार्म कमीशन, 1987; पीयरसन, 1997) (जैसा कि की.लेन एम. डग्लस द्वारा अपने लेख " आस्ट्रेलियन प्रिन्ट

मीडिया में विचारण-पूर्व प्रचार : पक्षपात के लिए भेद निकलवाना जूरी सदस्यों की विनिश्चय प्रक्रिया पर प्रभाव डालता है । (2002)") ।

आगे हम आस्ट्रेलिया में ग्लैनन के विचित्र मामले के प्रति निर्देश करेंगे । ग्लैनन का मामला लंबित दांडिक कार्यवाहियों से संबंधित था किंतु वह वर्तमान संदर्भ में सुसंगत है ।

संक्षेप

अतः हमारी राय है कि 'सन्निकट' दांडिक कार्यवाहियां शब्द अब अस्पष्ट नहीं रह गया है जहां तक उच्चतम न्यायालय ने ए. के. गोपालन बनाम नूरदीन ए.आई.आर. 1970 एस.सी. 1694 में कहा है कि किसी व्यक्ति की 'गिरफ्तारी' के पश्चात् और कोई आरोप पत्र फाइल किए जाने के पूर्व किए गए प्रकाशन 'लंबित' होने का प्रारंभिक बिन्दु हो सकते हैं । वे प्रकाशन, जो ऐसे संदिग्ध पर, जिसे आरोप पत्र/चालान फाइल किए जाने के पूर्व गिरफ्तार किया गया है, प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले हैं, धारा 3 के अधीन अवमान हो सकते हैं यदि वे न्याय के हेतुक में बाधा डालते हैं या जिनकी प्रवृत्ति बाधा डालने की ओर है । हमारे विचार में 'सन्निकट' शब्द, यदि उसे इस प्रकार परिभाषित किया गया है तो, अब अस्पष्ट होने वाला नहीं कहा जा सकता । वस्तुतः यू. के. में, न्यू साउथ वेल्स में, गिरफ्तारी की तारीख को प्रारंभिक बिन्दु के रूप में माना जाता है जबकि आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड में यह तथ्य कि दांडिक कार्यवाहियां 'सन्निकट' हैं, पर्याप्त विचारण है ।

इन सभी कारणों से, हमारा दृढ़ता से यह विचार है कि यद्यपि धारा 3(2) को प्रतिधारित किया जा सकता है जिससे कि कतिपय प्रकाशनों को अवमान से वर्जित किया जा सके, धारा 3 के नीचे स्पष्टीकरण को, जहां तक दांडिक कार्यवाहियों से संबंधित खंड (ख) का संबंध है, उपांतरित किए जाने की आवश्यकता है, जिससे कि अभियुक्त के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किए जाने या चालान किए जाने या समन अथवा वारंट जारी किए जाने के अतिरिक्त किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी को सम्मिलित किया जा सके ।

अध्याय 6

क्या 'ए. के. गोपालन बनाम नूरदीन' (1969) (एस.सी.) 'सन्निकट' को केवल गंभीर अपराधों के लिए गिरफ्तारियों के संबंध में सुसंगत बनाता है ? चौबीस घंटे के नियम का क्या प्रभाव है ?

इस अध्याय में हम ए. के. गोपालन बनाम नूरदीन : 1969(2) एस.सी.सी. 734 की एस.सी.सी. रिपोर्ट में संपादकीय टिप्पण के बारे में विचार करेंगे जहां यह मत व्यक्त किया गया है कि उस मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि दांडिक कार्यवाहियां सन्निकट हैं क्योंकि वह किसी हत्या के मामले में गिरफ्तारी का मामला था । यदि अपराध गंभीर नहीं है तो गिरफ्तारी से यह अभिप्रेत नहीं होता कि दांडिक कार्यवाहियां सन्निकट हैं ।

हम इस विचार पर आलोचनात्मक रूप से चर्चा करने का प्रस्ताव करते हैं । हम, जैसा कि इस अध्याय के अंत में देखा जाएगा, एक व्यापक विचार विमर्श करके इस निष्कर्ष पर आए हैं कि केवल 'गंभीर' अपराधों के मामले में दांडिक कार्यवाहियों के गिरफ्तारी के पश्चात् 'सन्निकट' होने का कोई प्रश्न नहीं हो सकता । 'गंभीर' और 'कंम गंभीर' अपराधों के बीच किसी ऐसे विभाजन को मान्यता नहीं दी जा सकती और न किसी देश में यह विनिश्चय करने के लिए मान्यता दी गई है कि यदि दांडिक कार्यवाहियां किसी गिरफ्तारी के पश्चात् 'सन्निकट' हैं ।

हम अपना विचार विमर्श 'सन्निकट' शब्द के बारे में चर्चा करने वाले उच्चतम न्यायालय के दो निर्णयों से प्रारंभ करते हैं ।

इस विषय पर पहला मामला सुरेन्द्र मोहान्ती बनाम उड़ीसा राज्य (1956 की दांडिक अपील संख्या 107 : निर्णय तारीख 23-1-1961) का और दूसरा ए. के. गोपालन बनाम नूरदीन 1969(2) एस.सी.सी. 734 का है, जिसे हम पहले ही निर्दिष्ट कर चुके हैं ।

(क) पहले मामले में सुरेन्द्र मोहान्ती (रिपोर्ट नहीं किया गया, विस्तार से ए. के. गोपालन के मामले में उद्धृत) में उच्चतम न्यायालय ने इस बारे में प्रश्न की परीक्षा की कि

क्या मीडिया में किसी कथन का प्रतिकूल रूप से प्रभाव डालने वाला प्रकाशन उस समय पर, जब उठाया गया कदम केवल दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 154 के अधीन प्रथम सूचना रिपोर्ट का रिकार्ड करना था, न्यायालय का अवमान हो सकता है । न्यायाधीश कपूर ने मत व्यक्त किया :

"शिकायत किए गए टिप्पणों के प्रकाशन के पूर्व, केवल प्रथम सूचना रिपोर्ट फाइल की गई थी जिसमें यद्यपि कुछ व्यक्तियों का बंद में भंग कारित करने के लिए उत्तरदायी होने का संदिग्ध होने के रूप में उल्लेख किया गया था, किंतु उनमें से किसी के भी विरुद्ध कोई निश्चित अभिकथन नहीं था । पुलिस द्वारा पश्चातवर्ती फाइल किए गए आरोप पत्र में ये संदिग्ध अभियुक्त व्यक्तियों में से प्रतीत नहीं होते थे । अतः यह तर्क दिया गया था कि प्रकाशन द्वारा न्याय के सम्यक् अनुक्रम में बाधा डालने की कोई प्रवृत्ति या संभावना नहीं हो सकती थी । राज्य के लिए विद्वान अपर महासालिसिटर ने दूसरी तरफ प्रस्तुत किया कि यदि किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई अभियोजन प्रारंभ किए जाने की कोई युक्तियुक्त संभाव्यता है और ऐसा अभियोजन केवल सन्निकट हो तो प्रकाशन न्यायालय का अवमान होगा ।

न्यायालय का अवमान अधिनियम (1952) उच्च न्यायालयों को अवर न्यायालयों के अवमान के लिए दंड देने की शक्ति प्रदान करता है । यह शक्ति विस्तृत है और इसे मनमाना कहा गया है । न्यायालयों को इस शक्ति का प्रयोग सतर्कता से, ध्यानपूर्वक और निर्बन्धन के साथ तथा केवल ऐसे मामलों में जहां न्याय का अनुक्रम शुद्ध और अप्रभावित बनाए रखने के लिए यह आवश्यक हो, करना चाहिए । यह अवश्य दर्शित किया जाना चाहिए कि यह संभावना थी कि प्रकाशन न्याय के सम्यक् अनुक्रम में सारवान रूप से बाधा डालेगा ; अवमान के लिए सुपुर्दगी अनुक्रम का विषय नहीं है किंतु न्यायालय के विवेकाधिकार के भीतर है, जिसका प्रयोग सावधानी से किया जाना चाहिए । अवमान का गठन करने के लिए यह दर्शित करना आवश्यक नहीं है कि वस्तुतः किसी न्यायाधीश या जूरी पर

ठेस पहुंचाने वाले प्रकाशन से प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा किंतु अपराध की मुख्य बात आचरण है, जो उस पक्षपात का वातावरण, जिसके बीच कार्यवाहियों को होना होगा, और न्याय के सम्यक् अनुक्रम में बाधा डालने या ऐसे व्यक्तियों के विरुद्ध, जिनका विचारण किया जा रहा है या जिन्हें विचारण के लिए लाया जा सकता है, मानवता पर प्रतिकूल प्रभाव डालने की प्रवृत्ति उत्पन्न करने के लिए परिगणित किया गया हो । इसका प्रयोग नागरिकों के अधिकारों का परिरक्षण करने के लिए किया जाना चाहिए जिससे कि उनके मामलों का ऋजु विचारण हो सके और कार्यवाहियां सभी प्रतिकूल प्रभावों या पूर्वाग्रहों से मुक्त वातावरण में हो सकें । यह अवमान होगा यदि किसी ऐसे समाचार या टिप्पण का प्रकाशन हो, जिसकी पक्षकारों या उनके मामलों पर प्रतिकूल प्रभाव डालने की या न्याय के सम्यक् अनुक्रम में बाधा डालने की प्रवृत्ति हो या जो उसके लिए परिगणित हो, या जिसकी ऐसी संभावना हो ।

इस बारे में कि कब कार्यवाहियां प्रारंभ होती हैं और कब वे न्यायालय के अवमान के अपराध के प्रयोजनों के लिए सन्निकट हैं, अवश्य प्रत्येक मामले की परिस्थितियों पर निर्भर होना चाहिए और इस मामले में उन निश्चित परिसीमाओं को परिभाषित करना,जिनके भीतर उन्हें परिरुद्ध किया जाना है, अनावश्यक है ।

प्रथम सूचना रिपोर्ट का फाइल किया जाना, स्वयं में, यह स्थापित नहीं करता कि किसी न्यायालय में कार्यवाहियां सन्निकट हैं । ऐसा करने के लिए विभिन्न तथ्यों को साबित करना होगा और प्रत्येक मामले में वह प्रश्न साबित किए गए तथ्यों पर निर्भर करेगा ।"

न्यायाधीश कपूर ने आगे मत व्यक्त किया :

"वर्तमान मामले में वह सब जो हुआ यह था कि पुलिस को प्रथम सूचना रिपोर्ट की गई थी जिसमें कतिपय संदिग्धों को नामित किया गया था ; वे गिरफ्तार नहीं किए गए थे ; अन्वेषण प्रारंभ किया गया था और उस तारीख को

जब ठेस पहुंचाने वाला लेख प्रकाशित किया गया था कोई न्यायिक कार्यवाही नहीं हुई थी या सूचना रिपोर्ट में नामित व्यक्तियों के विरुद्ध अनुध्यात नहीं थी । निःसंदेह अन्वेषण के पश्चात् उस रिपोर्ट में नामित संदिग्धों को विचारण के लिए नहीं भेजा गया था । उस तारीख को जब यह ठेस पहुंचाने वाला प्रकाशन किया गया था, न्यायालय में कोई कार्यवाही लंबित नहीं थी और न कोई ऐसी कार्यवाही सन्निकट थी ।"

उपर्युक्त संप्रेक्षणों के पढ़ने से यह दर्शित होता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154 के अधीन प्रथम सूचना रिपोर्ट के फाइल किए जाने की तारीख किसी दांडिक कार्यवाही को लंबित के रूप में मानने के लिए प्रारंभिक बिन्दु नहीं हो सकती, तथापि, अवमान हो सकता है यदि दांडिक कार्यवाहियां 'सन्निकट' हैं । उस मामले में आरोप पत्र में प्रथम सूचना रिपोर्ट में निर्दिष्ट कुछ नाम सम्मिलित नहीं किए गए थे । इस क्रम में कि प्रकाशन अवमान हैं, वे अवश्य ऐसे होने चाहिए जो न्याय के सम्यक् अनुक्रम में "सारवान रूप से" बाधा डालेंगे । यह दर्शित करना आवश्यक नहीं है कि वस्तुतः किसी न्यायाधीश या जूरी सदस्य पर ठेस पहुंचाने वाले प्रकाशन से प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा किंतु मर्म यह है कि क्या प्रकाशन प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले ऐसे वातावरण को उत्पन्न करने के लिए परिगणित किया गया है जिसके दौरान कार्यवाही की जानी होगी और क्या उसकी प्रवृत्ति न्याय के सम्यक् अनुक्रम में बाधा डालने की या उन व्यक्तियों के विरुद्ध, जिन पर विचारण किया जा रहा है या जो विचारण के लिए लाए जा सकते हैं प्रतिकूल प्रभाव डालने की है । इसका प्रयोग नागरिकों के अधिकारों का परिरक्षण करने के लिए किया जाना चाहिए जिससे कि उनके मामलों का ऋजु विचारण हो सके और यह कि कार्यवाहियां सभी प्रतिकूल प्रभावों या पूर्वाग्रहों से मुक्त वातावरण में की जा सकें । यह अवमान होगा यदि किसी ऐसे समाचार या टिप्पण का प्रकाशन किया जाए जिसकी पक्षकारों या उनके मामलों पर प्रतिकूल प्रभाव डालने की या न्याय के अनुक्रम में बाधा डालने की प्रवृत्ति हो या जो उसके लिए परिगणित हो या जिसकी ऐसी संभावना हो । इस बारे में कि कब कार्यवाहियां प्रारंभ होती हैं या कब वे सन्निकट हैं, प्रत्येक मामले की परिस्थितियों पर निर्भर होना चाहिए ।

यह अनुभव किया गया था कि मामले में विनिश्चय के लिए निश्चित सीमाएं नहीं हैं । सूचना रिपोर्ट में तथ्यों से पृथक्, विभिन्न अन्य तथ्यों को साबित किया जाना होगा । पूर्वोक्त मामले में केवल प्रथम सूचना रिपोर्ट थी किंतु, यह कहा गया था, कि कोई भी प्रकाशन की तारीख को गिरफ्तार नहीं किया गया था । न ही कोई कार्यवाही न्यायालय में लंबित थी ।

(ख) दूसरे मामले में ए. के. गोपालन बनाम नूरदीन 1969(2) एस.सी.सी. 734 में, जिसे पहले ही निर्दिष्ट किया जा चुका है, अन्वेषण एक व्यक्ति के विरुद्ध हत्या के आरोप के बारे में चल रहा था । हमने इस मामले को पहले निर्दिष्ट किया है किंतु अब हम उस मामले में एस.सी.सी (उच्चतम न्यायालय मामले) में संपादकीय टिप्पण के संदर्भ में निर्णय पर ब्यौरेवार विस्तार से विचार विमर्श करेंगे ।

अभियुक्त 23 सितंबर, 1967 को गिरफ्तार किया गया था जब कि श्री ए. के. गोपालन का गिरफ्तार व्यक्ति के बारे में कथन 20 सितंबर, 1967 को किया गया था । प्रथम सूचना 11 सितंबर, 1967 को दाखिल की गई थी किंतु अभियुक्त को गिरफ्तार नहीं किया गया था जबकि समाचार पत्र में प्रकाशन की तारीख तक, उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया था । उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि श्री ए. के. गोपालन अवमान का दोषी नहीं था और जहां तक मुद्रकों और प्रकाशकों का संबंध है, न्यायालय ने यह दृष्टिकोण अपनाया कि प्रश्न यह था कि क्या न्यायालय में कार्यवाहियां सन्निकट थीं ? न्यायालय ने गिरफ्तारी को गंभीर संज्ञेय मामले अर्थात् अभिकथित हत्या में, "निर्दिष्ट किया" और कहा कि 'गिरफ्तारी' से अभिप्रेत है कि पुलिस प्रथम दृष्टया सही मार्ग पर थी । उसने उस तथ्य के प्रति भी निर्दिष्ट किया कि अभियुक्त को संविधान के अनुच्छेद 22 के अनुसार गिरफ्तारी के 24 घंटे के भीतर किसी मजिस्ट्रेट के समक्ष अवश्य प्रस्तुत किया जाना चाहिए और मजिस्ट्रेट को अभियुक्त का आगे निरोध प्राधिकृत करना चाहिए ।

न्यायालय ने कहा "इन परिस्थितियों में यह कहना कठिन है कि न्यायालय में कार्यवाहियां सन्निकट नहीं थीं ।"

केवल यहां तक नहीं, उच्चतम न्यायालय ने आगे कहा :

"यह तथ्य कि पुलिस, अन्वेषण के पश्चात्, इस निष्कर्ष पर पहुंची हो कि अभियुक्त निर्दोष था, कार्यवाहियों को कम सन्निकट नहीं बनाता है ।"

क्यों प्रकाशन न्याय के अनुक्रम को ध्वंश कर सका था :

"क्योंकि उसकी प्रवृत्ति किसी अपराध के लोक अन्वेषण को और निरुद्ध अभियुक्त के चरित्र और पूर्ववृत्तों की लोक चर्चा को प्रोत्साहित करने की थी ।"

न्यायालय ने यह भी विचार व्यक्त किया कि यह प्रत्येक मामले में नहीं है कि जब कोई व्यक्ति गिरफ्तार किया जाता है, न्यायालय में कोई कार्यवाही सन्निकट कही जा सकती है क्योंकि लेखाओं की संवीक्षा में, जिसमें समय लगता है, विलंब हो सकता है । यदि मामला किसी कंपनी के विरुद्ध है, तो बड़ी संख्या में लेखाओं का अन्वेषण पुलिस द्वारा किया जाना होता है और दांडिक कार्यवाहियां गिरफ्तारी के बावजूद सन्निकट नहीं हो सकतीं। उस आधार पर न्यायालय ने कहा :

"जैसा कि इस न्यायालय द्वारा मत व्यक्त किया गया है, कोई कठोर नियम अधिकथित करना कठिन है ।"

तत्पश्चात उसने कहा :

" किंतु जहां तक हत्या के किसी आरोप के अन्वेषण का संबंध है, एक बार जब कोई अभियुक्त गिरफ्तार कर लिया जाता है तब न्यायालय में कार्यवाहियां सन्निकट मानी जानी चाहिए ।"

(तथापि, न्यायाधीश मित्तल ने श्री ए. के. गोपालन को भी अवमान का दोषी अभिनिर्धारित किया)

यह उपर्युक्त संप्रेक्षण है जो एस.सी.सी. (उच्चतम न्यायालय मामले) में संपादकीय टिप्पण का आधार प्रतीत होता है ।

तथापि, यह ए. के. गोपालन के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित विधि प्रतीत होती है कि यह तथ्य कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 41 के अधीन कोई गिरफ्तारी की गई है इस बात का प्रथम दृष्टया सबूत हो सकती है कि दांडिक कार्यवाहियां 'सन्निकट' हैं ।

किंतु यह सत्य है कि न्यायालय ने एक मत व्यक्त किया कि फिर भी अपवाद हो सकते हैं जहां किसी गिरफ्तारी के होते हुए भी दांडिक कार्यवाहियां सन्निकट नहीं हो सकती हैं जैसे जहां किसी कंपनी के बहुत सारे लेखाओं की धारा 173 के अधीन आरोप पत्र फाइल किए जाने के पूर्व संवीक्षा की जानी है या अन्वेषण किया जाना है । वह मत विलंबित समय के तथ्य के बारे में हैं किंतु उसका, हमारी राय में यह अभिप्राय नहीं है कि किसी कंपनी के निदेशक की गिरफ्तारी (कहने को) की दशा में आरोप पत्र के फाइल करने में विलंब के कारण प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले प्रकाशन हो सकते हैं । यह ' सन्निकट' शब्द को उचित अर्थ दिए जाने की अपेक्षा करता है ।

हमारे विचार से 'सन्निकट' शब्द का केवल यह अर्थ नहीं है कि आरोप पत्र न्यायालय में गिरफ्तारी के पश्चात् "तुरंत" फाइल किया जाना चाहिए । यहां 'सन्निकट' से अभिप्रेत है आरोप पत्र के फाइल करने की 'युक्तियुक्त संभावना' चाहे तुरंत या किसी युक्तियुक्त समय के भीतर । यदि 'सन्निकट' शब्द का अभिप्राय "तुरंत" होना चाहिए, तो सभी मामलों में वहां जहां अन्वेषण में विलंब है जैसे जब अन्वेषण केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो को या राज्यों में भ्रष्टाचार विरोधी ब्यूरो (ए. सी. बी.) को सौंपा जाता है वहां प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले प्रकाशनों को जारी करने के लिए स्वतंत्र अनुज्ञप्ति हो सकती है । यह विधि नहीं हो सकती । 'सन्निकट' से हमारे विचार में वास्तव में आरोप पत्र के फाइल करने की 'युक्तियुक्त संभावना' अभिप्रेत है ।

किंतु हम यह नहीं कह रहे हैं कि एक बार गिरफ्तारी की गई है तो मीडिया कोई भी प्रकाशन किसी भी प्रकार नहीं करने के लिए बाध्य है । विधि जो अपेक्षा करती है वह यह है कि उन्हें, प्रकाशन करते समय संदिग्ध के मामले पर, उसके चरित्र, पूर्व दोषसिद्धियों,

संस्वीकृति, फोटोग्राफों (जहां पहचान प्रश्नगत है) के प्रति निर्देश करके या उसे दोषी या निर्दोष वर्णित करके, प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालना चाहिए (देखिए अध्याय 9) । आगे, धारा 3 दांडिक कार्यवाही के लंबित होने की जानकारी के बिना किए गए प्रकाशनों को उन्मुक्ति प्रदान करती है ।

संपादकीय टिप्पण यह सुझाव देने में सही नहीं हैं कि 'सन्निकट' शब्द उस व्यक्ति से, जो प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला प्रकाशन करना चाहता है, यह अपेक्षा करता है कि वह पुलिस थाने जाए या किसी प्रकार यह मालूम करे कि यदि पुलिस आरोप पत्र फाइल करने के लिए किसी प्रारंभिक निष्कर्ष पर पहुंच चुकी है । 'सन्निकट' शब्द का ऐसा निर्वचन अत्यधिक अयुक्तियुक्त और अव्यवहार्य है । हम यह समझने में कोई समस्या नहीं पाते हैं कि किसी व्यक्ति के संबंध में, जिसे 'गिरफ्तार' किया गया है, 'सन्निकट' से यह अभिप्रेत है कि उसके विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किए जाने की 'अधिकांश रूप से संभावना' है ।

आगे जैसा नीचे कहा गया है ' गिरफ्तारी' दूसरे अर्थ में 24 घंटे वाले नियम के कारण महत्वपूर्ण है, जिस पर हम इस समय चर्चा करेंगे । यह संवैधानिक अपेक्षा है कि गिरफ्तार किए गए किसी व्यक्ति को गिरफ्तारी के 24 घंटे के भीतर किसी मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया जाना होता है । आज 'सन्निकट' शब्द उस प्रक्रम के रूप में समझा जाता है जब कोई व्यक्ति गिरफ्तारी के पश्चात् न्यायालय के संवैधानिक संरक्षण के भीतर जाता है । (देखिए नीचे शीर्ष ' ख')

(अ) संदिग्ध पर प्रतिकूल प्रभाव से इस बात का ध्यान रखे बिना कि अपराध कोई गंभीर है या नहीं प्रतिकूल प्रभाव अभिप्रेत है :

ए. के. गोपालन के मामले में, निःसंदेह न्यायालय ने हत्या का 'गंभीर' अपराध शब्दों का प्रयोग किया है । किंतु, हमारी राय में जब हम संदिग्ध पर प्रतिकूल प्रभाव के बारे में विचार कर रहे हैं तो प्रतिकूल प्रभाव, चाहे अपराध गंभीर हो या नहीं, घटित हो सकता है । प्रतिकूल प्रभाव संदिग्ध के, जब वह गिरफ्तार किया गया है, ऋजु विचारण के

व्यक्तिगत अधिकार की दृष्टि से और उस दृष्टि से नहीं कि गिरफ्तारी किसी गंभीर अपराध के लिए थी, देखा जाना चाहिए । प्रतिकूल प्रभाव किसी व्यक्ति के संबंध में है और उस अपराध के संबंध में नहीं है, जिससे व्यक्ति को आरोपित किया गया है ।

किसी देश ने गंभीर अपराध और गैर-गंभीर अपराध के बीच यह निर्णय करने के लिए विभाजन नहीं किया है कि अपराध के संबंध में किसी प्रकाशन ने संदिग्ध या अभियुक्त पर प्रतिकूल प्रभाव कारित किया है या नहीं ।

(आ) संविधान के अनुच्चेद 22(2) और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 57 और धारा 76 के अधीन न्यायालय की देखभाल और संरक्षण यह दर्शित करने के लिए पर्याप्त है कि कार्यवाहियां सन्निकट हैं :

गिरफ्तारी के पश्चात् आरोप पत्र फाइल करने में संभव विलंब पर आधारित संपूर्ण बहस आधारहीन है क्योंकि वह संविधान के अनुच्छेद 22(2) की उपेक्षा करती है जिसके अधीन गिरफ्तारी के तुरंत पश्चात् कोई व्यक्ति न्यायालय के संरक्षण में आ जाता है । यह न्यायालय के निर्णयों और अन्य प्राधिकारियों के अनुसार 'सन्निकट' शब्द का उचित अर्थ है । चाहे कोई व्यक्ति पुलिस द्वारा किसी संज्ञेय मामले में 'युक्तियुक्त संदेह' के आधार पर बिना वारंट के या असंज्ञेय मामले की दशा में न्यायालय से किसी वारंट द्वारा गिरफ्तार किया गया है, जहां मजिस्ट्रेट अपने मस्तिष्क का इस बारे में प्रयोग करता है कि क्या गिरफ्तारी आवश्यक और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 57 और धारा 76 के अधीन है, गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को किसी मजिस्ट्रेट के समक्ष गिरफ्तारी के 24 घंटे के भीतर लाया जाना होता है । यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 22(2) के अधीन अनिवार्य है । एक बार गिरफ्तारी हो जाती है, तो गिरफ्तार किया गया व्यक्ति न्यायालय की देखभाल और संरक्षण के भीतर आ जाता है और न्यायालय के साथ ऐसा संबंध यह दर्शित करने के लिए पर्याप्त माना गया है कि ' न्यायालय कार्यवाहियां' 'सन्निकट' हैं । यह स्कॉटलैंड में न्यायालय द्वारा विनिश्चित किए गए हॉल वर्सस एसोसिएटेड न्यूजपेपर्स : 1978 एस.एल.टी. 241 में विनिश्चय से स्पष्ट है (जिसके प्रति हम इसके नीचे निर्देश करेंगे)।

यह, बोरी एंड लोब, (कंटेंप्ट आफ कोर्ट) (तीसरा संस्करण) (1996) (पृष्ठ 247, 256) के अनुसार दांडिक कार्यवाहियों को गिरफ्तारी के समय से 'सक्रिय' के रूप में मानने के लिए यू.के. एक्ट, 1981 का आधार है । (नीचे का विचार विमर्श देखिए) । यह अन्य अग्र प्राधिकारियों का भी मत है ।

अतः यह सोचना सही नहीं है कि संदिग्ध पर प्रतिकूल प्रभाव दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 173(2) के अधीन आरोप पत्र या चालान फाइल किए जाने के पश्चात् ही, जब पुलिस इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि " कोई अपराध किया गया प्रतीत होता है", प्रारंभ होता है ।

(इ) यू. के. - हॉल वर्सस एसोर्टेड न्यूजपेपर : "24 घंटे का नियम" :

बोरी एंड लोव (1996, तीसरा संस्करण, (पृष्ठ 247, 256) के अनुसार वह निर्णायक विनिश्चय, जो 1981 के यू. के. एक्ट का आधार है, हॉल वर्सस एसोसिएटेड न्यूजपेर्स : 1971 एस.एल.टी. 241 (248) है । उस मामले में स्काटलैंड के न्यायालय ने इस परीक्षण के प्रति निर्देश किया कि क्या कार्यवाहियां उस प्रक्रम तक पहुंच गई हैं जहां यह कहा जा सकता है " कि न्यायालय का उन व्यक्तियों के प्रति, जिनका न्यायालय के साथ संबंध बना दिया गया है, देखभाल का कर्तव्य हो गया है" । उस परीक्षण को लागू करते हुए, यह अभिनिर्धारित किया गया था (हॉल के पृष्ठ 247 पर) कि अवमान लागू हो जाता है "गिरफ्तारी के क्षण से या (इतरोक्ति) उस क्षण से जब गिरफ्तारी के लिए कोई वारंट मंजूर किया जाता है । गिरफ्तारी के बारे में यह अनुभव किया गया था कि उस समय, गिरफ्तार किया गया व्यक्ति न्यायालय के संरक्षण के भीतर है क्योंकि उसमें अधिकार निहित हैं (उदाहरण के लिए उसे आरोपों की सूचना दी जानी चाहिए और उसे 24 घंटे के भीतर मजिस्ट्रेट के समक्ष लाया जाना चाहिए) जिनका वह अवलंब ले सकता है और जिनको प्रवर्तित करने का न्यायालय का कर्तव्य है ।"

(ई) न्यू साउथ वेल्स (आस्ट्रेलिया) : 24 घंटे का नियम लागू किया गया :

स्कॉटलैंड न्यायालय के उक्त निर्णय का अनुसरण ए.जी. फॉर एन.एस.डब्ल्यु. वर्सस टी.सी.एन. चैनल नाइन प्राइवेट लिमिटेड : (1990) 20 एन.एस. डब्ल्यू. एल.आर. 368 द्वारा किया गया था, जिसमें किसी गिरफ्तार व्यक्ति की फिल्म, उसे पुलिस द्वारा अपराध के दृश्य के चारों ओर ले जाते हुए, टेलीविजन पर टीका टिप्पणी के साथ दर्शित की गई थी जिसमें स्पष्ट रूप से संकेत था कि उसने कई हत्याओं को संस्वीकार कर लिया था (जो कि वास्तव में मामला था) । प्रसारण के समय वह व्यक्ति गिरफ्तार किया गया था और आरोप अभी तक न्यायालय के समक्ष नहीं लाया गया था । न्यू साउथ वेल्स अपील न्यायालय ने, जैसा कि हॉल वर्सस एसोसिएटेड न्यूजपेपर्स में अभिनिर्धारित किया गया था, सोचा कि " गिरफ्तारी के क्षण से, गिरफ्तार किया गया व्यक्ति बहुत वास्तविक अर्थ में न्यायालय की देखभाल और संरक्षण के अधीन होता है ।" न्यू साउथ वेल्स न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि अवमान के लिए क्रान्तिक क्षण उसी क्षण से गिरफ्तारी का समय था : (पृष्ठ 278)

> "दांडिक न्याय पद्धति की प्रक्रिया और कार्यवाहियां, उन सभी रक्षोपायों के साथ जो उनके साथ होते हैं, उसको और उसकी प्रसुविधा के लिए लागू थीं, और ..... उन प्रक्रियाओं, कार्यवाहियों और रक्षोपायों को कम करके शक्तिहीन करने की प्रवृत्ति वाले प्रकाशन दंड आकर्षित करने के दायी हैं, जैसा न्यायालय के अवमान में होता है ।"

और आर. वर्सस पार्क ; 1903 (2) के बी 432 में सिद्धांत को लागू किया जो यह कथन करता था कि 'न्याय का झरना' उसके स्रोत पर संदूषित किया जा सकता है ।

इस प्रकार आस्ट्रेलियन स्थिति भी यही प्रतीत होती है कि अवमान विधि गिरफ्तारी के प्रक्रम से लागू होती है चाहे अपराध गंभीर है या नहीं, क्योंकि गिरफ्तार व्यक्ति न्यायालय के संरक्षण के भीतर आ जाता है ।

(उ) न्यूजीलैंड : निर्णयज विधि 'गिरफ्तारी' या 'सन्निकट' प्रक्रम के प्रति निर्देश करती है :

न्यूजीलैंड में टेलीविजन न्यूजीलैंड लिमिटेड वर्सस एस. जी. (1989) 1 एन जेड एल आर 1 में, अपील न्यायालय ने प्रारंभ में महासालिसिटर के अनुरोध पर एक टेलीविजन समाचार प्रसारण का, जिसमें एक नामित व्यक्ति को ढूड़ने के बारे में, यद्यपि कोई आरोप उसकी गिरफ्तारी के लिए अभी तक नहीं लगाया गया था, टीका-टिप्पणियां और मत सम्मिलित थे, निवारण करने के लिए एक व्यादेश मंजूर किया । न्यायालय ने बाद में इस आधार पर आदेश को विखंडित कर दिया कि प्रकाशित की जाने के लिए चाही गई सामग्री में प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली अंतर्वस्तु नहीं थी । न्यायालय ने कहा :

> "हमारी राय में न्यूजीलैंड की विधि को यह मान्यता अवश्य देनी चाहिए कि ऐसे मामलों में जहां दांडिक कार्यवाही के प्रारंभ की अत्यधिक संभावना है, वहां न्यायालय के पास व्यादेश मंजूर करके न्यायालय के अवमान के खतरे का निवारण करने की अंतर्निहित अधिकारिता है ।"

हमने पहले ही, पूर्व अध्याय में न्यूजीलैंड न्यायालयों के कई विनिश्चयों के प्रति निर्देश किया है जहां या तो ' गिरफ्तारी' या दांडिक कार्यवाहियों की 'सन्निकटता' को प्रकाशनों के विरुद्ध संरक्षण देने के लिए पर्याप्त माना गया था । (अटर्नी जनरल वर्सस टोंक्स : 1934 एन जेड आर एल 141 (एफसी): सालिसिटर जनरल वर्सस विलिंगटन न्यूजपेपर्स : एन जेड आर एल 45 ; अटर्नी जनरल वर्सस स्पोर्ट्स न्यूजपेपर्स 1992 (1) एन जेड आर एल 503) ।

(ऊ) कनाडा : 'गिरफ्तारी' को महत्व दिया गया है :

कनाडा में, स्टुआर्ट एम.रॉबर्ट्सन, न्यायालय और मीडिया (1981) बटर वर्थ, टोरन्टो) पृष्ठ 48 (बोरी एंड लोब द्वारा तीसरे संस्करण 1999 में पृष्ठ 249 पर उद्धृत) के

अनुसार यह कहा गया है कि 'न्यायाधीन' नियम तब लागू होना प्रारंभ होता है जब न्यायालय मामले के ऊपर अधिकारिता प्राप्त कर लेता है,

> "और आपराधिक मामलों में अर्थात् जब जस्टिस ऑफ द पीस के समक्ष जानकारी की शपथ दिलाई जाती है जिस पर या तो समन या वारंट जारी किया जाता है या जहां कोई व्यक्ति किसी पुलिस अधिकारी द्वारा गिरफ्तार किया जाता है।"

कनाडा का विधि सुधार आयोग : 'गिरफ्तारी' के प्रति निर्देश करता है :

कनाडा का विधि सुधार आयोग (1977, कार्यकारी पत्र, सं. 20, पृष्ठ 44 और 1982 रिपोर्ट सं. 17, पृष्ठ 44, 54-6) भी निश्चितता के लिए आवश्यकता से प्रभावित था किंतु उसने भी फिलमोर समिति की सिफारिशों को नामंजूर कर दिया और उसके बजाय प्रस्ताव किया कि न्यायाधीन अवधि उस क्षण से प्रारंभ होनी चाहिए जब कोई सूचना दी जाती है (अर्थात् प्रथम सूचना रिपोर्ट) । आस्ट्रेलिया के विधि सुधार आयोग ने (रिपोर्ट सं. 35, पैरा 296 में) सिफारिश की कि अवमान उस समय से लागू होना चाहिए जब गिरफ्तारी के लिए कोई वारंट जारी किया गया है, कोई व्यक्ति बिना वारंट के गिरफ्तार किया गया है या आरोप लगाए गए हैं, जो भी शीघ्रतम हो । तथापि, उसने यह भी सिफारिश की कि यदि किसी व्यक्ति ने, जिसे किसी पूर्ववर्ती बिन्दु पर प्रकाशन में 'आलिप्त किया गया था', सुसंगत विचारण पर प्रतिकूल प्रभाव डालने के आशय से कार्य किया था जो कि न्याय के अनुक्रम को रोकने के लिए किसी प्रयास की कोटि में आ सके, तो वह क्राइम्स एक्ट, 1914 (सी एम टी एच) की धारा 43 के अधीन उस अपराध के लिए अभियोजित किए जाने का दायी होना चाहिए । यह कंटेंप्ट आफ कोर्ट एक्ट, 1981 के पश्चात् यूनाइटेड किंगडम में आई स्थिति को प्रतिध्वनित करता है ।

हमने पूर्व अध्याय में न्यू साउथ वेल्स विधि आयोग के विचारों के प्रति पहले ही निर्दिष्ट किया है ।

(ए) आयरलैंड का विधि सुधार आयोग : 'सन्निकट या मानो निश्चित' के प्रति निर्देश करता है :

आयरलैंड के विधि सुधार आयोग (1991, जुलाई, पृष्ठ 321) ने दो परीक्षणों की प्रशंसा की है । पहला, जो 'सामान्य' मामलों में लागू होगा अर्थात् 'सक्रिय' कार्यवाहियों को जो 1981 के यू. के. कन्टेम्प ऑफ कोर्ट एक्ट में यथा परिभाषित हैं । दूसरा, अवमान को 'दुर्लभ' मामले को लागू करेगा, जहां, ऐसी कार्यवाहियों के संबंध में, जो सक्रिय नहीं हैं किंतु सन्निकट हैं, कोई व्यक्ति ऐसी सामग्री प्रकाशित करता है जब वह वास्तव में उन तथ्यों से अवगत है जो उसकी जानकारी में किसी ऐसे व्यक्ति पर, जिसका दांडिक या सिविल विधिक कार्यवाहियों में सन्निकट अंतर्वलित होना निश्चित या मानो निश्चित है, गंभीर प्रतिकूल प्रभाव कारित करना निश्चित या मानो निश्चित बनाते हैं ।

(ऐ) बोरी एंड लोव :

बोरी एंड लोव (पृष्ठ 253, 254) समय के निश्चित बिन्दु के लिए आवश्यकता के प्रति निर्देश करते हैं और यू. के., कनाडा, आस्ट्रेलिया और आयरलैंड के विधि आयोगों के, समय का निश्चित बिन्दु नियत करने के लिए आवश्यकता के बारे में और इस बारे में कि कब कार्यवाहियां "सन्निकट" कही जा सकती हैं जिससे कि फिलमोर समिति (1974) द्वारा निर्मित की गई अस्पष्टता की संकल्पना, सरलता से पार की जा सके, विचारों के प्रति निर्देश करते हैं और वे कहते हैं कि, अंतिम रूप से, 1981 के यू. के. एक्ट ने, अनुसूची-1, पैरा 4 में यह कसौटी (अर्थात् गिरफ्तारी की तारीख आदि) देकर एक प्रकार से हॉल वर्सस एसोसिएटेड न्यूजपेपर्स लिमिटेड 1978 एस एल टी 241 में स्कॉटलैंड के विनिश्चय को अंगीकार करते हुए, 'अस्पष्टता' की बाधा को वास्तव में दूर कर दिया है । लेखक कहते हैं कि अवमान विधि को न्यायालय में कोई आरोप फाइल करने के पश्चात् ही किए गए प्रकाशन तक परिरुद्ध करने का परिणाम स्वतंत्रता के विरुद्ध वाक् और अभिव्यक्ति की

स्वतंत्रता को अन्यायपूर्ण श्रेष्ठ स्थिति प्रदान करना होगा । लेखकों के उपर्युक्त विचार काफी महत्वपूर्ण हैं और हम उस पुस्तक के निर्णायक पैराओं के प्रति निर्देश करेंगे ।

लेखक "सुधार के लिए प्रस्ताव" शीर्षक के अधीन यथा निम्नलिखित कहते हैं (पृष्ठ 253, 254):

प्रारंभिक बिन्दु :

> फिलमोर समिति (1974, सी एम एम एल 5794, पैरा 113) 'सन्निकट' की संकल्पना को प्रतिधारित करने के लिए कोई मामला नहीं देख सकी क्योंकि वह परिभाषा की अवज्ञा करती है और उसको घटनाओं के परिणाम की संभावना पर निर्भर करते हुए मनमाने ढंग से लागू करती है । जैसा कि समिति ने कहा कि 'सन्निकट' की अस्पष्टता प्रेस की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाने वाला प्रभाव रखती है, जो किसी भी मूल्य के, जो उसको बनाए रखने में हो सकता है, सभी अनुपातों से बाहर है ।
>
> 'सन्निकट' की संकल्पना से दूर हटना यह विनिश्चय करने की कठिनाई को हल नहीं करता है कि कब अवमान लागू होना प्रारंभ होना चाहिए । प्रारंभिक बिन्दु का चयन करने की समस्या रहती है अर्थात् दोनों कि जो पर्याप्त रूप से निश्चित और किसी आगामी विचारण को वास्तविक संरक्षण देने के लिए पर्याप्त शीघ्र हो । फिलमोर समिति (पैरा 123, 216) ने सिफारिश की कि आपराधिक कार्यवाहियों के लिए प्रारंभिक बिन्दु (क) इंग्लैंड और वेल्स में, जब अभियुक्त व्यक्ति पर आरोप लगाया जाता है या किसी समन की तामील की जाती है और (ख) स्काटलैंड में, जब व्यक्ति को याचिका पर या अन्यथा या किसी न्यायालय में संक्षिप्त परिवाद की प्रथम पुकार पर सार्वजनिक रूप से आरोपित किया जाता है, होना चाहिए । यदि यह सिफारिश कार्यान्वित की गई होती तो यह सुझाव दिया जाता है कि इसने वाक् स्वतंत्रता के पक्ष में संतुलन के लिए पहले से ही सचेत कर दिया होता । पूर्ण

सरलता से कहा जा सकता है कि सुझाव दिए गए प्रारंभिक बिन्दु से अभियुक्त को वास्तविक और आवश्यक संरक्षण देने में विलंब हो जाता ।

लेखक कहते हैं कि पश्चातवर्ती सरकारी विचार विमर्श पत्र (1978), (सीएमएनडी 7145, पैरा 14) में भी समान दृष्टिकोण अपनाया गया प्रतीत होता है । जैसा उन्होंने कहा :

> "आरोप बहुधा गंभीर अपराध के बारे में ज्ञात होने के थोड़ा पश्चात् लगाए जाते हैं ; और वस्तुतः किसी अभियुक्त व्यक्ति के दृष्टिकोण से, उसको आरोपित किए जाने के ठीक पूर्व की अवधि के दौरान प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले टिप्पण से संरक्षण प्राप्त करना उतना ही महत्वपूर्ण हो सकता है, जब अपराध में मीडिया और जनता का आशय मजबूत होता है, जितना वह आरोप के औपचारिक रूप से लगाए जाने के पश्चात् होता है ।"

सरकारी विचार विमर्श पत्र ने निष्कर्ष निकाला कि उस आधार पर, "इस विचार के लिए आधार है कि फिलमोर सिफारिश औपचारिक आरोप लगाए जाने के पूर्व प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले प्रकाशन को अनुज्ञात करने में काफी आगे जाती है, जो अभियुक्त व्यक्तियों के ऋजु विचारण को खतरे में डालता है ।"

लेखक बोरी और लोव कहते हैं (देखिए पृष्ठ 254) कि यू. के. विधि में फिलमोर द्वारा सिफारिश किए गए से अन्यथा पूर्वतर प्रारंभिक बिन्दु के साथ सुधार किए गए थे ।

1981 के यू. के. एक्ट की अनुसूची 1, पैरा 4 में, जहां तक दांडिक कार्यवाहियों का संबंध है, यह कहा गया है कि दांडिक कार्यवाहियां -

"(क) वारंट के बिना गिरफ्तारी ;

(ख) उपसंजात होने के लिए समनों के जारी किए जाने या स्कॉटलैंड में, वारंट के मंजूर किए जाने;

(ग) आरोप विनिर्दिष्ट करने वाले किसी अभ्यारोपण या अन्य दस्तावेज की तामील ;

(घ) स्कॉटलैंड में के सिवाय, मौखिक आरोप ;"

पर 'सक्रिय' हो जाती हैं ।

बोरी और लोव कहते हैं (पृष्ठ 256) कि अनुसूची 1 का पैरा 4 "हॉल वर्सस एसोसिएटेड न्यूजपेपर्स लिमिटेड (1978 एस.एल.टी. 241) द्वारा अधिकथित रूप में स्कॉटलैंड में प्रारंभिक बिन्दु का व्यवहारतः अधिनियमन है और किसी भी दशा में उसके घनिष्ट रूप से तत्समान हैं जो इग्लैंड में कॉमन लॉ (सामान्य विधि) और अन्यत्र 'लंबित' कार्यवाहियों के रूप में समझा जाता है" ।

तथापि यू. के. एक्ट की धारा 3 के अधीन, कोई प्रकाशक स्वयं की यह कहते हुए प्रतिरक्षा कर सकता है कि उसने प्रकाशन के समय, सभी युक्तियुक्त सावधानी बरती थी किंतु न उसे ज्ञात था, न उसने संदेह किया था कि सुसंगत कार्यवाहियां सक्रिय थीं और (संभवतः) यह कि उसने सद्भावपूर्वक प्रकाशन किया था । बोरी और लोब कहते हैं (पृष्ठ 258) कि हो सकता है कि धारा 3 पूर्ण उत्तर न देती हो, किंतु वह फिलमोर समिति की आशंकाओं को दूर करने के लिए दूर तक जाती है ।

यह महत्वपूर्ण है कि ए. के. गोपालन वर्सस नूरदीन (1969 (1) एस.सी.सी. 734) में पृष्ठ 741 पर उच्चतम न्यायालय ने वस्तुतः 24 घंटे के नियम के प्रति निर्देश किया था और तथ्यों का कथन करते हुए यथा निम्नलिखित मत व्यक्त किया :

> "गिरफ्तारी से अभिप्रेत है कि पुलिस प्रथमदृष्टया सही रास्ते पर थी । अभियुक्त को संविधान के अनुच्छेद 21 (अनुच्छेद 22) के अनुसार गिरफ्तारी के 24 घंटे के भीतर मजिस्ट्रेट के समक्ष अवश्य प्रस्तुत किया जाना चाहिए और मजिस्ट्रेट को अभियुक्त का आगे निरोध प्राधिकृत करना चाहिए ।"

किंतु हॉल से यह स्पष्ट है कि मजिस्ट्रेट की देखभाल के अंदर आ जाना पर्याप्त है और यह आवश्यक नहीं है कि मजिस्ट्रेट ने ही गिरफ्तारी को प्राधिकृत किया हो ।

बोरी और लोव के निम्नलिखित संप्रेक्षण (देखिए पृष्ठ 258) भारत में अनुच्छेद 19(1)(क) और अनुच्छेद 21 का संतुलन करने के संदर्भ में बहुत महत्वपूर्ण है । लेखक कहते हैं :

> "पैरा 4 के अधीन समय निर्धारण करने वाले उपबंध समाचार मीडिया के लिए उतने उदार नहीं हैं जितनी फिलमोर समिति की सिफारिशें हैं, जो यह है कि न्यायाधीन अवधि केवल तब प्रारंभ होनी चाहिए जब व्यक्ति पर आरोप लगाया गया था या समन की तामील की गई थी । तथापि, उन कठिनाइयों के बावजूद जिन्हें ऊपर निर्देशित किया गया है, यह प्रस्तुत किया जाता है कि अधिनियम समय का सही निर्धारण करता है । पैरा 4 फिलमोर समिति के प्रस्तावों के बीच युक्तियुक्त समझौता कराता है, जिन्होंने विचारण का प्रतिकूल प्रभाव के वास्तविक खतरे से, जो आरोप से पूर्व प्रचार कारित कर सकता है और सामान्य विधि की स्थिति की अवांछनीय अनिश्चितता से संरक्षण नहीं किया होता । वस्तुतः यह असाधारण प्रचार था जिससे जनवरी, 1981 में पीटर सटक्लिफ की गिरफ्तारी हुई, जो उसके ऊपर ' योर्क शायर रिपर' हत्याओं का आरोप लगाए जाने के पूर्व ही आरंभ हो गया था, जिसने विधेयक के बाद के प्रक्रमों में न्यायाधीन उपबंध को सहज बनाने और फिलमोर सिफारिश का अनुसरण करने के किसी भी प्रयास को नष्ट कर दिया । पैरा 4 को, इंग्लैड और वेल्स, स्कॉटलैंड और नार्दर्न आयरलैंड को लागू एक समान और युक्तियुक्त रूप से निश्चित प्रारंभिक बिन्दु के सृजन करने का लाभ होना चाहिए, होना चाहिए था । तथापि, जैसा कि हमने देखा है, यह कानूनी निश्चतता कॉमन लॉ (सामान्य विधि) के लगातार प्रवर्तन से, साशय अवमान के लिए 'सन्निकट' की उसकी संकल्पना के साथ कमजोर कर दी गई है ।"

संक्षेप : 1969 (2) एस.सी.सी. 734 में संपादकीय टिप्पण सही नहीं है :

'सन्निकट' शब्द के अर्थ की उपर्युक्त चर्चा हमें इस निष्कर्ष की ओर ले जाती है कि गिरफ्तारी का समय युक्तियुक्त रूप से प्रारंभिक बिन्दु के रूप में, चाहे अपराध गंभीर हो

या अन्यथा, लिया जा सकता है । वह क्षण जब कोई गिरफ्तारी की जाती है, व्यक्ति न्यायालय के संरक्षण के भीतर आ जाता है क्योंकि उसे 24 घंटे के भीतर न्यायालय में प्रस्तुत किया जाना होता है । यह कारण स्कॉटलैंड न्यायालय द्वारा हॉल के मामले (1978) में दिया गया है, जैसा कि ऊपर कहा गया है और 1981 के यू. के. एक्ट की अनुसूची 1 का आधार है । यह कारण न्यू साउथ वेल्स (1990) द्वारा भी स्वीकार किया गया है ।

अतः हम 1969 (2) एस.सी.सी. 734 में ए. के. गोपालन के मामले में नीचे दिए गए संपादकीय टिप्पणों को स्वीकार नहीं करते हैं कि वह मामला ' गिरफ्तारी' को किसी दांडिक मामले में ' सन्निकटता' के प्रारंभिक बिन्दु के रूप में मानता है, जब प्रकाशन 'हत्या' जैसे 'गंभीर' मामलों के संबंध में किए जाते हैं और यह कि केवल ऐसे मामले में आरोप पत्र के फाइल किए जाने की संभावना होती है । हमारे विचार से गिरफ्तार किए गए व्यक्ति के दृष्टिकोण से, चाहे गिरफ्तारी गंभीर अपराध के लिए हो या नहीं, प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला प्रकाशन किसी ऋजु विचारण की प्रक्रिया को प्रभावित करता है ।

संतुलन करने के बारे में है । वह ऋजु विचारण के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन संदिग्धों/अभियुक्त के अधिकारों को असम्यक् रूप से निर्बन्धित किए बिना, किया जाना चाहिए ।

यह कहने में कोई कठिनाई नहीं है कि हमारे संविधान के अधीन वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का मूल अधिकार, विधि द्वारा, न्यायालय के अवमान के प्रयोजनों के लिए निर्बन्धित किया जा सकता है । तथापि, यह केवल विधान मंडल द्वारा पारित विधि द्वारा किया जा सकता है और वे निर्बन्धन जो स्वतंत्रता पर अधिरोपित किए जा सकते हैं, अवश्य ही "युक्तियुक्त" होने चाहिए । यदि न्यायालय के अवमान से संबंधित किसी विधि द्वारा अधिरोपित निर्बन्धन युक्तियुक्त नहीं हैं तो वह न्यायालयों द्वारा इस आधार पर कि निर्बन्धन उस उद्देश्य का आनुपातिक नहीं हैं जिसकी निर्बन्धन द्वारा पूर्ति करनी चाही गई है, विखंडित किए जाने का दायी है ।

जैसा कि इस समय है न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 की धारा 3 के उपबंध वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को - जिसके अंतर्गत मीडिया, प्रिन्ट और इलेक्ट्रानिक, दोनों - की स्वतंत्रता है, निर्बन्धित करते हैं, यदि कोई प्रकाशन किसी ऐसी सिविल या दांडिक कार्यवाही के संबंध में, जो वास्तव में 'लंबित' है (अर्थात् जब आरोप पत्र या चालान फाइल किया गया है या समन अथवा वारंट जारी किया गया है), न्याय के अनुक्रम में बाधा डालता है या हस्तक्षेप करता है या हस्तक्षेप करने की ओर प्रवृत्त है । आगे धारा 3(1) प्रकाशन का संरक्षण करती है, यदि उस व्यक्ति के पास, जिसने प्रकाशन किया था, यह विश्वास करने के लिए युक्तियुक्त आधार नहीं थे कि कार्यवाही लंबित थी ।

हमारे विचार से धारा 3(2) के उपबंध, अब प्रकाशन करने के लिए, पूर्ण उन्मुक्तता प्रदान करते हुए पूर्ण रूप से अनिर्बन्धित स्वतंत्रता की अनुज्ञा देते हैं, चाहे दांडिक अवमान किया गया है, चाहे प्रकाशन दांडिक कार्यवाही में बाधा डालते हैं या बाधा डालने ओर प्रवृत्त हैं, यदि ऐसी कार्यवाहियां प्रकाशन के समय पर किसी न्यायालय में वास्तव में 'लंबित' नहीं हैं । धारा 3 के नीचे स्पष्टीकरण किसी न्यायिक कार्यवाही के 'लंबित' होने को परिभाषित

करता है । जहां तक किसी दांडिक कार्यवाही का संबंध है हमें स्पष्टीकरण के खंड (क) के उपखंड (आ) के प्रति निर्देश करना है जो निम्न प्रकार पढ़ा जाता है :

"(आ) दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 (1898 का 5) या किसी अन्य विधि के अधीन किसी दांडिक कार्यवाही के मामले में-

(i) जहां वह, जब आरोप पत्र या चालान फाइल किया गया है, किसी अपराध के किए जाने से संबंधित है ; या

जब न्यायालय अभियुक्त के विरुद्ध, यथास्थिति, समन या वारंट जारी करता है, और

(ii) किसी अन्य मामले में, जब न्यायालय उस मामले का, जिससे कार्यवाहियां संबंधित हैं, संज्ञान लेता है ...."

अतः अधिनियम की धारा 3 के अधीन मामले के लंबित होने का प्रारंभिक बिन्दु केवल उस प्रक्रम से है जहां न्यायालय वास्तव में, जब दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 173 के अधीन आरोप पत्र या चालान फाइल किया जाता है या जब दंड न्यायालय अभियुक्त के विरुद्ध समन या वारंट जारी करता है, अंतर्वलित होता है । ऐसी घटनाओं के पूर्व कोई प्रकाशन, यदि वह ऋजु विचारण के लिए संदिग्ध या अभियुक्त के अधिकारों में बाधा डालता है या बाधा डालने की ओर प्रवृत्त होता है, अवमान नहीं है क्योंकि धारा 3(2) निम्नलिखित शब्दों के साथ प्रारंभ होती है,-

"इस अधिनियम या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट इसके प्रतिकूल किसी बात के होते हुए भी ।"

विचारण के लिए दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं :

(1) क्या न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 की धारा 3(2) के उपबंध, उस धारा के नीचे स्पष्टीकरण के साथ पठित, भारत के संविधान के अनुच्छेद 21

द्वारा गारंटीकृत रूप में सम्यक् प्रक्रिया के अतिक्रमण में है, जहां तक वे आरोप पत्र/ चालान फाइल किए जाने के पूर्व किए गए प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले प्रकाशन को उन्मुक्तता प्रदान करते हैं ?

(2) यदि प्रश्न सं. 1 का उत्तर हां में है, तो क्या धारा 3 के स्पष्टीकरण को गिरफ्तारी के पहले प्रक्रम की दांडिक कार्यवाही के "लंबित होने" के प्रारंभिक बिन्दु का परिवर्तन करके उपांतरित किया जाना होगा और किया जा सकता है और क्या विधि में ऐसा कोई परिवर्तन संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) के अधीन गारंटीकृत वाक् स्वतंत्रता पर अयुक्तियुक्त निर्बन्धन के बराबर होगा ?

जहां तक पहले प्रश्न का संबंध है, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, जैसा कि वर्तमान में है, यदि कोई प्रकाशन, जो आरोप पत्र या चालान फाइल किए जाने के पूर्व किया गया है, दांडिक कार्यवाही के संबंध में न्याय के अनुक्रम में बाधा डालता है या बाधा डालने ओर प्रवृत्त होता है तो, ऐसे व्यक्ति के अधिकार, जिसे गिरफ्तार किया गया है और जिसके संबंध में प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला प्रकाशन किया गया है, न्यायालय के अवमान की विधि द्वारा संरक्षित नहीं हैं । किंतु यदि ऐसे प्रकाशन संदिग्ध या अभियुक्त के लिए प्रतिकूल प्रभाव वाले हैं, तो क्या वे किसी संदिग्ध या किसी अभियुक्त के सम्यक् प्रक्रिया के अधिकारों के सिद्धांत पर आक्रमण नहीं करेंगे, जैसा दांडिक मामलों में लागू है और जैसा उच्चतम न्यायालय द्वारा मेनका गांधी बनाम भारत संघ : ए.आइ.आर. 1978 एस.सी. 597 द्वारा घोषित किया गया है ।

अनुच्छेद 21 गारंटी देता है कि "किसी व्यक्ति को, उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं" । जैसा कि सुविदित है, ए.के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य : ए.आई.आर.50 एस.सी. 27 में पूर्वतर दृष्टिकोण को उलटते हुए, उच्चतम न्यायालय ने मेनका गांधी के मामले में अभिनिर्धारित किया कि "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया" अवश्य ऐसी विधि होनी चाहिए जो ऋजु, न्यायोचित

और साम्यापूर्ण है और जो मनमानी या भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 की अतिक्रामक नहीं है ।

यदि वस्तुतः कोई प्रकाशन ऐसा है, जो स्वीकृत रूप से गिरफ्तारी के अधीन किसी व्यक्ति के संबंध में किसी दांडिक कार्यवाही में "न्याय के अनुक्रम" में बाधा डालता है या बाधा डालने की ओर प्रवृत्त है अथवा हस्तक्षेप करता है या हस्तक्षेप करने की ओर प्रवृत्त है (देखिए धारा 3(1)), किंतु विधि उसे धारा 3(2) के अधीन उन्मुक्तता देती है क्योंकि प्रकाशन आरोप पत्र/चालान फाइल किए जाने के पूर्व किया गया था, तो क्या ऐसी प्रक्रिया ऋजु, न्यायोचित और साम्यापूर्ण है ?

कई देशों, यू. के., आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड आदि, में किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी के पश्चात् प्रिन्ट या इलेक्ट्रोनिक मीडिया में किया गया कोई प्रकाशन, यह कहते हुए कि गिरफ्तार किए गए व्यक्ति की पूर्व दोषसिद्धियां हैं, थीं या यह कि उसने अन्वेषण के दौरान अपराध को संस्वीकार कर लिया है या यह कि वह वास्तव में दोषी है और उसकी फोटो आदि के प्रकाशन को प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला और किसी ऐसे संदिग्ध के लिए, जिसे दांडिक विचारण का सामना करना है, अपेक्षित सम्यक् प्रक्रिया का अतिक्रामक माना जाता है । यह स्वीकार किया जाता है कि ऐसे प्रकाशन जूरी सदस्यों और न्यायाधीशों तक के "जहां जूरी आवश्यक नहीं है" मस्तिष्क पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकते हैं । न्यायाधीशों पर प्रभाव के बारे में विस्तार से इस रिपोर्ट के अध्याय 3 में चर्चा की गई है । भारत के उच्चतम न्यायालय ने वस्तुतः एक मामले से अधिक में स्वीकार किया है कि न्यायाधीशों पर संदिग्ध/अभियुक्त के विरुद्ध 'अवचेतन रूप से' प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है । हमने वस्तुतः अमेरिका में न्यायालयों द्वारा अभिव्यक्त किए गए कुछ प्रतिकूल मतों के प्रति निर्देश किया है जहां वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता हमारे देश से अधिक विस्तृत है । अमेरिका में निर्बन्धन संकीर्ण हैं, उन्हें केवल 'स्पष्ट और विद्यमान खतरा' के परीक्षण की संतुष्टि करनी पड़ती है ।

भारत में निर्बन्धन विस्तृत हो सकते हैं और अधिरोपित किए जा सकते हैं यदि वे "युक्तियुक्त" हैं । बाधा डाले जाने से न्याय के प्रशासन का संरक्षण करने के लिए आशयित निर्बन्धनों को अनुच्छेद 19(2) के अधीन हमारे देश की अवमान विधि में, यदि वे 'युक्तियुक्त' हैं, सम्मिलित किया जा सकता है । हमारे देश में यह स्वीकार भी कर लिया गया है कि न्यायाधीश के वास्तविक पूर्वाग्रह अवमान साबित करने के लिए आवश्यक नहीं हैं । यह पर्याप्त है कि पूर्वाग्रह का सारवान खतरा है । यह सिद्धांत कि "न्याय केवल किया ही नहीं जाना चाहिए किंतु किया गया दिखाई पड़ना चाहिए" न्यायाधीशों के बारे में लोक धारणा की दृष्टि से अवचेतन रूप से पूर्वाग्रह रखने वाले के रूप में, जैसा यू.के. और आस्ट्रेलिया में स्वीकार किया गया है, लागू होता है ।

उपर्युक्त की दृष्टि से किसी व्यक्ति के संबंध में, जिसे गिरफ्तार किया गया है किंतु जिसके संबंध में आरोप पत्र या चालान किसी न्यायालय में फाइल नहीं किया गया है, किया गया ऐसा प्रकाशन हमारी दृष्टि से प्रतिकूल प्रभाव डालता है या जनता द्वारा कल्पना की जा सकती है, उसने न्यायाधीश के ऊपर प्रतिकूल प्रभाव डाला है और उस मामले में कोई प्रक्रिया ऐसी जैसी न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 की धारा 3(2), उसके स्पष्टीकरण के साथ पठित, द्वारा अनुज्ञात की गई है, ऐसी प्रक्रिया को विहित नहीं करती है, जो ऋजु, न्यायोचित और साम्यापूर्ण है, और मनमानी है तथा भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 पर आक्रमण करेगी ।

अवमान विधि, जो 'न्याय के प्रशासन' और 'न्याय के अनुक्रम' का संरक्षण करती है, न्याय की सम्यक् प्रक्रिया में असम्यक् बाधा डाले जाने को स्वीकार नहीं करती और सम्यक् प्रक्रिया में किसी निष्पक्ष विचारण के लिए संदिग्ध/अभियुक्त के अधिकारों में बाधा न डालने को सम्मिलित करती है । इस प्रकार न्यायालय का अवमान विधि उस व्यक्ति का संरक्षण करती है, जिसे गिरफ्तार किया गया है और जिसकी दांडिक विचारण का सामना करने की संभावना है । कोई प्रकाशन पूर्व दोषसिद्धियों, चरित्र या संस्वीकृतियों आदि के प्रति, जो किसी सन्निकट दांडिक मामले के विचारण में ऐसे व्यक्ति के लिए प्रतिकूल प्रभाव

कारित कर सकती हैं, निर्देश करने के रूप में नहीं किया जा सकता । अतः ऐसी प्रक्रिया न्याय के अनुक्रम में बाधा डालेगी या बाधा डालने की ओर प्रवृत्त होगी अथवा हस्तक्षेप करेगी या हस्तक्षेप करने की ओर प्रवृत्त होगी ।

एक बार गिरफ्तारी हो जाती है और कोई व्यक्ति 24 घंटे के भीतर न्यायालय में प्रस्तुत किए जाने के लिए दायी है, तब यदि, उस प्रक्रम पर, कोई प्रकाशन उसके चरित्र, दोषसिद्धियों के पिछले अभिलेख या अभिकथित संस्वीकृतियों के बारे में किया जाता है, तो वह अवचेतन रूप से मजिस्ट्रेट पर, जिसे यह विनिश्चित करना हो सकता है कि क्या जमानत को मंजूर किया जाए या मंजूर करने से इन्कार किया जाए, या इस बारे में कि कौन सी शर्तें अधिरोपित की जानी हैं या क्या व्यक्ति को पुलिस अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित किया जाना चाहिए या वह न्यायिक प्रतिप्रेषण होना चाहिए, प्रभाव डाल सकता है । आगे, यदि किसी प्रकाशन के पश्चात्, कोई जमानत का आदेश गिरफ्तार किए गए व्यक्ति के विरुद्ध जाता है, तो जनता यह अनुभव कर सकती है कि प्रकाशन ने अवचेतन रूप से मजिस्ट्रेट के मस्तिष्क पर प्रभाव डाला होगा ।

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971, अतः, विधिमान्य रूप से यह कहने के लिए संशोधित किया जा सकता है कि ऐसा प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला प्रकाशन भी, जो चाहे गिरफ्तारी के पश्चात और आरोप पत्र/ चालान फाइल किए जाने के पूर्व किया गया हो, न्याय के प्रशासन में असम्यक् बाधा डालने के बराबर होगा और इसलिए वह अवमान होगा और ऐसा कोई निर्बन्धन 'युक्तियुक्त' और उद्देश्य, गिरफ्तार व्यक्ति के अधिकारों के संरक्षण तथा न्याय के प्रशासन का आनुपातिक है ।

जहां तक प्रश्न 2 का संबंध है यदि धारा 3 में अवमान विधि का, जैसा ऊपर प्रस्ताव किया गया है, संशोधन किया जाना है, जिससे कि ऊपर निर्दिष्ट रीति के प्रकाशनों को, जो चाहे गिरफ्तारी के पश्चात् और आरोप पत्र या चालान फाइल किए जाने के पूर्व किए गए हों, स्पष्टीकरण (ख) को पुनः परिभाषित करके यह समझने के लिए कि कोई दांडिक मामला गिरफ्तारी के प्रक्रम से 'लंबित' है, अवमान के लिए दायी माना जाए, तब

क्या ऐसी विधि अनुच्छेद 19(1)(क) के अधीन गारंटीकृत वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार को अयुक्तियुक्त रूप से निर्बन्धित करेगी और क्या वह अनुच्छेद 19(2) के अधीन अनुज्ञेय युक्तियुक्त परिसीमाओं के बाहर होगी ।

यदि वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर कोई निर्बन्धन विधान मंडल द्वारा न्याय के प्रशासन या न्याय के अनुक्रम का संरक्षण करने के लिए आशयित है, जिसका गिरफ्तारी के अधीन व्यक्ति के लिए दिया जाना अपेक्षित है, और यदि ऐसे प्रकाशन के लिए प्रदान की गई उन्मुक्ति को छोड़कर, यदि, वह स्वीकृत रूप से न्याय के अनुक्रम में बाधा डालेगा या बाधा डालने की ओर प्रवृत्त होगा, तो गिरफ्तारी के अधीन व्यक्ति के दृष्टिकोण से, हमारी राय में, ऐसा निर्बन्धन अनुच्छेद 19(2) के भीतर अयुक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता । अनुच्छेद 19(2) के अधीन वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर ऐसा निर्बन्धन अनुच्छेद 19(1)(क) का अतिक्रामक होने वाला नहीं कहा जा सकता । वह युक्तियुक्त है क्योंकि, वास्तव में वह, मेनका गांधी के पश्चात् ऋजु सम्यक् प्रक्रिया के अनुसार न्याय के प्रशासन का संरक्षण करने के प्रयोजन के लिए, जिसके अंतर्गत गिरफ्तारी के अधीन ऐसे व्यक्ति के अधिकारों का संरक्षण है, जो ऐसी प्रक्रिया का हकदार है, जो अनुच्छेद 21 के अधीन ऋजु, साम्यापूर्ण और न्यायोचित है और जो अनुच्छेद 14 से संगत है, पूर्ण रूप से आवश्यक है । निर्बन्धन युक्तियुक्त है यदि वह न्यायाधीश के भाग पर पूर्वाग्रह का निवारण करने के लिए आशयित है या जनता के मस्तिष्क में पूर्वाग्रह की किसी छाप का निवारण करने के लिए, जिससे न्यायाधीश के मस्तिष्क पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो, आशयित है । यह सीधा उत्तर है ।

अनुच्छेद 19(2) उस निर्बन्धन की 'आनुपातिकता' का प्रश्न उठाता है, जो न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 जैसी विधि द्वारा अधिरोपित किया जा सकता है ।

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 के उपबंध, यदि वे प्रथम सूचना रिपोर्ट के फाइल किए जाने के पश्चात् किए गए प्रकाशनों को अवमान मानते हैं, तो (ए.के.गोपालन बनाम नूरदीन 1969 (2) एस.सी.सी. 7341 में उद्धृत) सुरेन्द्र मोहान्ती बनाम उड़ीसा राज्य

की दृष्टि से ऐसा कोई उपबंध प्रकाशनों की स्वतंत्रता पर अयुक्तियुक्त निर्बन्धन होगा । किंतु यदि प्रस्ताव यह है कि गिरफ्तारी की तारीख के पश्चात् किए गए प्रकाशन अवमान हैं, तो वह ए. के. गोपालन बनाम नूरदीन के अनुसार प्रकाशन की स्वतंत्रता पर अयुक्तियुक्त निर्बन्धन नहीं हैं ।

द्वितीयतः, यह अब सुनिश्चित है कि अनुच्छेद 19(1) के अधीन अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार आत्यंतिक नहीं है । संविधान स्वयं अनुच्छेद 19(2) में उस अधिकार पर अधिरोपित किए जाने वाले निर्बन्धनों की, यदि वे युक्तियुक्त हैं, अनुज्ञा देता है । अनुच्छेद 19(2) कहता है :

"खंड (1) के उपखंड (क) की कोई बात किसी विद्यमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी, या राज्य को कोई विधि बनाने से निवारित नहीं करेगी जहां तक ऐसी विधि न्यायालय के अवमान --- के हितों में या उसके संबंध में उक्त उपखंड द्वारा प्रदत्त अधिकार के प्रयोग पर युक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित करती है ।"

भारतीय उच्चतम न्यायालय ने बार-बार यह अभिनिर्धारित किया है कि यह स्वतंत्रता आत्यंतिक नहीं है । अमेरिका में भी यह इस प्रकार स्वीकार किया गया है । अंतर केवल यह है कि अमेरिका में सिद्धांत 'स्पष्ट और विद्यमान' खतरे का है जबकि हमारा संविधान 'युक्तियुक्त' निर्बन्धनों की अनुज्ञा देता है ।

सम्यक् प्रक्रिया के अधिकार पर कोई ऐसा निर्बन्धन, जो अपेक्षा करता है कि किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी के पश्चात् कोई ऐसा प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला प्रकाशन नहीं किया जा सकता, जो न्याय के अनुक्रम में बाधा डालेगा या बाधा डालने की ओर प्रवृत्त होगा या हस्तक्षेप करेगा या या हस्तक्षेप करने की ओर प्रवृत्त होगा, युक्तियुक्त माना जाना चाहिए, क्योंकि वह स्थायी या पूर्ण निर्बन्धन नहीं है ।

न्यूजीलैंड : अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और स्वतंत्रता को इस प्रकार संतुलित किया जाना है कि संदिग्ध या अभियुक्त पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न हो :

आगे हम गिसबोर्न हेरल्ड लिमिटेड वर्सेस सालिसिटर जनरल : 1995 (3) एन जेड एल आर 563 (सी.ए.) में मामले पर आते हैं । अब, न्यूजीलैंड बिल आफ राइट्स, 1990 ने अनुच्छेद 14 में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रति निर्देश किया है "प्रत्येक को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का, जिसके अंतर्गत किसी किस्म या किसी प्रकार की सूचना और राय मांगने, प्राप्त करने और प्रभाव डालने की स्वतंत्रता है, अधिकार है ।" अनुच्छेद 8 जीवन के अधिकार के प्रति निर्देश करता है जिसमें जीवन से, ऐसे आधारों पर के सिवाय जो विधि द्वारा स्थापित किए गए हैं और मूल न्याय के सिद्धांत से संगत हैं, वंचित नहीं किया जाना है; अनुच्छेद 25(क) जो दंड प्रक्रिया के न्यूनतम मानकों के बारे में है, खंड (क) में स्वतंत्र और निष्पक्ष न्याय द्वारा ऋजु और सार्वजनिक सुनवाई के अधिकार के प्रति निर्देश करता है; खंड (ग) तब तक निर्दोष होने की उपधारणा किए जाने के बारे में है जब तक कि विधि के अनुसार दोषी साबित न हो जाए । अनुच्छेद 5 'न्यायोचित परिसीमाओं' की बात करता है और कहता है कि बिल आफ राइट्स (अधिकार विधेयक) में अधिकार और स्वतंत्रता विधि द्वारा विहित केवल ऐसी युक्तियुक्त परिसीमाओं के अधीन हो सकते हैं जो स्वतंत्र और प्रजातांत्रिक समाज में प्रदर्शनीय रूप से न्यायोचित हो सकती हों ।

गिसबोर्न हेरल्ड के उपर्युक्त मामले में अपील न्यायालय ने अमेरिका की उस नीति का अनुसरण करने से इन्कार कर दिया जो न्याय के प्रशासन के लिए 'स्पष्ट और विद्यमान खतरे' के सिद्धांत पर आधारित थी (ब्रिजेज वर्सेस कैलीफोर्निया) : (1941) 314 यू.एस. 252 । यह डेगनायस वर्सेस कैनेडियन ब्राडकास्टिक कारपोरेशन में कनाडा की विधि के प्रति निर्देश करता है कि किसी प्रकाशन पर वर्जन का आदेश केवल तभी दिया जाना चाहिए जब वह विचारण की ऋजुता के लिए वास्तविक और सारवान खतरे का निवारण करने के क्रम में 'आवश्यक हो, क्योंकि युक्तियुक्त रूप से उपलब्ध वैकल्पिक अध्युपाय खतरे का निवारण नहीं करेंगे' और यदि न्यायालय की यह राय है कि 'प्रकाशन वर्जन के प्रशंसनीय

प्रभाव, वर्जन से प्रभावित व्यक्तियों की स्वतंत्रता के लिए, हानिकारक प्रभाव से अधिक महत्वपूर्ण हैं ।' कनाडा के उच्चतम न्यायालय ने कैनेडियन चार्टर के अनुच्छेद 2(ख), जो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के बारे में है, अनुच्छेद 11, जो ऋजु विचारण के बारे में है, 11(घ), जो निर्दोष होने की, जब तक कि स्वतंत्र और निष्पक्ष अधिकरण द्वारा किसी ऋजु और सार्वजनिक सुनवाई में विधि के अनुसार दोषी साबित न हो जाए, उपधारणा के बारे में है, पर भरोसा किया । उस चार्टर का अनुच्छेद 1 अधिकारों और स्वतंत्रताओं पर परिसीमा की अनुज्ञा विधि द्वारा विहित केवल ऐसी युक्तियुक्त परिसीमाओं के लिए देता है, जो स्वतंत्र और प्रजातांत्रिक समाज में प्रदर्शनीय रूप से न्यायोचित हो सकती हों ।

अमेरिका और कनाडा में विधि का अनुसरण करने से इन्कार करने के पश्चात्, न्यूजीलैंड के अपील न्यायालय ने गिसबोर्न हेरल्ड लिमिटेड वर्सस सालिसिटर जनरल : 1995(3) एन जेड एल आर 563(सी.ए.) में कहा :

> "हमें इस समय इस बात का विश्वास नहीं दिलाया गया है कि डेगनायस में मुख्य न्यायमूर्ति लैमर द्वारा सुझाव दिए गए वैकल्पिक उपाय को लोक क्षेत्र में संभावित प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली सामग्री के अनाधिकार प्रवेश के विरुद्ध इस देश में पर्याप्त संरक्षण माना जाना चाहिए । उन उपायों में से किसी का भी अवलंब न्यूजीलैंड में सामान्य नहीं रहा है । स्थान के परिवर्तन के लिए आवेदन बहुधा नहीं किए जाते हैं और सामान्यतः किसी विशेष अपराध का सनसनी पैदा करने वाले स्थानीय प्रचार का अनुसरण किया जाता है । स्थान परिवर्तन साक्षियों और उनमें से दूसरे बहुतों के लिए, जो प्रत्यक्षतः अंतर्वलित होते हैं, असुविधाजनक है । वह खर्चीला है । आगे हमने हमेशा यह दृष्टिकोण अपनाया है कि समुदाय में जहां अधिकथित अपराध घटित हुआ है, मामलों का विचारण करने में विशिष्ट हित होता है । आगे हेतुक के लिए चुनौतियां कभी-कभी होती हैं । और आर. वर्सस सेन्डर्स 1995(3) एन जेड एल आर 545 में इस न्यायालय के समकालीन निर्णय में दर्शित कारणों के लिए, भावी जूरी सदस्यों की उनके विचारों और विश्वासों के बारे में

प्रतिपरीक्षा साधारणतया अवांछनीय है । विचारणों की अवधि के दौरान जूरी सदस्यों के अलग कर देने की क्रिया न्यूजीलैंड में व्यवहार में नहीं रही है । स्पष्टतः यह जूरी सदस्यों पर दबाव बढ़ाएगी और उनके सामान्य जीवन को प्रभावित करेगी । विचारण पूर्व प्रचार द्वारा उत्पन्न भावी पूर्वाग्रहों को कम करने के साधन के रूप में विचारणों का स्थगन असम्यक् विलंब के बिना जीवित रहने के अधिकार के विरुद्ध जाता है ।"

अपील न्यायालय ने कहा :

"जहां तक संभव हो, दोनों मूल्यों को स्थान दिया जाना चाहिए । किंतु, कुछ मामलों में ऐसे प्रकाशन, जिनके लिए स्वतंत्र अभिव्यक्ति अधिकारों का दावा किया जाता है, ऋजु विचारण के अधिकार पर प्रभाव डाल सकते हैं । उन मामलों में किसी अनाधिकार प्रवेश का प्रभाव स्वतंत्र अभिव्यक्ति मूल्यों के अधीन प्राप्त किसी लाभ के लिए उसकी आनुपातिकता और अनाधिकार प्रवेश द्वारा उत्पन्न खतरों के निवारण या उन्हें कम करने के लिए युक्तियुक्त रूप से उपलब्ध किसी उपाय का और इस प्रकार साथ-साथ स्वतंत्र अभिव्यक्ति और ऋजु विचारण के अधिकारों, दोनों का, संरक्षण सुनिश्चित करते हुए, सभी का निर्धारण किया जाना चाहिए ।"

तथापि, यह टिप्पण किया गया है (देखिए एचटीटीपी: डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू. क्राउनलॉ.गवर्नमेंट.एनजे/अपलोड्स/कंटेंप्ट.पीडीएफ) कि दोनों अधिकारों का संतुलन करने के संबंध में गिसबोर्न में अपील न्यायालय में दृष्टिकोण में हल्का सा परिवर्तन प्रतीत होता है । निचले न्यायालय में, जिसने गिसबोर्न न्यू हेरल्ड और दूसरे समाचार पत्रों के विरुद्ध मामले की सालिसिटर जनरल वर्सेस वेलिंग्टन न्यूजपेपर्स लिमिटेड , 1995(1) एन जेड एल आर 45, में सुनवाई की, कहा (पृष्ठ 48 पर) :

"वाक् स्वतंत्रता की संकल्पना और किसी ऋजु विचारण की अपेक्षाओं के बीच संघर्ष की दशा में, अन्य सभी बातों के समान होने पर, पश्चातवर्ती अभिभावी होना चाहिए ।"

और उस मामले में यह भी कहा गया :

> "विचारण पूर्व प्रचार की स्थितियों में अंतर्वलित स्वतंत्रता की हानि आत्यंतिक नहीं है । यह मात्र विलंब है । हानि तात्कालिकता है अर्थात् किसी पत्रकार के लिए वह मूल्यवान है, किंतु ऋजु विचारण के लिए आवश्यकता की तुलना में कुछ नहीं है" ।

अपील में, गिसबोर्न हेरल्ड लिमिटेड वर्सस सालिसिटर जनरल में इस बारे में दृष्टिकोण में कुछ अंतर प्रतीत होता है कि दोनों अधिकार संतुलित हों । अपील न्यायालय ने गिसबोर्न में यह भी कहा :

> "अवमान की सामान्य विधि लोक नीति पर आधारित है । यह लोकहित कारकों का संतुलन करने की अपेक्षा करती है । लोक विवाद्यकों पर टिप्पण करने के लिए माध्यम के रूप में प्रेस की स्वतंत्रता किसी भी प्रजातांत्रिक पद्धति के लिए आधारभूत है । किसी निष्पक्ष न्यायालय द्वारा ऋजु विचारण का आश्वासन न्याय की प्रभावी पद्धति के परिरक्षण के लिए अनिवार्य है । इन दोनों मूल्यों की बिल आफ राइट्स द्वारा पुष्टि की गई है । न्यायालयों के कृत्यकरण में लोकहित इन दोनों मूल्यों का अवलंब लेता है । यह इन लोक उत्तरदायित्वों के निष्पादन के बारे में सूचना और मतों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति के लिए मांग करता है । यह ऐसे न्यायालयों द्वारा, जो पक्षपात से स्वतंत्र है और जो उनके समक्ष लाए गए न्यायोचित साक्ष्य पर सुरक्षित रूप से अपने विनिश्चय करते हैं, विवादों के अवधारण के लिए भी मांग करता है । इन दोनों अनिवार्य तत्वों की पूर्ण मान्यता न्यायालयों के लिए हल करने के लिए कठिन समस्याएं उत्पन्न कर सकती है । विवाद्यक यह है कि दोनों मूल्यों को कैसे सर्वोत्तम रूप से न्यूजीलैंड बिल आफ राइट्स एक्ट, 1990 के अधीन स्थान दिया जा सकता है ।"

अंतिम रूप से अपील न्यायालय ने कहा :

"वर्तमान नियम यह है कि जहां रूढ़िगत विश्लेषण पर, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और ऋजु विचारण दोनों का पूर्ण रूप से आश्वासन नहीं दिया जा सकता, वहां हमारे स्वतंत्र और प्रजातांत्रिक समाज में यह समुचित है कि मीडिया अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को अस्थायी रूप से कम किया जाए जिससे ऋजु विचारण की गारंटी दी जा सके ।"

दूसरे शब्दों में जब कि विचारण न्यायाधीश ने कहा कि ऋजु विचारण के अधिकार मीडिया के अधिकारों पर अध्यारोहण करते हैं, तो अपील न्यायालय ने कहा कि दोनों को संतुलित किया जाना चाहिए और न्यायालय अस्थायी पाबंदी लगा सकता है ।

आस्ट्रेलिया

ग्लैनन और हिंच मामले : वाक् स्वतंत्रता और स्वतंत्रता को संतुलित किया जाना होगा । किंतु न्याय के प्रशासन में बाधा पड़ने की संभावना के कारण अवमान के लिए दोषसिद्धि के परिणामस्वरूप किसी अपराधी की दोषसिद्धि को एक तरफ हटाने की आवश्यकता नहीं है : क्या यह सही है ?

ग्लैनन रोमन कैथोलिक पुजारी था, जो 1978 में 16 वर्ष से कम की लड़की पर अभद्र रूप से हमला करने का सिद्धदोषी था । सात वर्ष पश्चात् वह अपने भतीजे और दूसरे व्यक्ति के, जिसने उस पर (अर्थात् ग्लैनन पर) अभिकथित रूप से हमला किया था, के विरुद्ध एक हमले के मामले में क्राउन साक्षी के रूप में उपस्थित हुआ । युवकों के लिए परामर्शी ने 1978 की दोषसिद्धि के बारे में ग्लैनन की प्रतिपरीक्षा की और उस पर अभद्र रूप से दो युवकों पर हमला करने का अभियोग लगाया । मीडिया ने उन अभिकथनों के बारे में व्यापक रूप से लिखा ।

ग्लैनन पर पश्चातवर्ती अन्य लैंगिक अपराधों के आरोप लगाए गए और वह 12 नवंबर, 1985 को मजिस्ट्रेट के न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ । तीन पृथक् प्रसारणों में, एक मिस्टर हिंच ने प्रसिद्ध मैलबोर्न रेडियो स्टेशन से बोलते हुए ग्लैनन के ऊपर गंभीर आपराधिक आचरण और लैंगिक अनौचित्य का दोषारोपण किया । हिंच ने विनिर्दिष्ट रूप से

ग्लैनन की पूर्व दोषसिद्धि के बारे में बातचीत की । हिंच को अवमान के लिए दोषी ठहराया गया और उसकी हिंच वर्सेस अटार्नी जनरल (विक्टोरिया) (1987 164 सीएलआर 15) में उच्च न्यायालय में पुष्टि कर दी गई । उच्च न्यायालय ने मत व्यक्त किया :

> "स्पष्ट रूप से प्रसिद्ध मैलबोर्न स्टेशन से तीन प्रसारणों ने ऐसे संदर्भ में जहां विनिर्दिष्ट निर्देश मैलबोर्न न्यायालय में ग्लैनन के विरुद्ध लंबित दांडिक कार्यवाहियों के प्रति किया गया था, न्यायालय अवमान के अत्यधिक गंभीर मामलों में से एक को गठित किया जिसमें इस देश के न्यायालयों के समक्ष आने वाले विचारण की प्रतीक्षा करने वाले किसी व्यक्ति के दोष का लोक पूर्व निर्णय अंतर्वलित था ।"

न्यायाधीश डीन ने कहा (पृष्ठ 58 पर) कि :

> "ऋजु और पक्षपात रहित विचारण का अधिकार विधि के अधीन व्यक्ति की स्वतंत्रता का अनिवार्य रक्षोपाय है । ऋजु और पक्षपात रहित विचारण का उपबंध करने के लिए किसी समाज की योग्यता दांडिक विधि के निर्बन्धनों और शास्तियों के स्वीकार्य न्यायोचित्य का अनिवार्य आधार है । वस्तुतः यह विधि सम्मत शासन की विद्यमानता की कसौटी है ।"

आस्ट्रेलिया के उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि विचारण हो सकता है कि मिस्टर हिंच के प्रथम प्रसारण के पश्चात् लगभग दो वर्षों तक न हुआ हो, किंतु विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचने के हकदार थे कि ' विचारण की ऋजुता में गंभीर बाधा का सारवान खतरा था ।' सनसनीपूर्ण मामलों में जूरी सदस्य समय बीत जाने के बावजूद प्रकाशन के बारे में याद करने के प्रति झुकाव रख सकते थे । हिंच के प्रसारण 'लोकहित' प्रतिरक्षा द्वारा बचे हुए नहीं थे ।

किंतु जब ग्लैनन को पश्चातवर्ती सिद्धदोषी ठहराया गया और उसने यह प्रश्न उठाया कि उसका विचारण उसके पिछले चरित्र और दोषसिद्धि के बारे में अऋजु प्रचार के कारण दूषित हो गया था । उसने मिस्टर हिंच को उसके प्रकाशन के लिए दंडित करने वाले

निर्णय पर भरोसा किया । किंतु आस्ट्रेलिया के उच्च न्यायालय ने उसके अभिवाक् को आर.वी. ग्लैनन : (1992) 173 सी.एल.आर. 592 में नामंजूर कर दिया और ग्लैनन की दोषसिद्धि को युवकों के विरुद्ध लैंगिक अपराधों के लिए प्रत्यावर्तित कर दिया । न्यायालय ने निर्णय पूर्व प्रकाशन का निवारण करने के बजाय विचारण पर उसके प्रभाव को कम करने के बीच विभाजन किया । उसने कहा कि अवमान कार्यवाहियों और एक तरफ दांडिक दोषसिद्धियों में विभिन्न परीक्षण लागू थे । अवमान कार्यवाहियां भावी प्रतिकूल प्रभाव से संबंधित हैं, जिसका निर्धारण जैसा वह प्रकाशन के समय हो, किया जाना चाहिए । वास्तविक प्रतिकूल प्रभाव अवमान आरोप का तत्व नहीं है । इसके विरोध में, किसी दोषसिद्धि को हटाए जाने के पूर्व, अपील न्यायालय वास्तविक प्रतिकूल प्रभाव की सीमा से संबंधित है और, विशिष्टतः इससे कि क्या कोई घोर अन्याय घटित हुआ है । ग्लैनन की दोषसिद्धियां बनाए रखने और हिंच को अवमान के लिए दंडित करने में कोई असंगतता नहीं थी । समुदाय की आशाएं, यह मत व्यक्त किया गया था, अवश्य पूरी होनी चाहिए । यह कहा गया कि किसी ऐसी स्थिति में, सिद्धदोषों के अभिखंडित करने से 'वस्तुतः बाढ़ द्वार' खुल सकता है ।

किंतु ग्लैनन में निर्णय की आलोचना की गई है ।

आलम आर्दिक, फैकल्टी आफ ग्रिफिथ यूनिवर्सिटी (2000), आल्टरनेटिव ला जरनल, पृष्ठ 1, पर कहता है कि अपीली न्यायाधीश ने 'लोक निन्दा के डर' के कारण दोषसिद्धि को प्रत्यावर्तित कर दिया ।

प्रोफेसर माइकल चेस्टरमैन (1999) एनएसडब्ल्यु यूनिट आफटेक (सिडनी लॉ रिव्यू पृष्ठ 5 पर) यह कहने के लिए आंकड़ों के प्रति निर्देश करता है कि आस्ट्रेलिया में 1980 से बीस मामलों में से ग्यारह मामलों में, जहां इस अर्थ में ' एकरथता' थी कि विचारण को निष्फल कर दिया गया था और निंदा करने वाले को दोषसिद्ध ठहराया गया था । शेष नौ 'भटके हुए' मामलों में से, सात या तो वे थे जहां जूरी ने या तो प्रचार का सामना नहीं किया या विचारण न्यायाधीश ने इस बारे में कोई निष्कर्ष नहीं निकाला कि क्या जूरी ने

प्रचार का सामना किया । केवल तीन मामलों में जूरी विचारण निष्फल किया गया था किंतु अवमान कार्यवाही अत्यधिक लोकहित के आधार पर असफल हो गई । न्यू साउथ वेल्स विधि आयोग ने 2003 में एविडेंस एक्ट, 1995 और क्राइम्स एक्ट, 1900 का सिविल और दांडिक मामलों में 'दबाव आदेश पारित करने के लिए न्यायालयों को अनुज्ञात करने के लिए संशोधन करने की सिफारिश की है ।

हम आगे दोनों मूल अधिकारों का संतुलन करने के इस प्रश्न पर विधि आयोग की रिपोर्टों के प्रति निर्देश करेंगे ।

न्यू साउथ वेल्स (आस्ट्रेलिया) : दांडिक विचारणों में अभिव्यक्ति और सम्यक् प्रक्रिया का संतुलन करना :

आस्ट्रेलिया में न्यू साउथ वेल्स विधि आयोग ने एक व्यापक विचार विमर्श पत्र, पत्र सं. 3 (2000) को 'प्रकाशन द्वारा अवमान' विषय पर और अंतिम रिपोर्ट 100 (2003) को तैयार किया था (देखिए डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू.लालिंक.एन.एस.डब्ल्यू.जीओवी.एयू/टीआरए.एनएसएफ/पेजेज/डीपी43टीओसी एंड ला लिंक एनएसडब्ल्यू) । विचार विमर्श पत्र में, अध्याय 1 (पैरा 1.20) में, यह कहा गया है :

"प्रतियोगी लोकहित :

1.20. क्योंकि यह सूचना के प्रकाशन पर निर्बन्धन अधिरोपित करता है, न्यायाधीन नियम को न्यायालय के सामने मामलों के बारे में सूचना तक पहुंचने और हमारे समाज में विचार विमर्श की स्वतंत्रता, दोनों को परिसीमित करने वाले के रूप में देखा जा सकता है । न्यायालय इन परिसीमाओं को इस आधार पर न्यायोचित ठहराते हैं कि न्याय के उचित प्रशासन का, विशेष रूप से दांडिक मामलों में, संरक्षण करने में लोकहित, सूचना और वाक् स्वतंत्रता तक पहुंच में लोकहित से, साधारणतया अधिक महत्वपूर्ण होना चाहिए । न्यायाधीन नियम के आलोचकों ने कभी-कभी उस संतुलन के बारे में,

जिसने प्रतियोगी लोकहितो के बीच तालमेल बैठाया है, प्रश्न उठाया है । आयोग ने इन आलोचनाओं की अध्याय 2 में परीक्षा की है ।"

विचार विमर्श पत्र (एन.एस.डब्ल्यू) (2000) के अध्याय 2 में इस विषय पर पूर्ण विचार विमर्श किया गया है और निम्नलिखित रूप में यह कहा गया है :-

"वाक् स्वतंत्रता बनाम विधि की सम्यक् प्रक्रिया

2.4: इसमें कोई संदेह नहीं है कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता किसी प्रजातांत्रिक समाज के प्रामाणिक चिह्नों में से एक है और उसे उस रूप में शताब्दियों से मान्यता दी गई है । (असंख्य बड़े राजनैतिक और बौद्धिक व्यक्ति जैसे बुर्के, पेन, जैफरसन और मिल, कुछ नाम लिए जा सकते हैं - इस सिद्धांत के साथ सहयुक्त किए गए हैं । विधि सम्मत लोक चिन्ता के विषयों के बारे में लोक विचार विमर्श की स्वतंत्रता, स्वयं में, हमारे समाज का आदर्श है : हिंच वर्सेस अटर्नी जनरल : (1987) 164 सी.एल.आर. 15 (57) डीन जे.) । न्यायमूर्ति महोनी ने बल्लीना शायर वर्सेस रिंगकैनोल : (1994) 23 एनएसडब्ल्युएलआर 680 (720) में उन उद्देश्यों के बारे में, जो डर और प्रतिशोध के बिना बोलने की समार्थ्य के द्वारा प्राप्त किए जाते हैं और किसी स्वतंत्र समाज में इन उद्देश्यों के महत्व के बारे में कहा : "विचार स्वतंत्रता पूर्वक विकसित किए जा सकते हैं, संस्कृति परिष्कृत हो सकती है और अज्ञानता या शक्ति का दुरुपयोग नियंत्रित किया जा सकता है ।"

2.5. : तथापि, वाक् स्वतंत्रता आत्यंतिक नहीं हो सकती । विधिक, राजनैतिक और दर्शन शास्त्रीय संदर्भों में सदैव यह माना जाता है कि राज्य सुरक्षा, लोक व्यवस्था, व्यक्तिगत नागरिकों की सुरक्षा और प्रसिद्धि का संरक्षण सहित महत्वपूर्ण प्रतिरोधी हित उस पर अध्यारोही हो सकेंगे ।

2.6: एक ऐसा प्रतिरोधी हित विधि की सम्यक् प्रक्रिया है । वाक् स्वतंत्रता को न्याय के उचित प्रशासन, विशेष रूप से दांडिक विचारणों में, जहां किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता और / या प्रसिद्धि दाव पर लगी होती है और जहां जनता को गंभीर अपराधों के दोषी व्यक्तियों को सिद्धदोष करवाने में रुचि होती है, अग्रता नहीं लेनी चाहिए । तथापि, इस विश्वास पर कि किसी ऋजु विचारण में लोकहित अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में लोकहित से सदैव अधिक महत्वपूर्ण होगा, साधारणतया कोई आक्षेप नहीं करता है । अतः यह चर्चा कि इन प्रतियोगी लोकहितों में कैसे सामंजस्य स्थापित किया जाए इस मत के स्वीकार करने के आधार पर आगे बढ़ती है । तदुपरि, समाधान करने के लिए प्रश्न यह है कि क्या न्यायाधीन दायित्व की अनुपस्थिति में न्याय किया जा सकता है, साथ ही किया गया दिखाई पड़ सकता है । यदि उत्तर नहीं है, तब, न्यायाधीन नियम प्रतियोगी हितों के बीच उचित संतुलन प्राप्त करने के लिए अनिवार्य है, इस पर यह प्रश्न पूछा जाना चाहिए कि क्या न्यायाधीन नियम का प्रवर्तन किसी ऋजु विचारण को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यकता से अधिक वाक् स्वतंत्रता को निर्बन्धित करता है ।"

इसके पश्चात् आयोग(पैरा 2.7 में) 'अभिव्यक्ति का विधिक संरक्षण' से संबंधित निर्णयज विधि- थियोफैनस वर्सेस हेरल्ड वीकली टाइम्स लिमिटेड : (1994) 182 सी.एल.आर. 104, लांगे वर्सेस आस्ट्रेलियन ब्राडकास्टिंग कारपोरेशन : 1997) 189 सी. एल. आर. 520 के प्रति अनन्य रूप से निर्देश करता है, जिसमें यह कहा गया था कि जबकि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता आधारी थी, वह आत्यंकित नहीं थी । अटर्नी जनरल वर्सेस टाइम इंक मैगजीन कंपनी प्राइवेट लिमिटेड : (न्यू साउथ वेल्स अपील 14, 331/94 तारीख 15-9-1994) में एन.एस.डब्ल्यू अपील न्यायालय ने मत व्यक्त किया कि सामान्य विधि सिद्धांत प्रतियोगी हितों अर्थात् अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में लोकहित और न्याय के प्रशासन में लोकहित, का संतुलन करने के परिणामस्वरूप स्थापित किए गए हैं । न्यू

साउथ वेल्स न्यायालय ने यह भी कहा कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता बिना शर्त नहीं है । "अभिव्यक्ति, विधिक रूप से सुसंगत प्रयोजनों के लिए स्वतंत्र हो सकती है यद्यपि वह अन्य विधि सम्मत हितों के अधीन रहते हुए है" (पूर्वोक्त, ग्लीसन सी.जे.) ।

आयोग ने अंतर्राष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकारों की प्रसंविदा के अनुच्छेद 19(2) के प्रति निर्देश किया (देखिए पैरा 2.13 से 2.15 तक), जो वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर विभिन्न प्रयोजनों के लिए निर्बन्धन की अनुज्ञा देता है और कहा :

> "आगे अधिक, अंतर्राष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकारों की प्रसंविदा के अनुच्छेद 19 को अनुच्छेद 19(1) के अध्यधीन किया गया है, जो 'सक्षम, स्वतंत्र और निष्पक्ष अधिकरण द्वारा ऋजु सुनवाई' के लिए व्यक्तियों के अधिकार की गारंटी देता है" ।

आयोग ने 'खुले न्याय का सिद्धांत' के प्रति, जो पुनः पूर्ण नहीं है, निर्देश किया (देखिए पैरा 2.16 से 2.19 तक) और उसने कहा (देखिए पैरा 2.18) कि "मीडिया प्रभावी रूप से, ' किसी मामले से विनिर्दिष्ट रूप से सुसंगत अत्यधिक स्पष्ट रूप से प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली सामाग्री को प्रकाशित किए बिना' न्यायालयों की चर्चा और न्यायिक पद्धति को प्रोत्साहन देते हुए ' निगरानी करने वाले' की भूमिका निभा सकता है ।"

आयोग ने, निर्दोष होने की उपधारणा के बारे में, जब तक कि युक्तियुक्त संदेह के परे दोषी साबित न हो जाए, दंड प्रक्रिया के आधारी सिद्धांत के रूप में साक्ष्य के नियमों के बारे में चर्चा की (देखिए पैरा 2.20 से 2.22 तक) । साक्ष्य के नियम, मत साक्ष्य, किसी अभियुक्त के साधारण चरित्र या विश्वसनीयता के बारे में अभिकथनों, ऐसी संस्वीकृतियों, जो स्वैच्छया के रूप में स्थापित नहीं होती हैं, पूर्व दोषसिद्धि या पूर्व आचरण को अपवर्जित करते हैं । ऐसे अग्राह्य साक्ष्य पिछले द्वार के माध्यम से पुरःस्थापित नहीं किए जा सकते ।

आयोग ने इस सिद्धांत के प्रति निर्देश किया (देखिए पैरा 2.23 से 2.26 तक) कि 'न्याय किया गया दिखाई पड़ना चाहिए' । विधि की सम्यक् प्रक्रिया केवल ऋजु विचारण

के अधिकार को ही नहीं किंतु न्याय के प्रशासन में लोक विश्वास के परिरक्षण को भी सम्मिलित करती है । ' न्याय केवल किया ही नहीं जाना चाहिए किंतु किया गया दिखाई पड़ना चाहिए' आर वर्सेस ससेक्स जस्टिसेस ; एकपक्षीय रूप से मैक कार्थी : (1924) 1 के.वी. 256 (259) । इस प्रकार न्याय के प्रशासन में लोक विश्वास बनाए रखा जाता है । यदि मीडिया प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली सामग्री को प्रकाशित करता है या अभियान चलाता है, तो केवल इतना ही नहीं कि उससे दांडिक न्याय निर्णयन पर प्रभाव पड़ सकता है किंतु यदि वह ऐसा नहीं करता है, तो जनता देख सकती है और अभियुक्त विश्वास कर सकेगा कि न्याय नहीं किया गया है । ऐसी सामग्री साक्षियों पर भी प्रभाव डाल सकती है ।

उसने 'समय परिसीमाओं' को निर्दिष्ट किया (देखिए पैरा 2.27) और कहा कि कोई प्रकाशन न्यायाधीन नियम के अधीन अवमान का गठन करेगा, यदि वह उन कार्यवाहियों से संबंधित होता है जो, चालू या लंबित हैं । उदाहरणार्थ, किसी विशिष्ट अपराध से संबंधित सामग्री, जो किसी के गिरफ्तार किए जाने या अपराध से आरोपित किए जाने के पूर्व प्रकाशित की जाती है, अवमान का गठन नहीं करेगी, चाहे वह पश्चातवर्ती अभियुक्त के विचारण पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली हो ।

आयोग ने कई ऐसे बिन्दुओं के प्रति निर्दिष्ट किया (देखिए पैरा 2.30) जो गिरफ्तारी के पश्चात् या आरोप फाइल किए जाने के पश्चात् प्रकाशन का प्रतिषेध करने वाले आलोचकों द्वारा उठाए गए थे इस आधार पर कि जूरी सदस्यों पर प्रभाव का कोई अनुभवजन्य साक्ष्य नहीं है या यह कि कुछ प्रकाशन लोक स्मृति में, जब विचारण में विलंब होता है, फीके पड़ जाते हैं ; यह कि जनता उस पर अविश्वास करती है, जो मीडिया आदि में प्रकाशित किया जाता है । (अमेरिका जैसे कुछ देशों में, भावी जूरी सदस्यों की प्रारंभ में यह स्पष्ट करने के लिए बड़ी संख्या में परीक्षा की जाती है कि यदि वे यह स्वीकार करें कि वे मीडिया प्रचार द्वारा पहले से ही प्रभावित हो चुके हैं और यदि वे यह स्वीकार करते हैं, तो उन्हें अपवर्जित कर दिया जाता है ।) उपसंजाति, जाति, धर्म, वर्ग, सांस्कृतिक

रुझानों पर आधारित या पूर्व दोषसिद्धियों, अभिकथित संस्वीकृतियों आदि के बारे में प्रकाशन द्वारा, चेतन अथवा अवचेतन प्रभाव हो सकते हैं । आयोग ने कहा (देखिए पैरा 2.35) :

> "तथापि, न्यायाधीन नियम जो करना चाहता है वह अत्यधिक हानिकारक प्रतिकूल प्रभावों को निकालना है जिससे कि विचारण के पूर्व या विचारण के दौरान वाह्य स्रोतों से बनाए गए विचार मजबूती से ऐसे धारित न किए जाएं कि वे उस साक्ष्य द्वारा जो न्यायालयों में प्रस्तुत किया जाता है और जिसकी परीक्षा की जाती है और साथ ही विधि पर न्यायिक निदेशों और अनुदेशों द्वारा तथा उस साक्ष्य पर परामर्शी द्वारा किए गए प्रतिवेदन द्वारा हटाए न जा सकते हों । यह केवल उस सामग्री को दबाना चाहता है जो वर्तमान विधि आयोग के परीक्षण के अनुसार विधिक प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव डालने के लिए, व्यावहारिक वास्तविकता के विषय के रूप में, वास्तविक और निश्चित प्रवृत्ति रखती है या पुनः सूत्र रूप में कहे गए परीक्षण पर ऐसे सारवान खतरे का सृजन करती है कि उससे कार्यवाहियों की ऋजुता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा । इसके अतिरिक्त दबाव केवल सीमित समय के लिए है और अवमान का दायित्व केवल वहां प्रश्रय प्राप्त करता है जहां अभिमुक्ति के आधारों में से कोई (नीचे चर्चित) उपलब्ध नहीं है ।"

प्रतिरक्षा शीर्ष के अधीन निम्नलिखित हैं :

कि वह व्यक्ति जिसने प्रकाशन किया है उसने ऐसा सद्भाविक रूप से बिना यह जाने और विश्वास न करते हुए कि यह प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला है, किया है या इससे अवगत होने के पश्चात् उसने प्रकाशन का निवारण करने के लिए उपाय किए हैं या यह कि उसने युक्तियुक्त सावधानी वरती थी । लोकहित के ऐसे विषय हो सकते हैं, जो प्रकाशन की अपेक्षा करते हैं । लोक सुरक्षा भी एक कारण हो सकती है ।

आयोग ने मीडिया के प्रचार के ऐसे विनिर्दिष्ट उदाहरण दिए (देखिए पैरा 2.45), जो प्रतिकूल प्रभाव कारित कर सकते हैं :

(i) अभियुक्त का फोटो, जहां पहचान के एक विवाद्यक होने की संभावना है, जैसे दांडिक मामलों में ;

(ii) सुझाव कि अभियुक्त की पूर्व दोषसिद्धियां थीं, या वह कोई अपराध करने के लिए आरोपित किया गया है और / या पहले दोषमुक्त किया गया है, या अन्य दांडिक क्रियाकलापों में अंतर्वलित रहा है ;

(iii) सुझाव कि अभियुक्त ने प्रश्नगत अपराध करने के लिए संस्वीकृति दी है ;

(iv) सुझाव कि अभियुक्त उस अपराध का दोषी या उसमें अंतर्वलित है, जिसके लिए उसे आरोपित किया गया है या यह कि जूरी को अभियुक्त को सिद्धदोष या दोषमुक्त करना चाहिए ; और

(v) ऐसी टीका-टिप्पणी जो अभियुक्त के लिए सहानुभूति या वैमनस्य उत्पन्न करती है और / या जो अभियोजन का अनादर करती है या जो अभियुक्त या किसी साक्षी के चरित्र या विश्वसनीयता के प्रति पक्षपातपूर्ण या प्रतिकूल निर्देश करती है ।

इनमें से प्रत्येक के बारे में व्यौरेवार चर्चा की गई है (देखिए पैरा 2.46 से 2.54 तक) यद्यपि आयोग सामान्य विधि धारणाओं के प्रति निर्देश करता है (देखिए पैरा 2.52) कि (जबकि जूरी प्रभावित हो सकती है), न्यायिक अधिकारी नहीं होते हैं । (एक मत, जो भारत में स्वीकार नहीं किया गया है, व्यौरेवार हमारी रिपोर्ट के अध्याय 3 में है और वह हाउस आफ लार्ड्स द्वारा भी स्वीकार नहीं किया गया है, जैसा कि अन्यत्र कहा गया है) ।

न्यू साउथ वेल्स विधि सुधार आयोग की अंतिम रिपोर्ट (2003) :

न्यू साउथ वेल्स विधि सुधार आयोग की अंतिम रिपोर्ट (अध्याय 2 पैरा 2.5) (वाक् स्वतंत्रता बनाम विधि की सम्यक् प्रक्रिया) में यह कहा गया था कि " अध्युपाय, जो विधि की सम्यक् प्रक्रिया के लिए आवश्यक हैं वाक् स्वतंत्रता के ऊपर अग्रता प्राप्त करते हैं ।" उसने न्यायाधीश ब्रैनन को आर बनाम ग्लैनन : (1992) 173 सी.एल.आर. 592 में निर्दिष्ट

किया और कहा कि जबकि दोनों अधिकारों को संतुलित किया जाना है, आपराधिक न्याय के प्रशासन की ईमानदारी आधारभूत है ।

न्यू साउथ वेल्स विधि आयोग द्वारा निर्दिष्ट की गई अन्य विधि आयोग रिपोर्टें :

न्यू साउथ वेल्स विधि आयोग ने न्यूजीलैंड विधि आयोग की रिपोर्ट के प्रति भी निर्देश किया (जूरीज इन क्रिमिनल ट्रायल्स पर प्रारंभिक पत्र 37, भाग 2 (वौल्यूम 1), पृष्ठ 289) कि :

> "जब ऋजु विचारण और वाक् स्वतंत्रता के बीच कोई संघर्ष उत्पन्न होता है तो पूर्ववर्ती अभिभावी होता है क्योंकि किसी विशिष्ट अभियुक्त के लिए ऋजु विचारण का समझौता उनके लिए स्थायी हानि कारित करेगा —— जबकि मीडिया स्वतंत्रता का प्रतिबंध विधिक कार्यवाहियों के निष्कर्ष के साथ समाप्त हो जाता है ।"

और जॉन फेयर फैक्स पब्लिकेशन्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम डो : (1995) (37 एन.एस.डब्ल्यू एल.आर.सी. 81) में माइकल न्यायाधीश तिरवी के मत को कि यह अकल्पनीय होगा कि अपराधों के अभियुक्त व्यक्तियों के ऋजु विचारण का संरक्षण करने की अनिवार्य शक्ति और कर्तव्य को नष्ट करने की अनुज्ञा दी जाए ।

अध्याय 4 में न्यू साउथ वेल्स विधि आयोग ने दांडिक कार्यवाहियों में प्रतिकूल प्रभाव के बारे में और अध्याय 7 में समय परिसीमाओं और 'सन्निकटता' के बारे में चर्चा की ।

दांडिक कार्यवाहियों के संबंध में, उसने सिफारिश की (देखिए पैरा 7.12) कि "न्यायाधीन कालावधि उस समय से प्रारंभ होती है जब विधि की प्रक्रिया अभियुक्त को विचारण के लिए लाने के लिए गतिमान हो जाती है । उसने कहा कि वारंट का जारी किया जाना प्रारंभिक बिन्दु होने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि गिरफ्तारी में विलंब हो

सकता है और 'अभियुक्त की गिरफ्तारी' कहने के बजाय 'वारंट के बिना गिरफ्तारी' कहना पर्याप्त है । सिफारिश 13 यथा निम्नलिखित थी :

"13. विधान को यह उपबंध करना चाहिए कि न्यायाधीन नियम के प्रयोजनों के लिए, दांडिक कार्याहियां लंबित होनी चाहिए और जूरी सदस्यों, साक्षियों या पक्षकारों पर प्रभाव का निवारण करने के लिए परिकल्पित प्रचार पर निर्बन्धन लागू लोने चाहिए जैसा कार्यवाहियों के इन प्रारंभिक प्रक्रमों में से किसी के घटित होने पर होता है :

(क) अभियुक्त की गिरफ्तारी ;

(ख) आरोप लगाना ;

(ग) न्यायालय में हाजिर होने की सूचना का जारी किया जाना और उसका सुसंगत न्यायालय की रजिस्ट्री में फाइल किया जाना ; या

(घ) पदेन अभ्यारोपण का फाइल किया जाना ।

न्यू साउथ वेल्स बिल, 2003 की अनुसूची 1 (खंड 4) इस उपबंध का समावेश करती है ।

आस्ट्रेलिया विधि आयोग : अधिकारों का संतुलन करने के बारे में :

आस्ट्रेलिया में आस्ट्रेलिया विधि सुधार आयोग (देखिए एएलआरसी रिपोर्ट सं. 35, पृष्ठ 247 पर) ने यह देखा कि क्या प्रकाशन द्वारा अवमान शासित करने वाली विधि का सुधार वांछनीय है या नहीं और यदि ऐसा है तो किन पहलुओं से । उसने निष्कर्ष निकाला कि-

"जूरी के समक्ष दांडिक कार्यवाहियों में ऋजु विचारण के लिए नागरिकों के अधिकार को महत्वपूर्ण रूप से खतरे में डालना होगा यदि विचारण से संबंधित प्रकाशन की स्वतंत्रता पर किसी भी प्रकार का कोई निर्बन्धन नहीं होगा ।"

जबकि उसने खुले न्याय के सिद्धांत को, जिसको आस्ट्रेलिया के न्यायालयों में क्या हो रहा है, इसके बारे में रिपोर्ट करके प्रोत्साहित किया गया है, पर्याप्त महत्व दिया, और यह निष्कर्ष निकाला कि -

> "चालू या आगामी विचारणों से संबंधित प्रकाशनों पर अवमान विधि द्वारा इस समय अधिरोपित प्रतिषेध ..... पूर्ण रूप से हटाए नहीं जाने चाहिए ।"

तथापि, उसने सिफारिश की कि प्रतिषेध प्रतिकूल प्रभाव का सारवान खतरा हटाने के लिए न्यूनतम आवश्यकता तक होने चाहिए ।'

उससे यह अभिप्रेत होगा कि उस सीमा तक वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, स्वतंत्रता का संरक्षण करने में सम्यक् प्रक्रिया के अधीनस्थ होनी चाहिए ।

कनाडा विधि सुधार आयोग : अधिकारों का संतुलन करने के बारे में :

कनाडा में, कनाडा विधि सुधार आयोग (रिपोर्ट नं. 17, पृष्ठ 9 पर) ने कैनेडियन चार्टर आफ राइट्स की धारा 1 के प्रति, जो अधिकारों की गारंटी केवल ऐसे युक्तियुक्त निर्बन्धनों के अधीन देती है, जो प्रदर्शनीय रूप से किसी स्वतंत्र और प्रजातांत्रिक समाज में न्यायोचित हो सकते हैं ; धारा 2 के प्रति, जो वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रति निर्देश करती है और धारा 11(क) के प्रति जो निर्दोष होने की उपधारणा के बारे में, जब तक कि किसी स्वतंत्र और निष्पक्ष अधिकरण द्वारा किसी ऋजु और लोक सुनवाई में विधि के अनुसार दोषी न साबित हो जाए, बताती है, निर्देश किया । राज्य के यह देखने के कर्तव्य के प्रति कि ' न्याय का प्रशासन निष्पक्ष और ऋजु है' , निर्देश करने के पश्चात् आयोग ने बहस की कि राज्य किसी जूरी के समक्ष किसी विचारण के परिणाम को असम्यक् रूप से प्रभावित करने के लिए किसी व्यक्ति के प्रयास को सहन नहीं कर सकता है । न्यायाधीन नियम का प्रयोजन न्यायिक पद्धति निष्पक्षता का, असम्यक् प्रभाव से, जो उसके प्रवर्तन पर प्रभाव डाल सकता है या कम से कम ऐसा करने वाला प्रतीत हो सकता है, संरक्षण करके परिरक्षण करना है । जबकि विभिन्न अधिकारों के बीच अवश्य प्रतियोगिता होनी चाहिए, न्यायाधीन नियम को प्रतिधारित करने की आवश्यकता है ।

आयरिश विधि सुधार आयोग : अधिकारों का संतुलन करने के बारे में :

आयरलैंड में विधि सुधार आयोग (रिपोर्ट 47, 1994, पैरा 6.4) ने कहा कि प्रेस, रेडियो और टेलीविजन जनता पर शक्तिशाली प्रभाव रखते हैं और यदि उन्हें युक्तियुक्त रक्षोपायों के अधीन नहीं किया जाता है तो न्याय के उचित प्रशासन के लिए संभावित रूप से गंभीर प्रभाव हो सकते हैं और उनका परिणाम निर्दोष जनता के लंबे कारावास में हो सकता है । इसके विरोध में सूचना के स्वतंत्र प्रवाह में लोकहित पर किसी भी साधन द्वारा न्यायाधीन नियम के सावधानी पूर्वक अनुपालन से पूर्ण रूप से बाधा नहीं पड़ सकती है, चूंकि निक्रष्टतम दृष्टिकोण से, अनिर्बन्धित टीका-टिप्पणी पर प्रतिबंध और अभिकथित रूप से सुसंगत तथ्यों का प्रकाशन केवल अस्थायी प्रकृति का है । उसने इस तर्क को अस्वीकार कर दिया कि न्यायाधीन नियम अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की गारंटी के विरुद्ध ठेस पहुंचाता है । जूरी सदस्य न्याय निर्णयन में ऋजुता पर प्रभाव डालने वाले प्रतिकूल प्रकाशनों द्वारा प्रभावित हो सकते हैं और अन्य विकल्प पर्याप्त नहीं होंगे ।

इस प्रकार नार्थ साउथ वेल्स, आस्ट्रेलिया, कनाडा और आयरलैंड में सभी विधि सुधार आयोगों ने न्यायाधीन नियम का समर्थन किया और मत व्यक्त किया कि उस प्रयोजन के लिए वाक् स्वतंत्रता निर्बन्धित की जा सकती है ।

यूनाइटेड किंगडम और संडे टाइम्स मामला :

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और न्याय के ऋजु प्रशासन संबंधी प्रतियोगी अधिकार विचारणार्थ अटर्नी जनरल वर्सस टाइम्स न्यूजपेपर्स : 1973(3) आल ई.आर. 54 (एच.एल.) में सामने आए । परिणाम न्याय के प्रशासन के पक्ष में और समाचार पत्रों के विरुद्ध था । यूरोपियन कोर्ट आफ ह्यूमन राइट्स के समक्ष एक और याचिका का परिणाम संडे टाइम्स वर्सेस यूनाइटेड किंगडम (1979) (2) ईआरआर 245 में इस मत के रूप में हुआ कि प्रकाशन के विरुद्ध यू.के. में न्यायालय द्वारा मंजूर किया गया व्यादेश पूर्ण शब्दों में और बिना समय परिसीमा के था और बहुत व्यापक था और उसने यूरोपियन कन्वेन्शन का

अतिक्रमण किया था और यह कि यू.के. में (अर्थात् 1981 के पूर्व) अवमान विधि अस्पष्ट थी और उसका पालन करना कठिन था । तथ्य यथानिम्नलिखित थे :

संडे टाइम्स ने कई विचारण पूर्व सिविल मामलों का, जो स्त्रियों की गर्भावस्था के दौरान दी गई थोलीडोमाइड औषधि द्वारा प्रभावित व्यक्तियों द्वारा या उनकी ओर से फाइल किए गए थे, तय करने के लिए डिस्टिलर्स लिमिटेड पर दबाव डालने के लिए लेखों की एक आवलि प्रकाशित की । अटर्नी जनरल ने आवलियों में से एक का प्रकाशन करने से, जिसे प्रकाशित किया जाना था, समाचार पत्र को निर्बन्धित करने वाले व्यादेश के लिए कार्यवाहियां प्रारंभ की । व्यादेश मंजूर कर दिया गया । किंतु अपील न्यायालय ने खंडपीठ न्यायालय द्वारा मंजूर किए गए व्यादेश को बातिल कर दिया । हाउस आफ लार्ड्स ने अपील मंजूर की और व्यादेश को प्रत्यावर्तित कर दिया । यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जब सिविल मामले लंबित थे, डिस्टिलर्स (शराब बनाने वालों) पर मामले तय करने के लिए दबाव डालने वाले लेख प्रकाशित करना न्यायालय का अवमान था क्योंकि उससे न्याय के प्रशासन पर प्रभाव पड़ता । कुछ लॉ लार्ड्स ने अभिनिर्धारित किया कि इससे साक्षियों, जूरी सदस्यों या मजिस्ट्रेटों के मस्तिष्क पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना थी । कुछ ने कहा कि यह उपधारणा की जा सकती है कि इससे वृत्तिक न्यायाधीश पर प्रभाव नहीं पड़ेगा । व्यादेश प्रत्यावर्तित किया गया था ।

संडे टाइम्स द्वारा याचिका पर यूरोपियन कोर्ट ने संडे टाइम्स वर्सस यू.के. 1979 (2) ई.एच.आर.आर. 245 में यूरोपियन कन्वेन्शन (वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता) के अनुच्छेद 10 के आधार पर इस मामले में कार्यवाही की और एक प्रारंभिक प्रश्न उठाया "क्या बाधा विधि द्वारा विहित थी ?" जैसा कि अनुच्छेद 10(2) द्वारा अपेक्षित है । उसने निष्कर्ष निकाला कि बाधा विधि द्वारा थी क्योंकि उस अनुच्छेद के अधीन 'विधि' के अंतर्गत केवल कानूनी विधि नहीं है किंतु 'अलिखित विधि' भी है और प्रकाशकों के पास ऐसी विधि के विद्यमान होने की पर्याप्त सूचना थी ।

अगला प्रश्न जो न्यायालय ने उठाया यह था कि " क्या बाधा के उद्देश्य हैं, जो अनुच्छेद 10, पैरा 2 के अधीन विधि सम्मत हैं ?" । अनुच्छेद 10(2) के अधीन निर्बन्धन अनुज्ञेय थे "यदि वे किसी प्रजातांत्रिक समाज में राष्ट्रीय सुरक्षा, क्षेत्रीय एकता या लोक सुरक्षा के हितों में, अव्यवस्था या अपराध के निवारण के लिए, स्वास्थ्य या नैतिकता के संरक्षण के लिए, दूसरों की प्रसिद्धि के संरक्षण के लिए, विश्वास में प्राप्त सूचना के प्रकट करने का निवारण करने के लिए या न्यायपालिका के प्राधिकार और निष्पक्षता को बनाए रखने के लिए आवश्यक थे।" यूरोपियन न्यायालय ने बहुसंख्या में अभिनिर्धारित किया कि न्यायपालिका के 'प्राधिकार के अंतर्गत' उसका न्यायनिर्णयन कृत्य और साथ ही परिनिर्धारणों को अभिलिखित करने के लिए उसकी शक्तियां हैं । यहां उसने फिलमोर रिपोर्ट का अनुसरण किया । न्यायालय का अवमान विधि ने मार्ग निर्देशन किया । बाधा अनुच्छेद 10(2) के साथ विधि सम्मत थी ।

अगला प्रश्न जो न्यायालय ने उठाया यह था कि क्या बाधा न्यायपालिका का प्राधिकार बनाए रखने के लिए 'किसी प्रजातांत्रिक समाज में आवश्यक' है ? यह प्रश्न अधिक तथ्यात्मक था क्योंकि बिन्दु यह था कि क्या लोकहित हेलीडोमाइट के दुष्प्रभावों के प्रकाशन की अपेक्षा करता था । अनुच्छेद 10(2) में 'आवश्यक' 'अनिवार्य' का समानार्थक नहीं है । 'आवश्यक', न्यायालय ने कहा कि उतना लचीला नहीं था जितने कि 'ग्राह्य', 'साधारण', 'उपयोगी', 'युक्तियुक्त' या 'वांछनीय' शब्द हैं । उसने 'दबाव डालने वाली सामाजिक आवश्यकता' की और संकेत किया या उसकी ओर जो 'अनुसरित विधि सम्मत उद्देश्य के लिए आनुपातिक' था । न्यायालय द्वारा मंजूर किए गए साधारण व्यादेश ने इस मानक को पूरा नहीं किया क्योंकि वह बहुत व्यापक निबंधनों में था, आगे डिस्टिलर्स लिमिटेड पर परिनिर्धारण के लिए अधिक दबाव नहीं था क्योंकि इस विवाद्यक पर संसद् में भी बहस की गई थी किंतु हाउस आफ लार्ड्स ने इसे इस प्रकार देखा कि 'समाचार पत्र द्वारा विचारण' अनुज्ञेय नहीं था । यह स्वयं में चिंता का विषय था, जो 'न्यायपालिका के प्राधिकार' के बनाए रखने से 'सुसंगत' था । यूरोपियन न्यायालय ने स्वीकार किया कि :

"यदि मुकदमेबाजी में उठने वाले विवाद्यकों को इस प्रकार जनता के सामने रखा जाता है जिससे कि जनता उस पर अग्रिम रूप से ही अपने निष्कर्ष निकाल सके तो वह न्यायालयों के लिए अपना आदर और विश्वास खो सकती है" ।

और यह कि-

"पुनः यह अपवर्जित नहीं किया जा सकता कि लंबे समय तक जनता के समाचार मीडिया में अवास्तविक विचारणों के नियमित रूप से देखने का अभ्यस्थ हो जाने से विधिक विवादों के परिनिर्धारण के लिए न्यायालयों को उचित मंच के रूप में स्वीकार किए जाने के लिए घृणित परिणाम होंगे ।"

किंतु यूरोपियन न्यायालय ने तथ्यों पर अभिनिर्धारित किया कि संडे टाइम्स द्वारा प्रस्तावित लेख " उदार शब्दों में प्रकट किया गया था और उसने साक्ष्य या दावे के केवल एक ही पक्ष को प्रस्तुत नहीं किया कि एक संभव परिणाम था जिस पर न्यायालय पहुंच सकता है ।" उसने कहा कि थैलीडोमाइट के प्रभावों के बारे में "उत्तरों का कोई स्पष्ट सेट नहीं प्रतीत होता है ..... " । अतः पाठकों पर लेख का प्रभाव ' विभिन्न प्रकार का' होने की संभावना थी और इसलिए वह ' न्यायपालिका के प्राधिकार के' विरुद्ध नहीं था । चूंकि परिनिर्धारण लंबी अवधि से प्रगति कर रहा था, विचारण के (सिविल मामले के) संपूर्ण होने के अधिक आसार नहीं थे । किंतु वह इस बात से सहमत था कि :

"किसी लंबित वाद के परिनिर्धारण के लिए बातचीत में बाधा का निवारण करना अनुच्छेद 10(2) के अधीन, कठोर रूप से न्यायालयिक अर्थ में प्रक्रिया स्थिति में बाधा का निवारण करने से कम विधि सम्मत उद्देश्य नहीं है ।"

किंतु यह बातचीत लंबी की गई थी और प्रकाशन के समय वह विचारण के अंतिम प्रक्रम पर नहीं पहुंची थी ।

तदुपरि न्यायालय ने प्रेस और न्यायालयों की भूमिका पर जोर दिया किंतु कहा कि वह प्रतियोगी हितों का संतुलन करने का विषय नहीं है किंतु अनुच्छेद 10(2) पर वापस

जाकर यह पता किया कि यदि बाधा उसके समक्ष विनिर्दिष्ट मामले में विद्यमान तथ्यों और परिस्थितियों का ध्यान रखते हुए आवश्यक थी । थैलीडोमाइट संहार लोक चिंता का विषय था और अनुच्छेद 10 के अधीन जनता को अधिकार था कि उसे औषधि के बारे में सूचित किया जाए । सभी परिस्थितियों का ध्यान रखते हुए शिकायत की गई बाधा उस सामाजिक आवश्यकता के तदनुरूप नहीं थी, जो कन्वेन्शन के अर्थान्तर्गत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में लोकहित से अधिक महत्वपूर्ण होने के लिए पर्याप्त दबाव डालने वाली हो । निर्बन्धन अनुसरित विधि सम्मत उद्देश्य का ' आनुपातिक' नहीं था और न्यायपालिका के प्राधिकार को बनाए रखने के लिए किसी स्वतंत्र समाज में आवश्यक नहीं था ।

न्यायालय ने कहा कि विधि निश्चित होनी चाहिए और यह कि यू.के. में यह अनिश्चित रहा कि यदि संतुलन करने वाले अधिकारों का प्रश्न व्यक्तिगत मामलों में विनिश्चित किए जाने के लिए छोड़ दिया जाए ।

हमारी दृष्टि से, यूरोपियन न्यायालय का विनिश्चय उन प्रकाशनों के प्रति लागू नहीं होता है जो किसी ऐसे व्यक्ति के अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकते हों जिसे गिरफ्तार किया गया है और जहां ऐसी गिरफ्तारी इंगित करती है कि किसी आरोप पत्र के फाइल किए जाने से किसी विचारण के अधिक अनुसरण किए जाने की संभावना हो सकती है । संडे टाइम्स किसी सिविल मामले से संबंधित था, वह यूरोपियन कन्वेन्शन के अनुच्छेद 10(2) से संबंधित था जो ' आवश्यक' शब्द का प्रयोग करता है । न्यायालय ने स्वयं स्वीकार किया कि ' आवश्यक' शब्द ' युक्तियुक्त' शब्द से, जिसका हमारे संविधान के अनुच्छेद 19(2) में उपयोग किया गया है, अधिक संकीर्ण था ।

यहां नोट किए जाने के लिए एक दूसरा महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि जब कि इसकी यू.के. के नागरिकों के लिए स्वतंत्रता है कि वे यूरोपियन कन्वेन्शन के अतिक्रमण के आधार पर उपचार के लिए यूरोपियन न्यायालय में जा सकते हैं, यूरोपियन न्यायालय का निर्णय हाउस आफ लार्ड्स के मत पर अध्यारोही होने के बराबर नहीं है । वस्तुतः संडे टाइम्स मामले में स्वयं यूरोपियन न्यायालय ने यह इंगित किया कि :

"इस पर जोर देते हुए कि यह इसका (यूरोपियन न्यायालय का) कृत्य नहीं है कि वह हाउस आफ लार्ड्स में अंगीकार की गई अंग्रेजी विधि के किसी निर्वचन पर स्वयं को सुनाए ।

बोरी एंड लोव स्पष्ट रूप से कहते हैं (पृष्ठ 102, तीसरा संस्करण, 1999) कि "यद्यपि कन्वेन्शन सीधे यू.के. घरेलू विधि को लागू नहीं है और यूरोपियन न्यायालय के विनिश्चय आबद्ध पूर्व निर्णय नहीं हैं", तथापि यह उपधारणा की जानी है और यह आवश्यक है कि यू.के. को कन्वेन्शन के अधीन ग्रहण की गई उसकी अंतर्राष्ट्रीय बाध्यताओं का स्मरण कराया जाए । "यूरोप से बाहर अन्य सामान्य विधि अधिकारिताओं में भी यूरोपियन न्यायालय का विनिश्चय पूर्ण रूप से असंगत नहीं है यद्यपि उसे उतना अनुकरण योग्य नहीं भी माना जा सकता है जितने हाउस आफ लार्ड्स के विनिश्चय होते हैं ।" (देखिए कामर्शियल बैंक आफ आस्ट्रेलियन लिमिटेड बर्सस प्रेस्टन 1981 (2) एन.एस.डब्ल्यू.एल.आर. 554) ।

किंतु संडे टाइम्स मामले के पश्चात् यू.के. विधि कन्टेम्ट आफ कोर्ट एक्ट, 1981 की दृष्टि से, जिसने गिरफ्तारी की तारीख को प्रारंभिक बिन्दु के रूप में विहित किया, अस्पष्ट नहीं रह गई थी ।

हमारा निष्कर्ष :

अत यह अनुज्ञेय है कि 1971 की धारा 3 में स्पष्टीकरण का इस प्रकार संशोधन किया जाए कि जिससे प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले प्रकाशन, जो गिरफ्तारी के पश्चात् भी किए गए हों, अवमान विधि के घेरे में आ जाएं। यह पर्याप्त है, यदि गिरफ्तारी पर, व्यक्ति उस संरक्षण के अंदर आ जाता है जो संविधान और विधियां उसे देती हैं कि उसे 24 घंटे के भीतर किसी न्यायालय में प्रस्तुत किया जाना चाहिए ।

यहां हमने जमानतीय अपराधों के मामले पर विचार किया है, जहां पुलिस को गिरफ्तारी के चौबीस घंटे के भीतर, उस व्यक्ति को न्यायालय में प्रस्तुत किए बिना जमानत मंजूर करनी होती है और वह कर सकती है । किंतु फिर भी ऐसे मामले हो सकते हैं जहां

कोई व्यक्ति पुलिस द्वारा अधिरोपित शर्तों को पूरा करने में समर्थ नहीं है और तदुपरि उसे 24 घंटे के भीतर न्यायालय में प्रस्तुत किया जाना होगा । जैसा कि पूर्ववर्ती कहा गया है, ऊपर निर्दिष्ट 1978 में स्कॉटलैंड न्यायालय द्वारा विनिश्चित हॉल में निर्णय के अनुसार, परीक्षण यह है कि क्या कोई व्यक्ति न्यायालय के संरक्षण की परिधि के भीतर आ गया है और नहीं तो क्या, यदि अपराध जमानतीय है, वह शर्तें पूरी करने और 24 घंटे के भीतर पुलिस द्वारा निर्मुक्त होने में समर्थ है । उस क्षण से जब गिरफ्तारी की जाती है, वह व्यक्ति न्यायालय के संरक्षण के भीतर आ जाता है और ऐसा यह कहने के लिए पर्याप्त है कि न्यायालय कार्यवाहियां सन्निकट हैं क्योंकि व्यक्ति को 24 घंटे के भीतर न्यायालय में प्रस्तुत किया जाना होता है ।

अध्याय 8

न्यायालय द्वारा प्रकाशनों का स्थगन : चाहे प्रतिकूल प्रभाव पड़ने का सारवार खतरा जैसा यू.के. में है, समुचित नहीं है ?

न्यायालयों द्वारा आदेशों का जारी किया जाना,- किसी आसन्न या लंबित दांडिक मामले में किसी संदिग्ध पर प्रतिकूल प्रभाव का निवारण करने के लिए प्रकाशनों का स्थगन करना बहुत महत्वपूर्ण है । किसी व्यक्ति का दंड, जो न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 की धारा 3 के अधीन न्याय के अनुक्रम में असम्यक् बाधा डालने के बराबर प्रकाशन करता है, सदैव पर्याप्त नहीं है, न वह किसी प्रकार संदिग्ध या अभियुक्त की सहायता करता है । प्रश्न यह है कि क्या ऐसा प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले प्रकाशन को साधारण या विनिर्दिष्ट आदेश द्वारा स्थगित किए जाने के लिए निदेशित किया जा सकता है ।

पूर्व निर्बन्धन और पश्चातवर्ती दंड सुभिन्न हैं :

पूर्व निर्बन्धन और पश्चातवर्ती दंड के बीच अच्छा मान्यताप्राप्त विभाजन है । जॉन ई. नोवा एंड रोनल्ड डी. रोटुन्डा द्वारा सांविधानिक विधि (चौथा संस्करण) (1991) में अमेरिका में स्थिति के प्रति निर्देश करते हुए यह कहा गया है : (पृष्ठ 970)

> "जबकि यह अब सच नहीं रह गया है कि प्रथम संशोधन से केवल पूर्व निर्बन्धन से स्वतंत्रता अभिप्रेत है, पूर्व निर्बन्धन अभी तक पश्चातवर्ती दंड से अधिक गंभीर समझे जाते हैं ।"

मि. ए. वाइकल कहते हैं कि कोई 'दांडिक कानून' 'ठंडा करता है' जब कि पूर्व निर्बन्धन 'जमाता है' (देखिए मौरिलिटी ऑफ डिसेंट, पृष्ठ 61, 1975) । हमारे विचार से यदि यह 'पूर्व निर्बन्धन' है किंतु केवल प्रकाशन का 'स्थगन', तो कुछ भी 'जमना' नहीं है ।

कठोर शर्तों को अधिरोपित किया जाना होगा यदि न्यायालय द्वारा प्रकाशनों के स्थगन को अनुज्ञा दी जानी है :

जबकि पश्चातवर्ती दंड कुछ वक्ताओं को रोक सकता है, पूर्व निर्बन्धन लोक वादविवाद और ज्ञान को अधिक गंभीर रूप से परिसीमित करते हैं और पूर्व निर्बन्धन कठोर शर्तों के, चाहे वे स्थायी हों या अस्थायी, अध्यधीन होना चाहिए ।

अंग्रेजी विधि के अधीन, धारा 4(2) सबूत की अपेक्षा करती है या 'प्रतिकूल प्रभाव का सारवान खतरा' साबित किया जाना होगा यदि स्थगन आदेश न्यायालय द्वारा पारित किया जाना है । हमें इस बात की परीक्षा करनी होगी कि किस प्रकार के निर्बन्धन ऐसे प्रकाशनों को, जिनसे विचारण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना हो, स्थगित करने के लिए हमारी विधि के अधीन अधिरोपित किए जा सकते हैं ।

वास्तव में, हमने पिछले अध्याय में आस्ट्रेलिया में ग्लैनन का अनोखा मामला देखा है,- जिसे हम पहले ही अध्याय 4 में निर्दिष्ट कर चुके हैं, जहां वह व्यक्ति, जिसने प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला प्रकाशन किया था, अवमान के लिए अभियुक्त पर प्रतिकूल प्रभाव डालने की संभावना के आधार पर दंडित किया गया था किंतु बाद में न्यायालय ने अभियुक्त की दोषसिद्धि को बातिल करने से इन्कार कर दिया जब अभियुक्त द्वारा अवमान मामले में निर्णय पर भरोसा करते हुए यह अभिवाक् किया गया कि विचारण दूषित कर दिया गया था । न्यायालय ने विचारण को बातिल करने के लिए वास्तविक प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले सबूत की अपेक्षा की और कहा कि प्रतिकूल प्रभाव की संभावना, जो अवमान के लिए सुसंगत है, दोषसिद्धि बातिल करने के लिए सुसंगत नहीं थी । इस निर्णय की, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, गंभीर रूप से आलोचना की गई है ।

अतः यह देखना आवश्यक है कि क्या प्रतिकूल प्रभाव का निवारण हो सकता है बजाय इसके कि प्रतिकूल प्रभाव पड़ने के पश्चात् गंभीर उपाय किए जाएं । निःसंदेह इसे चरम मामलों तक परिसीमित करना होगा क्योंकि यह प्रकाशनों पर 'पूर्व निर्बन्धन' के बराबर है जिसे वाक् स्वतंत्रता पर गंभीर अधिक्रमण होने के रूप में स्वीकार किया गया है ।

अमेरिका में, जहां केवल अपवाद 'गंभीर और विद्यमान' खतरा है, पूर्व निर्बन्धन प्रक्रियाएं बहुत संकीर्ण हैं । हमने इंगित किया है कि अमेरिकन विधि, जिसमें भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 (2) के समान कोई उपबंध नहीं है, जो कतिपय आपवादिक प्रयोजनों के लिए वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर युक्तियुक्त निर्बन्धनों की अनुज्ञा देता है और न्यायालय के अवमान को संवैधानिक रूप से अपवादों के रूप में मान्यता दी गई है, के बीच पर्याप्त अंतर है ।

अध्याय 7 में चर्चित 'संडे टाइम्स' मामला भी निर्बन्धन आदेश का मामला था । किंतु हमने बताया है कि वह मामला विभाजित करने योग्य है क्योंकि न्यायालय का पूर्व निर्बन्धन का आदेश एक वर्ग के सिविल मामलों में परिनिर्धारण प्रभावित करने वाले प्रतिकूल प्रभाव वाले मामले के प्रकाशन से संबंधित था । कई सिविल कार्रवाइयां एक कंपनी के विरुद्ध फाइल की गई थीं जिसने थैलीडोमाइट औषधि का गर्भवती महिलाओं को विक्रय किया था, जिन्होंने अपने उत्पन्न होने वाले बच्चों पर औषधि के संभावी पश्चातवर्ती प्रभाव के कारण कंपनी के विरुद्ध मामले फाइल किए थे । प्रकाशनों ने औषधि और कंपनी की आलोचना की जब परिनिर्धारण कार्यवाहियां लंबित थी । हमने इंगित किया कि वह मामला किसी लंबित या आसन्न दांडिक विधि में संदिग्ध या अभियुक्त पर प्रभाव डालने वाले प्रकाशनों से संबंधित नहीं था ।

दूसरा मुद्दा जो हमने नोट किया है यह था कि यूरोपियन न्यायालय ने, संडे टाइम्स मामले का विनिश्चय करते समय यह अभिनिर्धारित किया था कि किसी व्यादेश को मंजूर करने के क्रम में प्रभावित पक्षकार के लिए 'आवश्यकता' साबित करना जरूरी था क्योंकि यूरोपियन कन्वेन्शन का अनुच्छेद 1 अपेक्षा करता है कि वाक् स्वतंत्रता पर अधिरोपित किया जाने वाला निर्बन्धन किसी प्रजातांत्रिक समाज में 'आवश्यक' था । यूरोपियन न्यायालय ने विनिर्दिष्ट रूप से यह इंगित किया कि कन्वेन्शन में 'युक्तियुक्त' शब्द का उपयोग नहीं किया गया था किंतु 'आवश्यक' शब्द का उपयोग किया गया था । हमारा संविधान 'युक्तियुक्त निर्बन्धन' शब्दों का उपयोग करता है और 'युक्तियुक्त निर्बन्धन' अधिरोपित

करने वाली विधि बनाए जाने की अनुज्ञा देता है । आगे यूरोपियन न्यायालय ने यू.के. न्यायालयों द्वारा मंजूर किए गए ' व्यादेश की पूर्ण प्रकृति' पर टिप्पणी की और कहा कि जबकि ऐसा स्थायी प्रतिबंध प्रकाशन पर आवश्यक नहीं था, कुछ समय के लिए प्रकाशन का स्थगन करने वाला आदेश कन्वेन्शन के अधीन भी अनुज्ञेय था ।

अतः अमेरिका के पूर्व निर्णय और संडे टाइम्स मामला हमारे देश में उदाहरण नहीं है ।

भारतीय संदर्भ में, जहां रिलायंस पेट्रोकैमिकल्स मामले में कोई व्यादेश मंजूर किया गया था और बातिल किया गया था, हमने अध्याय 3 में इंगित किया है कि उस मामले में व्यादेश सिविल मामले से संबंधित था और यह कि वह मामला भी सुसंगत नहीं है जहां तक गिरफ्तारी के पश्चात् दांडिक मामलों में विशिष्ट रूप से प्रतिकूल प्रभाव का निवारण करने के लिए प्रकाशनों पर निर्बन्धन का संबंध है ।

जबकि अमेरिकन और स्टेसवोर्क न्यायशास्त्र तथा रिलायंस मामले में एक तरफ और भारतीय सांविधानिक उपबंधों के बीच अंतर है, हमारे लिए फिर भी यह विनिश्चय करना जरूरी है कि क्या हमारे संविधान द्वारा अनुच्छेद 19(1) में गारंटीकृत वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में गंभीर बाधा का अस्थायी प्रकृति के किसी व्यादेश आदेश द्वारा निवारण किया जा सकता है । हमें यह भी विनिश्चय करना है कि कौन सी शर्तें अधिरोपित की जानी हैं ।

(यू.के.) कन्टेम्प्ट आफ कोर्ट्स एक्ट, 1981 की धारा 4(2) में स्थगन आदेशों के लिए उपबंध : गंभीर प्रतिकूल प्रभाव का सारवान खतरा :

यू.के. एक्ट, 1981 की धारा 4(2) के उपबंध यूरोपियन न्यायालय द्वारा 1979 में विनिश्चित किए गए संडे टाइम्स के मामले के पश्चात् लाए गए थे । उपधारा को यूरोपियन न्यायालय द्वारा किए गए टिप्पण के प्रकाश में कि अवमान की यू.के. विधि अस्पष्ट थी, प्रारूपित किया गया था । यह निम्न प्रकार है :

" धारा 4(2) : किन्हीं कार्यवाहियों में, न्यायालय, यदि उसे उन कार्यवाहियों में या लंबित अथवा सन्निकट किसी अन्य कार्यवाही में न्याय के प्रशासन में प्रतिकूल प्रभाव के सारवान खतरे से बचने के लिए यह आवश्यक प्रतीत होता है तो, आदेश कर सकता है कि कार्यवाहियों या कार्यवाहियों के किसी भाग की रिपोर्ट का प्रकाशन ऐसी अवधि के लिए जो न्यायालय उस प्रयोजन के लिए आवश्यक समझता है, स्थगित किया जाए ।"

यह धारा सिविल और दांडिक कार्यवाहियों में प्रतिकूल प्रभाव को लागू होती है ।

इस उपबंध में महत्वपूर्ण शब्द ' आवश्यक' और ' प्रतिकूल प्रभाव का सारवान खतरा' शब्द हैं । अन्य शब्द ' लंबित या सन्निकट' उस अधिनियम की अनुसूची 1 में यथा परिगणित ' सन्निकट' कार्यवाहियों के प्रति, जिनके अंतर्गत ' गिरफ्तारी की तारीख' है, निर्देश करते हैं ।

इस संबंध में हम यह इंगित कर सकते हैं कि इस बारे में व्यापक विचार विमर्श किया गया है कि न्यायालयों को 'दमन' आदेश पारित करने में समर्थ बनाने के लिए किन शब्दों का उपयोग करना चाहिए । न्यू साउथ वेल्स विधि सुधार आयोग ने 'प्रकाशन द्वारा अवमान' पर अपने विचार विमर्श पत्र 43(2000) में एक पूरा अध्याय 'दमन आदेश' (अध्याय 10) के लिए समर्पित किया है । 2003 की अंतिम रिपोर्ट में इस विषय पर अध्याय 10 में ' दमन आदेश' पर पुनः चर्चा की गई है । हम इन रिपोर्टों के बारे में रिपोर्ट करेंगे ।

न्यू साउथ वेल्स विधि सुधार आयोग का विचार विमर्श पत्र (2000) :

विचार विमर्श पत्र में, निम्नलिखित पहलुओं पर चर्चा की गई है - (i) खुले न्याय की संकल्पना, (ii) खुले न्याय के सिद्धांत के लिए अर्हताएं, जिसके अंतर्गत बंद कमरे में सुनवाई, न्यायालय में उपस्थित व्यक्तियों से सूचना का छिपाना, खुले न्यायालय में सुनी गई कार्यवाहियों के प्रकाशन का निषेध करने की शक्ति है, (iii) न्यू साउथ वेल्स में कार्यवाहियों के प्रकाशन का दमन करने के लिए विद्यमान शक्तियां जिनके अंतर्गत सामान्य

विधि शक्तियां, दमन आदेश जारी करने के लिए कानूनी शक्तियां, प्रकाशन न करने की परामर्श के साथ विधायी उपबंध, दमन आदेश अधिरोपित करने के लिए विस्तृत विवेकाधिकार के साथ विधायी उपबंध हैं, (iv) निम्न शीर्षों के अधीन न्यू साउथ वेल्स में दमन आदेश : मुद्दे और विकल्प, जिनके अंतर्गत न्याय के प्रशासन के लिए आवश्यक प्रकाशन न करने का निदेश देने के लिए न्यायालयों को साधारण शक्ति प्रदान करने का प्रश्न, पृष्ठभूमि (किसी ऋजु विचारण पर प्रतिकूल प्रभाव), आस्ट्रेलिया में विनिर्दिष्ट कानूनी उपबंध, न्याय के उचित प्रशासन के तत्व के रूप में ऋजु विचारण, विधि सुधार विकल्प, आयोग का अल्पकालिक विचार, व्यापक शक्ति और ' सारवान खतरा' , नामों और साथ ही साक्ष्य को दबाने की शक्ति, सिविल और दांडिक कार्यवाहियों, दोनों को लागू करने के लिए शक्ति, स्टेंडिंग और अपीलों के लिए विधायी उपबंध ।

प्रस्ताव 21 'प्रतिकूल प्रभाव के सारवान खतरे' के सिद्धांत के प्रति आगे इस उपबंध के साथ निर्देश करता है जो मीडिया को किसी ऐसे आदेश में परिवर्तन या प्रतिसंग्रहण के लिए, उस आवेदक को सुनने के पश्चात् जिसने दमन आदेश प्राप्त किए थे, न्यायालय को आवेदन करने में समर्थ बनाता है ।

न्यू साउथ वेल्स विधि आयोग की अंतिम रिपोर्ट (2003) :

अंतिम रिपोर्ट में न्यू साउथ वेल्स विधि आयोग ने निम्नलिखित पहलुओं पर विचार किया (i) कानूनी दमन आदेश जिनके अंतर्गत उनकी क्यों आवश्यकता है, कौन दमन आदेश के अधीन है, किसी दमन आदेश के विद्यमान होने का ज्ञान, प्रकाशन का विद्यमान कानूनी विनियमन, हैं, (ii) उपनामों के अधीन सिफारिशें, स्थायी, अंतरिम निलंबन आदेश, कठोर दायित्व अपराध, सामग्री जिसको दमन आदेश लागू होते हैं और अंतिम रूप से यथा निम्नलिखित अपनी सिपारिशें दी :

> "एक नया उपबंध एविडेंस एक्ट, 1995 (न्यू साउथ वेल्स) में पुरःस्थापित किया जाना चाहिए, जो उपबंध करता हो कि किसी कार्यवाही में किसी न्यायालय को कार्यवाहियों के (जिनके अंतर्गत दस्तावेजी सामग्री है) किसी भाग की रिपोर्टों के

प्रकाशन का दमन करने की शक्ति है, जहां वह न्याय के प्रशासन के लिए या तो साधारणतया या विनिर्दिष्ट कार्यवाहियों के संबंध में (जिनके अंतर्गत वे कार्यवाहियां हैं जिनमें आदेश किया गया है) आवश्यक है । यह शक्ति सिविल और दांडिक कार्यवाहियों, दोनों को लागू होनी चाहिए और इसका विस्तार साक्ष्य के और मौखिक प्रतिवेदनों साथ ही उस सामग्री के, जो पक्षकारों की पहचान और न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों में अंतर्वलित साक्षियों की पहचान के लिए पथ प्रदर्शन करेगी, प्रकाशन के दमन तक होना चाहिए । नई धारा को सामान्य विधि को प्रतिस्थापित नहीं करना चाहिए और उन विद्यमान कानूनी उपबंधों के साथ कार्य करना चाहिए जो प्रकाशन को निर्बन्धित करते हैं जब तक कि कोई ऐसा सफल उपयोजन न किया गया हो, जो ऐसे उपबंध को परिस्थितियों में लागू न होने वाला बनाता हो । तथापि, क्रिमिनल प्रोसीजर एक्ट, 1986 (न्यू साउथ वेल्स) की धारा 119, अन्य कानूनों में अंतर्विष्ट किन्हीं अन्य उपबंधों के साथ, जो न्यायालयों को, यदि आधार स्वीकारात्मक रूप में बनाए गए हैं, दमन आदेश अधिरोपित करने के लिए विवेकाधिकार देती हैं, निरसित की जानी चाहिए ।

क्राइम्स एक्ट, 1900 (न्यू साउथ वेल्स) में एक धारा, जो किसी आदेश का भंग करना दांडिक अपराध बनाती हो, पुरःस्थापित की जानी चाहिए । इस धारा द्वारा सृजित अपराध कठोर दायित्व का होना चाहिए ।

एविडेंस एक्ट, 1995 (न्यू साउथ वेल्स) को यह भी स्पष्ट रूप से उपबंध करना चाहिए कि उस मामले में पर्याप्त हित रखने वाला कोई व्यक्ति दमन आदेश के करने, उसमें परिवर्तन करने या उसका प्रतिसंग्रहण करने के लिए न्यायालय को आवेदन करने का पात्र होना चाहिए । दमन आदेश के लिए आवेदन, मीडिया और किसी अन्य व्यक्ति के साथ जिसे न्यायालय द्वारा पर्याप्त हित रखने वाला माना जाए, सुना जा सकता है । उन्हीं प्रवर्गों के व्यक्ति दमन आदेश के संबंध में अपील करने में भी समर्थ होने चाहिए । ऐसा व्यक्ति, यदि उसे मूल आवेदन पर पहले

सुना गया हो तो अपील में सुने जाने का हकदार होना चाहिए । पर्याप्त हित रखने वाला कोई अन्य व्यक्ति सुने जाने की इजाजत मांग सकता है । किसी विनिश्चय के विरुद्ध कोई अपील उच्चतम न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा सुनी जानी चाहिए सिवाय वहां के जहां दमन आदेश उच्चतम न्यायालय में किया गया था, जिस दशा में कोई अपील अपील न्यायालय को होनी चाहिए ।

न्यायालय अंतरिम दमन आदेश करने के लिए भी, जो अधिकतम सात दिनों की अस्तित्वावधि रखता हो, अंतिम अवधारण के लिए अग्रसर होने के पूर्व सशक्त होना चाहिए । न्यायालय को पश्चातवर्ती अंतरिम दमन आदेश मंजूर करने की शक्ति होनी चाहिए ।"

आयोग ने 'दमन आदेशों' को न्यायालय द्वारा पारित किए जाने में समर्थ बनाने के लिए एक प्रारूप विधेयक तैयार किया है । हम इसके प्रति बाद में व्यौरेवार निर्देश करेंगे ।

अन्य विधि सुधार आयोग :

हम "दमन" आदेशों पर अन्य विधि सुधार आयोगों के विचारों के प्रति संक्षेप में निर्देश करेंगे ।

आस्ट्रेलियन विधि सुधार आयोग ने अवमान और जूरी पर प्रतिकूल प्रभाव (रिपोर्ट नं. 35, 1987) पर अपनी रिपोर्ट में यह खतरा स्वीकार किया कि विधिक कार्यवाहियों की रिपोर्टों में ऐसी सामग्री हो सकती है, जो जूरी द्वारा विचारण पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है । इसने सिफारिश की कि किसी न्यायालय को कार्यवाहियों के किसी भाग की रिपोर्ट के प्रकाशन को स्थापित करने की शक्ति होनी चाहिए, यदि उसका समाधान हो जाए कि प्रकाशन ऐसे सारवान खतरे को उद्भूत कर सकता है कि किसी अभियुक्त के किसी दोषारोपण योग्य अपराध के ऋजु विचारण पर उस प्रभाव के कारण, जो प्रकाशन जूरी सदस्यों पर डाल सकता है, प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है (पैरा 324) । पैरा 327 में उसने सुपुर्दगी कार्यवाहियों की मीडिया रिपोर्टों पर पाबंदी लगाने की सिफारिश की ।

विक्टोरिया विधि सुधार आयोग (आस्ट्रेलिया) की भी वही राय थी जो आस्ट्रेलिया के विधि सुधार आयोग की थी (विक्टोरिया विधि सुधार आयोग, अवमान पर आस्ट्रेलिया के विधि सुधार आयोग की रिपोर्ट पर टिप्पण सं. 35 (अप्रकाशित, 1987) ।

कामन वेल्थ गवर्नमेंट (आस्ट्रेलिया) ने भी अपने 1992 पेपर के कार्यान्वय की सिफारिश की (आस्ट्रेलिया, अटर्नी जनरल का डिपार्टमेंट, दि ला आफ कन्टेम्प्ट : कामन वेल्थ पोजीसन पेपर (1992)) और एटोर्नी जनरल की स्टेन्डिंग कमेटी के विचारण के लिए उस आधार पर एक विधेयक तैयार किया । 1993 के विधेयक का नाम क्राइम्स (प्रोटेक्सन आफ दि एडमिन्स्ट्रेसन आफ जस्टिस) अमेंडमेंट बिल, 1993 (सीटीएच) था ।

कनाडा में किसी ऋजु विचारण पर प्रतिकूल प्रभाव डालने की काल्पनिक संभावना के आधार पर दमन आदेश पारित करना अनुज्ञेय नहीं है किंतु प्रकाशन अवश्य ऐसा होना चाहिए जो किसी ऋजु विचारण पर प्रतिकूल प्रभाव डालने के ' वास्तविक और सारवान खतरे' का सृजन करेगा (डेग्नायस वर्सेस कैनेडियन ब्राडकास्टिंग कारपोरेशन : (1994) 120 डी.एल.आर. (फोर्थ) 12 ।

आयरिश विधि सुधार आयोग ने दोषारोपण योग्य अपराधों की प्रारंभिक कार्यवाहियों, जैसे सुपुर्दगी कार्यवाहियों, के रिपोर्ट करने पर किसी पाबंदी के कठोर उपबंधों की सिफारिश की है (आयरिश लॉ रिफोर्म कमीशन, कन्टेम्ट आफ कोर्ट रिपोर्ट नं. 47, 1994, पैरा 6.37 से 6.42 एंड कन्सल्टेशन पेपर (1991) 343-350 । वास्तव में (आयरलैंड) क्रिमिनल प्रोसीजर ऐक्ट, 1967 की धारा 17 के अधीन (जो वस्तुतः जमानत कार्यवाहियों को लागू नहीं थी) यह स्थिति थी और आयोग ने अनुभव किया कि उस उपबंध को आयरलैंड में कभी प्रश्नगत नहीं किया गया है । ऐसी प्रक्रिया यह सुनिश्चित करती है कि मीडिया ऐसे मामलों की रिपोर्ट नहीं करता है, जिसे दंड न्यायालय पश्चातवर्ती ' अग्राह्य' के रूप में मान सकता है ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973, आतंकवादी और विध्वंशक क्रियाकलाप अधिनियम, 1985 (1987), आतंकवाद निवारण अधिनियम, 2002 और अविधिपूर्ण क्रियाकलाप

(निवारण) अधिनियम, 1967, 2004 में यथा संशोधित, जैसे कई कानून हैं । इन अधिनियमों में सिद्धांतों या खुले न्याय के कई अपवाद अंतर्विष्ट हैं ।

भारतीय कानूनों ने खुले न्याय के बारे में कुछ अपवादों का सृजन किया है :

हमारी 198वीं रिपोर्ट में जो 'साक्षी पहचान संरक्षण और साक्षी संरक्षण कार्यक्रम' (2006) पर थी और परामर्श पत्र (अगस्त 2004) में, जो उससे पहले का है, इन कानूनों पर जो खुले न्याय के सिद्धांत का अपवाद हैं, जो हमारी विधि का भाग है, व्यापक विचार विमर्श किया गया था । हमने लैंगिक अपराधों और आतंकवादियों के बारे में, जहां साक्षी की पहचान के संरक्षण और बंद कमरे में कार्यवाहियों को खुले न्याय के सिद्धांत का विधिमान्य अपवाद अभिनिर्धारित किया गया है, के बारे में कार्यवाही करने वाले कानूनों के प्रति निर्देश किया है । हमने इंगित किया है कि ठीक उस समय से जब स्कॉट वर्सस स्कॉट ए.सी. 417 (463) 1913 में विनिश्चय किया गया था, 'खुला न्याय' हमारे देश में विधि रहा है । हमने उन विनिश्चयों के प्रति भी निर्देश किया है जिन्होंने कहा कि खुले न्याय के सिद्धांत के ऐसे अपवाद हैं, जहां अपवाद को दूसरे 'अध्यारोही' सिद्धांत द्वारा न्यायोचित ठहराया जा सकता है । न्याय के प्रशासन में ऋजु विचारण की आवश्यकता एक ऐसी ही है । हमने उक्त रिपोर्टों में व्यापक रूप से यह भी निर्दिष्ट किया है कि वाक् स्वतंत्रता का अधिकार भी हमारे देश में आत्यंतिक नहीं है । हम उस सभी साहित्य और तुलनात्मक विधि के प्रति जिसको हमने उन रिपोर्टों में निर्दिष्ट किया है, निर्देश करने का प्रस्ताव नहीं करते हैं ।

यह कहना पर्याप्त होगा कि 'साक्षी पहचान संरक्षण' के लिए उपबंध लाकर दांडिक कार्यवाहियों में ऋजुता का संरक्षण करने की जितनी आवश्यकता है ठीक उसी प्रकार ऋजु आपराधिक विचारण के लिए अभियुक्त के अधिकारों का संरक्षण करने की भी आवश्यकता है ।

नार्थ साउथ वेल्स विधि सुधार आयोग की रिपोर्ट (2003) से संलग्न प्रारूप विधेयक :

न्यू साउथ वेल्स बिल, 2003, जो उनकी अंतिम रिपोर्ट (2003) से संलग्न था, यू.के. एक्ट, 1981 से अधिक व्यापक है । हम उस विधेयक के उपबंधों के प्रति निर्देश करेंगे ।

विधेयक की धारा 3 के अधीन 'दांडिक कार्यवाही' को निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया गया है :

"दांडिक कार्यवाही : से किसी अपराध के लिए किसी व्यक्ति के विचारण या ऐसे दंडादेश देने से संबंधित किसी न्यायालय में कार्यवाही अभिप्रेत है और उसके अंतर्गत निम्नलिखित है-

(क) विचारण के लिए किसी व्यक्ति की सुपुर्दगी के लिए कोई कार्यवाही, और

(ख) दोषसिद्धि की अनुगामी किसी व्यक्ति को दंडादेश देने के लिए कोई कार्यवाही, और

(ग) जमानत से संबंधित कोई कार्यवाही (जिसके अंतर्गत विचारण या किसी व्यक्ति को दंडादेश देने के दौरान कोई कार्यवाही है) और

(घ) क्राइम्स एक्ट, 1900 के पार्ट 15-ए (आशंकाग्रस्त हिंसा) के अधीन किसी आदेश से संबंधित कोई कार्यवाही,

(ङ) निम्नलिखित की प्रारंभिक या उससे आनुषंगिक कोई कार्यवाही :

(i) किसी अपराध के लिए कोई अभियोजन, या

(ii) विचारण के लिए किसी व्यक्ति की सुपुर्दगी के लिए कोई कार्यवाही, या

(iii) जमानत से संबंधित कोई कार्यवाही, या

(iv) क्राइम्स एक्ट, 1900 के भाग 15-ए (आशंकाग्रस्त हिंसा) के अधीन किसी आदेश से संबंधित कोई कार्यवाही, और

(च) विचारण या किसी व्यक्ति को दंडादेश देने के संबंध में किसी अपील के रूप में कोई कार्यवाही ।"

धारा 4 का खंड (ङ) स्पष्ट रूप से उस प्रक्रम को सम्मिलित करता है जब कोई व्यक्ति ' गिरफ्तार' किया जाता है ।

विधेयक की धारा 7 से धारा 10 तक महत्वपूर्ण है और ' सारवान खतरे' के बारे में है ।

धारा 7 जूरी सदस्यों और भावी 'जूरी सदस्यों पर प्रभाव के खतरे के कारण अवमान' के बारे में है और सिविल तथा साथ ही दांडिक कार्यवाहियों को लागू होती है । धारा 8 'साक्षियों' और भावी साक्षियों पर प्रभाव के खतरे के कारण अवमान' के बारे में है और सिविल तथा दांडिक कार्यवाहियों को लागू होती है ; धारा 9 'सिविल कार्यवाहियों के पक्षकारों या भावी पक्षकारों पर दबाव के कारण अवमान' के बारे में है ; धारा 10 'दांडिक कार्यवाहियों के पक्षकारों या भावी पक्षकारों पर दबाव के कारण अवमान' के बारे में है । इन धाराओं के खंड छोटे अंतरों के साथ समरूप हैं । कुछ धाराओं में अतिरिक्त खंड हैं । हम धारा 7, धारा 8 और धारा 10 के प्रति निर्देश करेंगे जो हमारे लिए अधिक सुसंगत हैं :

धारा 7 : 'जूरी सदस्यों और भावी जूरी सदस्यों पर प्रभाव के खतरे के कारण अवमान'-

(1) कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति के विरुद्ध न्यायाधीन अवमान कार्यवाही का दोषी है यदि

(क) वह व्यक्ति मामला प्रकाशित करता है या मामला प्रकाशित किया जाना कारित करता रहै, और

(ख) कोई दांडिक या सिविल कार्यवाही मामले के प्रकाशन के समय पर सक्रिय है, और

(ग) कार्यवाही ऐसी है जिस पर किसी जूरी के समक्ष विचार किया जाएगा, किया जा सकता है या किया जा रहा है, और

(घ) उस मामले का प्रकाशन, प्रकाशन के समय पर परिस्थितियों के अनुसार ऐसे सारवान खतरे का सृजन करता है कि उस कार्यवाही में जूरी सदस्य या कोई व्यक्ति, जो कार्यवाही में कोई जूरी सदस्य हो सकता है (भावी जूरी सदस्य) उस मामले से अवगत हो जाएगा, और

(ङ) प्रकाशन के समय पर परिस्थितियों के अनुसार कोई ऐसा सारवान खतरा है कि जूरी सदस्य या भावी जूरी सदस्य कार्यवाही में जूरी सदस्य के रूप में कार्य करने के समय पर मामले का स्मरण करेगा, और

(च) इस खतरे के कारण कि जूरी सदस्य या भावी जूरी सदस्य उस समय पर मामले का स्मरण करेगा, प्रकाशन के समय पर परिस्थितियों के अनुसार ऐसा सारवान खतरा है, जो कार्यवाही की ऋजुता पर प्रकाशित मामले द्वारा जूरी सदस्य या भावी जूरी सदस्यों पर पड़ने वाले प्रभाव के माध्यम से प्रतिकूल प्रभाव डालेगा ।

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट रूप में कोई व्यक्ति दोषी पाया जा सकता है चाहे उस व्यक्ति का कार्यवाही की ऋजुता पर प्रतिकूल प्रभाव डालने का आशय था या नहीं ।

(3) अनुसूची 1 का भाग 1 उन विषयों का अवधारण करने के लिए लागू होता है जिन पर कोई कार्यवाही इस धारा के प्रयोजनों के लिए सक्रिय है ।

(4) इस धारा का न्यू साउथ वेल्स के बाहर मामले के प्रकाशन पर विस्तार है ।

धारा 8 : साक्षियों और भावी साक्षियों पर प्रभाव के खतरे के कारण अवमान :

(1) कोई व्यक्ति उस व्यक्ति के विरुद्ध न्यायाधीन अवमान कार्यवाही में दोषी है यदि,

(क) वह व्यक्ति मामला प्रकाशित करता है या मामला प्रकाशित किए जाने के लिए कारित करता है, और

(ख) कोई दांडिक या सिविल कार्यवाही मामले के प्रकाशन के समय पर सक्रिय है, और

(ग) उस मामले का प्रकाशन, प्रकाशन के समय पर परिस्थितियों के अनुसार कोई ऐसा सारवान खतरा सृजित करता है कि जिससे उस कार्यवाही में कोई साक्षी या कोई व्यक्ति जो कार्यवाही में साक्षी हो सकता है, इस मामले से अवगत हो जाएगा, और

(घ) प्रकाशन के समय पर परिस्थितियों के अनुसार कोई ऐसा सारवान खतरा है कि जिससे कोई साक्षी उस कार्यवाही के किसी प्रक्रम पर मामले की अंतर्वस्तुओं का या उस कार्यवाही के संबंध में किसी शासकीय अन्वेषण का स्मरण करेगा, और

(ङ) उस खतरे के कारण कि साक्षी उस समय पर मामले का स्मरण करेगा, जो कि कार्यवाही की ऋजुता पर प्रकाशित मामले द्वारा साक्षियों या भावी साक्षियों पर पड़ने वाले प्रभाव के माध्यम से प्रतिकूल प्रभाव डालेगा ।

(2) कोई व्यक्ति उपधारा (1) में निर्दिष्ट रूप में दोषी पाया जा सकता है चाहे उस व्यक्ति का कार्यवाही की ऋजुता पर प्रतिकूल प्रभाव डालने का आशय था या नहीं ।

(3) अनुसूची 1 का भाग 2 उस समय का अवधारण करने के लिए लागू होता है, जिस पर कोई कार्यवाही इस धारा के अर्थान्तर्गत सक्रिय के रूप में माना जानी है ।

(4) इस धारा का न्यू साउथ वेल्स से बाहर मामलों के प्रकाशन पर विस्तार है ।

धारा 9 : सिविल कार्यवाहियों के पक्षकारों या भावी पक्षकारों पर दबाव के कारण अवमान :

(1) कोई व्यक्ति उस व्यक्ति के विरुद्ध न्यायाधीन अवमान कार्यवाही का दोषी है यदि-

(क) वह व्यक्ति मामला प्रकाशित करता है या मामला प्रकाशित किया जाना कारित करता है, और

(ख) मामले में अऋजु टिप्पण या तथ्य का तात्विक दुर्व्यपदेशन समाविष्ट है जो किसी सिविल कार्यवाही के पक्षकार या भावी पक्षकार के रूप में किसी व्यक्ति के लिए उसके चरित्र में गंभीर अवमान या उसके गंभीर उपहास के प्रति नफरत उदीप्त करता है, और

(ग) मामले के प्रकाशन के कारण, प्रकाशन के समय पर परिस्थितियों के अनुसार सारवान खतरा है, कि कार्यवाही के पक्षकार या किसी भावी पक्षकार की स्थिति में युक्तियुक्त सहन शक्ति वाला कोई व्यक्ति, कार्यवाहियों को संस्थित करने, बनाए रखने, उनमें प्रतिरक्षा करने, प्रतिरक्षा करना जारी रखने या उसका परिनिर्धारण करना चाहने के संबंध में उससे भिन्न विनिश्चय करेगा, जो वह अन्यथा करता ।

(2) कोई व्यक्ति उपधारा (1) में निर्दिष्ट रूप में दोषी पाया जा सकता है चाहे उस व्यक्ति का ऐसे खतरे को, जो उपधारा (1) (ग) में वर्णित है, उत्पन्न करने का आशय था या नहीं ।

(3) यह धारा सिविल कार्यवाही में किसी अपील की समाप्ति के और अपील या आगे अपील (जो भी पश्चातवर्ती हो) के लिए अनुज्ञात किसी अवधि के अवसान के पश्चात् किसी सिविल कार्यवाही के पक्षकार या भावी पक्षकार से संबंधित मामले के प्रकाशन को या उसके संबंध में लागू नहीं होती है ।

(4) इस धारा का न्यू साउथ वेल्स से बाहर मामले के प्रकाशन पर विस्तार है ।

(5) इस धारा में किसी कार्यवाही के संबंध में भावी पक्षकार से अभिप्रेत है-

(क) कोई व्यक्ति जो, यह विश्वास करने के लिए युक्तियुक्त आधार हैं, कार्यवाही में पक्षकार हो सकता है या होता है, और

(ख) कोई व्यक्ति जो कार्यवाही संस्थित करने की स्थिति में है या हो सकता है, चाहे वास्तव में ऐसा करना उसके मस्तिष्क में है या नहीं ।

धारा 10 : दांडिक कार्यवाहियों के पक्षकारों या भावी पक्षकारों पर दबाव के कारण अवमान :

(1) कोई व्यक्ति उस व्यक्ति के विरुद्ध न्यायाधीन अवमान कार्यवाही में दोषी है यदि-

(क) वह व्यक्ति मामला प्रकाशित करता है या मामला प्रकाशित किया जाना कारित करता है,

(ख) मामले में अऋजु टिप्पण या तथ्य का तात्विक दुर्व्यपदेशन समाविष्ट है जो किसी दांडिक कार्यवाही के पक्षकार या भावी पक्षकार के रूप में किसी व्यक्ति या उसके चरित्र के प्रति नफरत उदीप्त करता है, उसका गंभीर अनादर या गंभीर उपहास करता है, और

(ग) मामले के प्रकाशन के कारण, प्रकाशन के समय पर परिस्थितियों के अनुसार सारवान खतरा है, कि कार्यवाही के पक्षकार या किसी भावी पक्षकार की स्थिति में युक्तियुक्त सहन शक्ति वाला कोई

व्यक्ति, कार्यवाहियों को संस्थित करने, बनाए रखने, उनमें प्रतिरक्षा करने, प्रतिरक्षा करना जारी रखने, दोषी का अभावाक् करने या दोषी का अभिवाक् स्वीकार करने के संबंध में उससे भिन्न विनिश्चय करेगा, जो वह अन्यथा करता ।

(2) कोई व्यक्ति उपधारा (1) में निर्दिष्ट रूप में दोषी पाया जा सकता है चाहे उस व्यक्ति का ऐसे खतरे को, जो उपधारा (1) (ग) में वर्णित है, उत्पन्न करने का आशय था या नहीं ।

(3) यह धारा दांडिक कार्यवाही में संस्थित की गई किसी अपील कार्यवाही की समाप्ति के और अपील या आगे अपील (जो भी पश्चातवर्ती हो) के लिए अनुज्ञात किसी अवधि के अवसान के पश्चात् किसी दांडिक कार्यवाही के पक्षकार या भावी पक्षकार से संबंधित मामले को या उसके संबंध में लागू नहीं होती है ।

(4) इस धारा का न्यू साउथ वेल्स से बाहर मामले के प्रकाशन पर विस्तार है ।

(5) इस धारा में ..... "

विधेयक का भाग 3 दांडिक न्यायाधीन अवमान का निष्कर्ष निकालने में कारकों के प्रति निर्देश करता है और धारा 11 कथन करती है कि पूर्व-विद्यमान प्रचार अवमान के निष्कर्ष का निवारण नहीं करता है । धारा 12 कथन करती है कि प्रकाशन के अनुगामी जूरी के उन्मोचन से संबंधित साक्ष्य अवमान कार्यवाहियों में ग्राह्य है ।

विधेयक का भाग 4 न्यायाधीन 'अवमान कार्यवाहियों में प्रतिरक्षाओं के प्रति निर्देश करता है : धारा 13 का शीर्षक है " प्रतिरक्षा यदि आचरण निर्दोष है या यदि कोई सुसंगत ज्ञान या नियंत्रण नहीं है", धारा 14 का शीर्षक है ' प्रतिरक्षा यदि प्रकाशन की अंतर्वस्तु पर कोई संपादकीय नियंत्रण नहीं है ।'

भाग 5 न्यायाधीन कार्यवाही में दायित्व के अपवर्जन के प्रति निर्देश करता है । धारा 15 ' दायित्व का अपवर्जन जब प्रकाशन लोकहित के किसी मामले से संबंधित हो' के प्रति निर्देश करती है किंतु अपवर्जन उपलब्ध नहीं है यदि लाभ जूरी सदस्यों, भावी जूरी सदस्यों, साक्षियों, भावी साक्षियों या पक्षकारों अथवा भावी पक्षकारों पर प्रभाव के खतरे द्वारा न्याय के प्रशासन को कारित हानि से अधिक नहीं है । धारा 16 दायित्व के अपवर्जन के प्रति निर्देश करती है, जब प्रकाशन लोक सुरक्षा का संरक्षण करने के लिए आवश्यक है ।

भाग 6 'दमन आदेशों' के प्रति निर्देश करता है यदि वास्तविक या आशंकित दांडिक अवमान है ।

"धारा 17 : वास्तविक या आशंकित न्यायालय अवमान का निर्बन्धन :

(1) पर्याप्त हित रखने वाला कोई व्यक्ति किसी मामले के प्रकाशन द्वारा (चाहे राज्य के भीतर या बाहर), जो उस राज्य के किसी न्यायालय में दूसरी कार्यवाही की ऋजुता पर प्रतिकूल प्रभाव डालने की प्रवृत्ति रखता हो, न्यायालय के अवमान को निर्बन्धित करने के किसी आदेश के लिए उच्चतम न्यायालय में कार्यावाही ला सकता है ।

(2) कोई आवेदन इस धारा के अधीन नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि महान्यायवादी और अन्य कार्यवाही के पक्षकारों (यदि कोई हों) को आवेदन की सूचना न दे दी गई हो ।

(3) लोक अभियोजन निदेशक को उपधारा (2) का अनुपालन नहीं करना है ।

(4) इस धारा के अधीन कोई कार्यवाही किसी व्यक्ति द्वारा अपनी ओर से और दूसरे व्यक्तियों की (उनकी सहमति से), या किसी निगमित या अनिगमित निकाय (उसकी समिति या अन्य नियंत्री या प्रशासी निकाय की सहमति से) की

ओर से, जो वैसा ही या सामान्य हित उस कार्यवाही में रखते हों, लाई जा सकती है ।

भाग 7 'अवमानात्मक प्रकाशन के कारण बंद किए गए विचारण का खर्च' के प्रति निर्देश करता है । धारा 18 इस पहलू के बारे में है. ।

धारा 19 कथन करती है कि महान्यायवादी अभियुक्त या राज्य या किसी व्यक्ति या किसी वर्ग के व्यक्तियों के लाभ के लिए धारा 18 के अधीन आवेदन कर सकता है ।

धारा 20 खर्च की परिगणना ; धारा 21 खर्च की प्रकृति ; धारा 22 खर्च का प्रमाणन ; धारा 23 आदेश की प्रकृति ; धारा 24 आदेश के प्रवर्तन ; धारा 25 वसूली ; धारा 26 'प्रक्रिया' के बारे में हैं ।

भाग 8 दांडिक अवमान के प्रति साधारणतया निर्देश करता है :

धारा 27 कथन करती है कि कोई व्यक्ति दांडिक अवमान के लिए कार्यवाही प्रारंभ कर सकता है; धारा 28 कथन करती है कि किसी कार्यवाही में विवाद्यकों के बारे में पूर्व निर्णय करना मात्र अवमान गठन करने के लिए पर्याप्त नहीं है ।

अनुसूची 1 : भाग 1, (धारा 7, धारा 8) कथन करता है कि कब कोई दांडिक कार्यवाही सक्रिय है । वह कहता है :

"(1) कोई दांडिक कार्यवाही धारा 7 के प्रयोजनों के लिए सक्रिय है :

(क) निम्नलिखित के शीघ्रतम से :

(i) न्यू साउथ वेल्स या किसी राज्य या राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी,

(ii) किसी आरोप का लगाया जाना,

(iii) न्यायालय हाजिरी सूचना का जारी किया जाना और सुसंगत न्यायालय की रजिस्ट्री में फाइल किया जाना,

(iv) किसी पदेन अभ्यारोपण का फाइल किया जाना,

(v) आस्ट्रेलिया से भिन्न किसी देश में किसी आदेश का करना कि किसी व्यक्ति को किसी अपराध के विचारण के लिए न्यू साउथ वेल्स में प्रत्यर्पित किया जाए,

(ख) जब तक कि-

(i) कार्यवाहियों में जूरी का अधिमत न दिया जाए, या

(ii) किसी आदेश को न किया जाए या कोई अन्य घटना न हो जाए, जिसका यह प्रभाव हो कि आरोपित अपराध या अपराधों का किसी जूरी के समक्ष या बिल्कुल नहीं विचारण किया जाएगा ।

(2) यदि जूरी के समक्ष किसी पुनर्विचारण का आदेश दिया जाता है, तो दांडिक कार्यवाही उस समय से जब से पुनर्विचारण के लिए आदेश किया जाता है, सक्रिय है ।

अनुसूची-1 का भाग 2 साक्षियों और भावी साक्षियों पर प्रभाव के खतरे के प्रयोजनों के लिए 'सक्रिय' शब्द के अर्थ के बारे में है ।

धारा 4 कथन करती है कि :

(1) कोई दांडिक कार्यवाही धारा 8 के प्रयोजनों के लिए सक्रिय है ।

(क) निम्नलिखित के शीघ्रतम से :

(i) न्यू साउथ वेल्स या किसी राज्य या राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी,

(ii) किसी आरोप का लगाया जाना,

(iii) न्यायालय हाजिरी सूचना का जारी किया जाना और सुसंगत न्यायालय की रजिस्ट्री में फाइल किया जाना,

(iv) किसी पदेन अभ्यारोपण का फाइल किया जाना,

(v) आस्ट्रेलिया से भिन्न किसी देश में किसी आदेश का करना कि किसी व्यक्ति को किसी अपराध के विचारण के लिए न्यू साउथ वेल्स में प्रत्यर्पित किया जाए,

(ख) निम्नलिखित के पश्चात् तक :

(i) किसी अपील कार्यवाही की समाप्ति ;

(ii) अपील या और अपील के लिए अनुज्ञात किसी अवधि का अवसान ।

(2) यदि किसी दांडिक कार्यवाही में पुनः विचारण का आदेश दिया जाता है तो,दांडिक कार्यवाही उस समय से, जब से पुनः विचारण के लिए आदेश किया जाता है, सक्रिय है तब तक जब तक कि-

(क) किसी अपील कार्यवाही की समाप्ति न हो या

(ख) अपील या और अपील के लिए, जो भी पश्चातवर्ती हो, अनुज्ञात किसी अवधि का अवसान न हो ।

रिपोर्ट का परिशिष्ट दमन आदेश और अभिलेखों की परीक्षा के निवारण पर विधेयक के प्रति निर्देश करता है ।

हमने यू.के. एक्ट, 1981 के विभिन्न उपबंधों और न्यू साउथ वेल्स विधि सुधार रिपोर्ट (2003) से संलग्न विधेयक के प्रति, जो दमन आदेशों और 'प्रतिकूल प्रभाव के सारवान खतरे' के बारे में है, निर्देश किया है ।

<u>स्थगन आदेशों के लिए प्रस्तावों का विचारण : 'प्रतिकूल प्रभाव का सारवान खतरा':</u>

यहि हम न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 के संशोधन के लिए प्रस्तावित विधेयक में एक उपबंध का प्रस्ताव करते हैं तो यह केवल पर्याप्त नहीं है कि धारा 13 और उसके स्पष्टीकरण का, जैसा कि पहले कहा गया है, संशोधन किया जाए किंतु यह

आवश्यक है कि 'स्थगन आदेश' पारित करने के लिए न्यायालयों को समर्थ करने वाले उपबंध का प्रारंभ किया जाए, जैसा कि यू.के. एक्ट, 1981 की धारा 4(2) में है कि उपधारा 'प्रतिकूल प्रभाव का सारवान खतरा' शब्दों का प्रयोग करती है । प्रश्न यह है कि क्या हमें प्रस्तावित उपबंध में समरूप शब्दों का उपयोग करना चाहिए ।

यू.के. में न्यायालयों द्वारा न्याय के प्रशासन के लिए प्रतिकूल प्रभाव का 'सारवान खतरा' शब्दों का निर्वचन समस्याएं उत्पन्न करता है :

यू.के. अधिनियम की धारा 4(2) कथन करती है कि किसी न्यायालय द्वारा निर्बन्धन आदेश पारित किया जा सकता है यदि न्याय के प्रशासन पर प्रतिकूल प्रभाव का 'सारवान खतरा' हो । ये शब्द यू.के. के कई मामलों में निर्वचन के लिए सामने आए हैं । यह देखा जाएगा कि न्यू साउथ वेल्स (आस्ट्रेलिया) का प्रारूप विधेयक (2003) भी धारा 7, धारा 8 और धारा 9 में 'सारवान खतरा' शब्द का उपयोग करके यू.के. के उपबंध का अनुसरण करता है ।

यह आवश्यक है कि न्यायालयों द्वारा और अन्य टीका टिप्पणी करने वालों द्वारा प्रकट किए गए विचारों के प्रति निम्नलिखित के बारे में निर्देश किया जाए-

(क) 'प्रतिकूल प्रभाव का सारवान खतरा' शब्दों का अर्थ, और

(ख) ये शब्द क्यों दोषपूर्ण हैं ।

(क) धारा 4(2) में 'प्रतिकूल प्रभाव का सारवान खतरा' का अर्थ :

अटर्नी जनरल वर्सस न्यूज ग्रुप न्यूजपेपर्स : 1986(2) ए.आई.आई.ई.आर.833 में सर जॉन डोनल्डसन एम.आर. ने (पृष्ठ 841) पर यथा निम्नलिखित कहा है -

"वहां सारवान खतरा होना है जहां प्रश्नगत कार्यवाहियों में न्याय के क्रम में अड़चन डाली जाएगी या प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा । यह दोहरा परीक्षण है । प्रथम, वहां कुछ खतरा होगा जिससे प्रश्नगत कार्यवाही पर संपूर्ण रूप से प्रभाव पड़ेगा । द्वितीय, कुछ संभावना होगी जिस पर यदि प्रभाव पड़ेगा तो वह प्रभाव गंभीर होगा ।

परीक्षण के दोनों अंग एक दूसरे को आच्छादित कर सकते हैं, किंतु वे पूर्णतया पृथक् भी हो सकते हैं । मैं प्रतिवादी के लिए परामर्शी के प्रस्तुतीकरण को स्वीकार करता हूं कि खतरे की अर्हता के रूप में सारवान का अर्थ 'भारी' नहीं है किंतु उसके बजाय इसका अर्थ 'सारवान नहीं' या 'न्यूनतम नहीं' है । परीक्षण का 'खतरा' भाग प्रकाशन के विस्तार के संदर्भ में सामान्यता महत्वपूर्ण होगा ।"

पुनः एक्स-पार्टे दि टेलीग्राफ ग्रुप एंड अदर्स 2001 (1) डब्ल्यु.एल.आर. 1983(सी.ए.)(लौंगमोर एल.जे. डगलस ब्राउन एंड ईडी जेजे) में धारा 4(2) के प्रति निर्देश करने के पश्चात्, अपील न्यायालय ने कहा कि यह विनिश्चय करने के क्रम में कि यदि दमन आदेश यूरोपियन कन्वेंशन के अनुच्छेद 6 और अनुच्छेद 10 के संदर्भ में 'आवश्यक' है तो तीन कांटों वाला परीक्षण अवश्य पूरा किया जाना चाहिए :

"प्रथम प्रश्न यह था कि क्या रिपोर्ट करना सुसंगत कार्यवाहियों में न्याय के प्रशासन के लिए प्रतिकूल प्रभाव के गैर-असारवान खतरे को उत्पन्न करेगा और यदि नहीं तो वह मामले का अंत होगा ; यह कि, यदि देखा जाता है कि ऐसा खतरा विद्यमान है तो दूसरा प्रश्न यह है कि क्या धारा 4(2) का आदेश खतरे को पृथक् करेगा, और यदि नहीं तो ऐसी पाबंदी अधिरोपित करने की कोई आवश्यकता नहीं हो सकती और पुनः वह मामले का अंत होगा ; यह कि, तथापि, चाहे कोई आदेश उद्देश्य की प्राप्ति कर ले, न्यायालय को फिर भी यह विचार करना चाहिए कि क्या खतरे को कुछ कम निर्बन्धनात्मक साधनों द्वारा संतोषप्रद रूप से दूर किया जा सकता है, चूंकि अन्यथा यह नहीं कहा जा सकता कि इसे अधिक साहसी कदम उठाना 'आवश्यक' है ; और यह कि तृतीयतः चाहे वहां प्रतिकूल प्रभाव के दृष्टिगोचर खतरे को दूर करने का कोई अन्य मार्ग नहीं था फिर भी इसने इसका आवश्यक रूप से अनुसरण नहीं किया कि कोई आदेश किया जाना है और न्यायालय को फिर भी पूछना पड़ सकता है कि क्या अनुध्यात खतरे की डिग्री को दोनों बुराइयों में से कमतर होने के अर्थ में सहनीय माना जाना चाहिए और यह कि

उस स्तर पर मूल्यवान निर्णय कन्वेंशन के अनुच्छेद 6 और अनुच्छेद 10 द्वारा प्रतिवेदित प्रतियोगी हितों के बीच पूर्विकता के बारे में करना पड़ सकता है ।"

उस मामले में, मामले को रिपोर्ट करने के स्थगन का आदेश वैसे ही घनिष्ट रूप से संबंधित तथ्यों से उद्‌भूत होने वाले दूसरे विचारण के समाप्त न हो जाने तक, पारित किया गया था और अपील न्यायालय द्वारा मान्य ठहराया गया था । आदेश पुलिस अधिकारी क्रिस्टोफर शेरवुड के विरुद्ध हत्या के किसी आरोप के विचारण के दौरान किया गया था । उसी न्यायाधीश को 'लोक कार्यालय में दुराचरण' की उसी घटना के संबंध में आपराधिक रूप से आरोपित तीन अधिक ज्येष्ठ पुलिस अधिकारियों के, जो सभी निलंबन के अधीन थे, दूसरे विचारण में पीठासीन होना था ।

अपील न्यायालय सहमत था कि सभी तीनों परीक्षण पूरे हो गए थे । उसने इस अभिवाक् को नामंजूर कर दिया कि किसी जूरी पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ सकता है यदि न्यायाधीश द्वारा उचित रूप से निदेशित किया गया हो या विलंब के कारण जो दूसरे विचारण के पूर्व हो सकता है । उसने कहा कि ऊंचे दिखाई पड़ने वाले मामलों में, प्रभाव सारवान होता है । उसने अटर्नी जनरल वर्सस एसोसिएटेड न्यूजपेपर्स: (31 अक्तूबर, 1977, रिपोर्ट नहीं किया गया) में विद्वान न्यायाधीश कैनेडी के संप्रेक्षण के प्रति निर्देश किया, जो निम्नलिखित रूप में थे :

> "बहुत से विभिन्न रूपों में सूचना प्राप्त करने वाले भावी जूरी सदस्यों के साथ, ऊंचे दिखाई पड़ने वाले मामलों का विचारण किया जाना असंभव होगा यदि जूरी सदस्यों पर उस सूचना के बारे में, जो उन्होंने प्राप्त की हो, उदासीनता के बारे में विश्वास नहीं किया जा सकता है, किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि उनसे किसी भी सूचना के बारे में, जब कभी और किसी भी प्रकार प्राप्त की गई हो, उदासीन रहने की आशा की जा सकती है, अन्यथा उनसे ऐसी किसी सुसंगत सूचना को रोकने की कोई बात नहीं होगी चाहे वह अंतर्वस्तु या प्रस्तुतीकरण में कैसा भी प्रतिकूल प्रभाव

डालने वाली हो, अतः अवमान की विधि के लिए, जिसकी हमसे प्रवर्तित की जाने की अपेक्षा की जाती है, आवश्यकता है ।"

एक मामला था जहां ईवनिंग स्टैन्डर्ड ने आई.आर.ए. कार्यकर्ता के, जिसका वर्तमान समय में जेल तोड़ने के लिए अन्य बातों के साथ, विचारण किया जा रहा था, पिछले रिकार्डों के बारे में भावी हानिकर सूचना को प्रकट किया । यह अभिनिर्धारित किया गया था कि एक ओर का चित्रण प्रेस द्वारा प्रस्तुत किए जाने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती । अपील न्यायालय ने वहां निम्नलिखित रूप में मत व्यक्त किया :

"अतः न्यायालय को किसी भी ऐसे अनुक्रम को मंजूरी देने के बारे में बहुत सावधान होने की आवश्यकता है, जो जनता को प्रस्तुत किए जा रहे आपराधिक विचारण के बारे में सूचना का ऐसे पथ-प्रदर्शन करेगा, कि वह उसको, जो वास्तव में हो रहा है, विकृत कर दे बजाय इसके कि वह मात्र उसका संक्षेपीकरण हो । न्यायालय के लिए किसी मामले में, जहां आंशिक निर्बन्धन वास्तविक विकल्प के रूप में अनुध्यात किया जा रहा हो, यह तौलना महत्वपूर्ण कारक हो सकता है ।"

(ख) यू.के. एक्ट की धारा 4(2) की भाषा में दोष :

नार्थ साउथ वेल्स विधि सुधार आयोग के "प्रकाशन द्वारा अवमान" संबंधी विचार विमर्श पत्र 43- 2000 (अध्याय 10) (पैरा 10.80) में, यह कहा गया था :

"यू.के. के उपबंध के विस्तार का अभिप्राय है कि वह धारा विवादात्मक साबित हुई है, जिसने यह आलोचना आकर्षित की है कि उसे असंगत रूप से, नियमितरूप से और अनावश्यक रूप से लागू किया गया है ।"

(मुख्य न्यायमूर्ति मिलर्स को, कन्टेम्प्ट आफ कोर्ट (न्यायालय का अवमान) (1989), पृष्ठ 332-338 पर और ए.आर्लेज और टी. स्मिथ को ' कन्टेम्प्ट (अवमान)' (1999) (पृष्ठ 4130459 पर) उद्धृत करते हुए) ।

अंतिम रिपोर्ट, अध्याय 10 में, आयोग ने पैरा 10.18 में यथा निम्नलिखित (धारा 4 (2) के बारे में) मत व्यक्त किया :

"10.18 'प्रतिकूल प्रभाव का सारवान खतरा' सूत्र की कठिनाइयों में से एक यह है कि जब कि खतरा बड़ा होना चाहिए, प्रतिकूल प्रभाव को ऐसा होने की आवश्यकता नहीं है (एंन लोव एंड बी. सफरिंन, दि ला आफ कन्टेम्प्ट, 1996, पृष्ठ 286) । ई.डी. और स्मिथ यह राय व्यक्त करते हैं कि यह विचित्र मालूम होता है कि कोई न्यायालय प्रकाशन को निर्बन्धित करने वाला आदेश वहां अधिरोपित करे जहां अनुध्यात प्रतिकूल प्रभाव गंभीर से कम है (ए.आर्लिज एंड टी.स्मिथ आन कन्टेम्प्ट आफ कोर्ट (1999) (पैरा 7.133) । 'सारवान खतरे' का अर्थ भी प्रथमतः प्रतीत होने वाले से अधिक भ्रामक है । एक अंग्रेजी मामले में, उदाहरणार्थ, मास्टर आफ रोल्स ने परामर्शी के 'सारवान' के निर्वचन को 'भारी' का अभिप्राय न देने वाले के रूप में के बजाय 'सारवान नहीं' या 'न्यूनतम नहीं' के रूप में स्वीकार किया (अटर्नी जनरल वर्सस इंग्लिश 1983(1) ए.सी. 160 (142) (एच.एल.) । इंग्लैंड में सामने आई दूसरी समस्या, जहां 'गंभीर प्रतिकूल प्रभाव का सारवान खतरा' न्यायाधीन सिद्धांत के अधीन दायित्व का अवधारण करने के लिए नियोजित किया जाता है (अर्थात् धारा 2 में), यह है कि खतरे की डिग्री का अवधारण करने के लिए न्यायाधीश से अपेक्षा की जा सकती है कि वह प्रकाशन से प्रभावित होने की विशिष्ट जूरी सदस्य की संभावना का (सी. वाल्कर एट अल (1992) 55 माडर्न ला रिव्यु 647-648), प्रकाशन से संभावित रूप से परिणामी न्याय पर प्रतिकूल प्रभाव का उद्देश्यपूर्ण निर्धारण करने के विरुद्ध, निर्धारण करे ।"

बोरी एंड लोव ने अवमान विधि, (1996) (तीसरा संस्करण) (देखिए पृष्ठ 287) एम.एस.एन. पेंशन ट्रस्टीज लिमिटेड वर्सस बैंक आफ अमेरिका नेशनल ट्रस्ट एंड सेविंग्स एसोसिएशन : 1995(2) आल.ई.आर. 355 में न्यायाधीश लिंड से के संप्रेक्षण के प्रति निर्देश किया है । धारा 2 (कठोर दायित्व), जो 'सारवान खतरा' शब्दों का और 'गंभीर रूप से

अड़चन डाली गई या प्रतिकूल प्रभाव डाला गया' शब्दों का और धारा 4(2) जो, स्थगन आदेश मंजूर करने के प्रयोजन के लिए 'प्रतिकूल प्रभाव का सारवान खतरा' शब्दों का उपयोग करती है, दोनों धाराओं पर विचार करते हुए न्यायाधीश लिंड से ने कहा कि 'सारवान' का अभिप्राय 'असारवान नहीं' था और यह धारा 4(2) के प्रवर्तन के लिए प्रवेश द्वार को उससे नीचा करेगा जो विधान मंडल का आशय था । तथापि, उसने सीरियस फ्रॉड आफिस के, जो स्थगन आदेश के लिए आवेदन कर रहा था, पक्ष में माना कि सारवान से 'असारवान नहीं' या 'न्यूनतम नहीं' अभिप्रेत था ।

अतः यह विचारणार्थ है कि क्या हमें स्थगन आदेशों को समर्थ बनाने वाले प्रस्तावित उपबंध में 'प्रतिकूल प्रभाव का सारवान खतरा' शब्दों का उपयोग करना चाहिए ।

न्यायालय की प्रकाशन के स्थगन का आदेश देने की शक्ति अंतर्निहित नहीं है किंतु उसे कानून द्वारा प्रदत्त किया जाना है :

एक प्रश्न उद्भूत हुआ है कि क्या न्यायालय के पास प्रकाशन के बारे में 'स्थगन आदेश' पारित करने के लिए अंतर्निहित शक्ति है ? आर. वर्सस क्लीमेंट (1821) 4 बी. एंड ए.एल.डी. 218 में यह मत व्यक्त किया गया है कि न्यायालय के पास अंतर्निहित शक्ति है किंतु इस दृष्टिकोण को हाल नें प्रीवी काउंसिल द्वारा इंडिपेंडेंट पब्लिसिंग कंपनी लिमिटेड वर्सेस अटोर्नी जनरल ऑफ ट्रिनिडाड एंड टोबैगो : (2004) यूकेपीसी 26 (देखिए एचटीटीपी://डब्ल्युडब्ल्युडब्ल्यु.बेली.आर्ग) में स्वीकार नहीं किया गया है और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि कोई अंतर्निहित शक्ति नहीं है तथा प्रकाशन को स्थगित करने की शक्ति अवश्य कानून द्वारा प्रदत्त की जानी चाहिए ।

इसी प्रकार न्यू साउथ वेल्स विधि सुधार आयोग ने, अपने विचार विमर्श पत्र 43 (2000) (अध्याय 10) (देखिए पैरा 10.22 से 10.27 तक) में अभिनिर्धारित किया है कि प्रकाशन को निर्बन्धित करने के लिए अंतर्निहित शक्ति के बारे में क्लीमेंट का प्राधिकार जॉन फेयरफैक्स लिमिटेड वर्सस पुलिस ट्रिब्यूनल : (एन.एस.डब्लु) 1986 (5) एनएसडब्ल्युएलआर 465 जैसे मामलों में आस्ट्रेलिया में हिल गया है । इस संबंध में इस पर ध्यान दिया जा

सकता है कि बोरी एंड लोव अपनी 'अवमान की विधि' (देखिए पृष्ठ 279) में कहते हैं कि यह मुद्दा 1981 के यू.के. एक्ट की धारा 4(2) की दृष्टि से शैक्षणिक हो गया है ।

शब्दों की आलोचना की दृष्टि से, हम नए उपबंध में 'प्रतिकूल प्रभाव का सारवान खतरा' शब्दों का उपयोग नहीं करना चाहते हैं, जिनके द्वारा शक्ति प्रकाशन के स्थगन के लिए आदेश पारित करने के लिए न्यायालय में निहित होनी चाहिए ।

इस बारे में कि कौन से शब्द स्थगन आदेश के प्रयोजन के लिए हमारे कानून में प्रयोग किए जाने हैं, हम अध्याय 10 में चर्चा करेंगे ।

अध्याय 9

मीडिया प्रकाशनों के किन प्रवर्गों को संदिग्ध या अभियुक्त के लिए प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले के रूप में मान्यता दी जाती है ?

हम मीडिया के लिए और जनता के लिए सूचना के विषय के रूप में यह आवश्यक समझते हैं कि मीडिया में प्रकाशनों के उन प्रवर्गों के प्रति, जिनको साधारणतया किसी संदिग्ध या अभियुक्त के लिए प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले के रूप में मान्यता दी जाती है, निर्देश करे ।

बोरी एंड लोव की 'अवमान की विधि', तीसरा संस्करण (1996) (अध्याय 5) (पृष्ठ 132 से 179 तक) में इस विषय पर इस बारे में पूर्ण विचार विमर्श किया गया है कि कौन से प्रकाशन आपराधिक कार्यवाहियों पर परिणामस्वरूप प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले के रूप में स्वीकार किए जाते हैं । हम वहां उद्धृत मामलों के प्रति निर्देश करेंगे । (मीडिया द्वारा विचारण, पांचवां वर्ष, यूएसएलएसएस, इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय, 2006 पर सुश्री विस्मय राव का लेख) ।

(1) अभियुक्त के चरित्र या पूर्व निष्कर्षों से संबंधित प्रकाशन :

पिगॉट सी.बी. ने आर. वर्सस ओ डोघर्टी (1848) 5 कोक्स सी.सी. 348 (354) (आयरलैंड) में कहा कि -

> "किसी ऐसे व्यक्ति के, जो ..... आरोप के अधीन है, विरोध की भावनाओं को उद्दीप्त करने के लिए परिगणित संप्रेक्षण न्यायालय के अवमान के बराबर होते हैं ।"

बोरी एंड लोव कहते हैं (पृष्ठ 132) :

> "ऐसे प्रकाशन जो अभियुक्त के विरुद्ध 'विरोध की भावनाओं' को उद्दीप्त करने की ओर प्रवृत्त होते हैं, अवमान के बराबर होते हैं क्योंकि वे न्यायालय को पक्षपात पूर्ण होने के लिए उत्प्रेरित करते हैं । ऐसी 'विरोधी भावनाएं' अभियुक्त के चरित्र पर प्रतिकूल रूप से टिप्पण करके अत्यधिक आसानी से उत्प्रेरित की जा सकती हैं ।

ये जूरी पर भी प्रभाव डाल सकती हैं । ऐसे प्रकाशन घोर अवमान के बराबर होते हैं क्योंकि वे अभियुक्त को बहुत नुकसान पहुचाने वाले ऐसे तथ्य जूरी के ध्यान में, जो वे जानने के हकदार नहीं हैं और जो अभियुक्त के विरुद्ध पक्षपात का सृजन करने की ओर प्रवृत्त होते हैं ।"

पिछले आपराधिक रिकार्ड के प्रकाशन को गंभीर अवमान के रूप में मान्यता दी जाती है जो 1981 के यू.के. एक्ट की धारा 4(2) में और साथ ही कॉमन लॉ के अधीन प्रयुक्त 'गंभीर प्रतिकूल प्रभाव डालने का सारवान खतरा' परीक्षण की तुष्टि करता है । उपर्युक्त लेखक ए जी(एन.एल.डब्ल्यू) वर्सस बिलीसी : (1980)(2) एनएसडब्ल्यु एलआर 143 (150) में मोफिट पी को उद्धृत करते हैं कि वहां

"प्रसिद्ध और गहरा विश्वास है कि इसकी अधिक संभावना है कि किसी अभियुक्त व्यक्ति ने आरोपित अपराध किया है यदि उसका आपराधिक रिकार्ड है और इस बात की कम संभावना है यदि उसका कोई रिकार्ड नहीं है" ।

गिसबोर्न हेरल्ड कंपनी लिमिटेड वर्सस सालिसिटर जनरल 1995 (3) एनएलएलआर 563 (569) (सी.ए.) भी देखिए ।

पिछले आपराधिक रिकार्ड द्वारा कारित प्रतिकूल प्रभाव का निवारण करने की आवश्यकता 'आपराधिक विधि के अत्यधिक गहरे और उत्साह से रक्षित सिद्धांतों' में से एक है (मैक्सवेल वर्सस डी.पी.पी. (1935) ए.सी. 309 (317) में विस्काउंट सांके के अनुसार) और ऐसे साक्ष्य को अग्राह्य के रूप में माना जाना होगा । किंतु फिर भी वह न्याय निर्णायक पर अवचेतन रूप से, जैसा कि इस रिपोर्ट के अध्याय 3 में कहा गया है, प्रभाव डाल सकता है ।

आर वर्सस पार्क : (1903) (2) के.वी. 432 के प्रसिद्ध मामले में, अभियुक्त को गिरफ्तार किए जाने और कूट रचना के आरोप पर प्रतिप्रेषित किए जाने के पश्चात्, स्टार ने लेख प्रकाशित किए कि उसने कूट रचना के लिए पूर्वतर दोषसिद्धि स्वीकार की थी और यह कि उसे कारावास का दंडादेश दिया गया था । न्यायाधीश विल्स ने अभिनिर्धारित किया

कि वह निःसंदेह यह प्रभाव प्रस्तुत करने के लिए परिगणित किया गया था कि उन आरोपों से पृथक् जो उस समय जांच के अधीन थे, वह बुरे और कामुक चरित्र का आदमी था ।"

पुनः आर वर्सस डेविस : (1906) 2 के.बी. 32 में एक स्त्री अपने बच्चे का परित्याग करने के आरोप पर गिरफ्तार की गई थी और एक समाचार पत्र में यह प्रकाशन कि वह एक से अधिक अवसरों पर कपट की सिद्धदोषी थी, अत्यधिक प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला माना गया था ।

सालिसिटर जनरल वर्सस हेंनरी एंड न्यूज ग्रुप न्यूजपेपर्स लिमिटेड : 1990 सी.ओ.डी. 307 में कोई व्यक्ति डकैती के लिए गिरफ्तार किया गया था और एक लेख प्रकाशित हुआ था कि वह बलातसंग का पूर्व सिद्धदोषी था और इसे यू.के. एक्ट, 1981 की धारा 2 में कठोर नियम के अधीन भी ' गंभीर प्रतिकूल प्रभाव का सारवान खतरा' सृजित करने वाले के रूप में अवमान अभिनिर्धारित किया गया था और समाचार पत्र पर पन्द्रह हजार पाउंड का जुर्माना किया गया था ।

टाइम्स (31 मार्च, 1981) में रिपोर्ट किए गए दूसरे मामले में, गार्जियन समाचार पत्र पर, कपट के लंबे विचारण के मध्य के दौरान यह प्रकट करने के लिए कि दो अपराधी अभिरक्षा से बचने में पहले अंतर्वलित किए गए थे, पांच हजार पाउंड का जुर्माना किया गया था ।

बोरी एंड लोव ने (पृष्ठ 135-136 पर) ए.जी.आफ न्यू साउथ वेल्स वर्सस ट्रुथ एंड स्पोर्ट्समैन लिमिटेड : (1957) 75 डब्ल्यु एन. (एन.एस.डब्ल्यू) 70 के प्रति निर्देश किया जहां एक समाचार पत्र को बिना अनुज्ञप्ति के पिस्तौल रखने के लिए आरोपित किसी व्यक्ति को 'कुख्यात अपराधी' के रूप में वर्णन करते हुए एक लेख प्रकाशित करने के लिए अवमान में अभिनिर्धारित किया गया था ।

आर. वर्सस रीगल प्रेस प्राइवेट लिमिटेड : (1972) वी.आर. 67 (विक्टोरिया) में, समाचार पत्र को यह प्रकाशित करने के लिए अवमान में अभिनिर्धारित किया गया था कि

अपराधी, जो गिरफ्तार किया गया था और शराब के प्रभाव में गाड़ी चलाने के लिए आरोपित किया गया था, पहले हत्या का सिद्धदोषी था । प्रकाशक का तर्क कि जनता पहले से इसके बारे में जानती थी, इस आधार पर नामंजूर कर दिया गया था कि जनता इसे भूल गई होगी और प्रकाशन इसे वापस उनकी स्मृति में ले आएगा ।

सालिसिटर जनरल वर्सस वेलिग्टन न्यूजपेपर्स लिमिटेड : (1995) एनजेडएलआर 45 में, गिसबोर्न हेरल्ड और दो अन्य समाचार पत्रों को जॉन गिल्स की पूर्व दोषसिद्धि के बारे में किसी पुलिस कान्स्टेबल की प्रयासित हत्या के आरोप पर गिसबोर्न में उसकी गिरफ्तारी के समय रिपोर्ट करने के लिए अवमान के लिए सिद्धदोषी ठहराया गया था । यह तर्क कि प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला कथन साधारण विचार विमर्श में आकस्मिक रूप से किया गया था हिंच वर्सस ए.जी (विक्टोरिया) : (1987) 164 सी.एल.आर. 15 में और ए. जी. (एन.एस.डब्ल्यू) वर्सस विल्सी : 1980 (2) एन.एस.डब्ल्यु एल.आर. 143 में नामंजूर कर दिया गया था ।

कनाडा में, री मर्फी एंड सदर्न प्रेस लिमिटेड (1972) 30 डी.एल.आर. (3डी) 355 में यह कहा गया था कि ' अत्यधिक असाधारण परिस्थितियों में के सिवाय प्रेस को किसी अपराधी व्यक्ति, अभिकथित सहयोगी षडयंत्रकारी या साक्षी के आपराधिक रिकार्ड को प्रकाशित करने से विरत रहना चाहिए । पूर्व दोषसिद्धि की रिपोर्ट री ए.जी. आफ एलबर्ट एंड इंटरवेस्ट पब्लिकेसन्स लिमिटेड : (1991) 73 डी.एल.आर. (4) 83 में अवमान अभिनिर्धारित की गई थी ।'

आर. वर्सस थॉम्सन न्यूज पेपर्स लिमिटेड, एकपक्षीय रूप से ए.जी. 1968 (1) ए एल एल 268 में रेस रिलेशन्स एक्ट, 1965 के अधीन विचारण की प्रतीक्षा करने वाले व्यक्ति को, प्रेस प्रकाशन के अनुसार, बुरे चरित्र का कहा गया था क्योंकि वह वैश्यागृह चलाता था और संपत्ति में अनुचित साधनों से धन कमाने में लगा हुआ था । यह टिप्पण अवमान के बराबर अभिनिर्धारित किया गया था ।

ए.जी. वर्सस टाइम्स न्यूजपेपर्स लिमिटेड, (1983) टाइम्स 12 फरवरी में कई समाचार पत्रों पर, जिन्होंने माइकल फैगन से, जिसने बकिंग्घम पैलेस में क्वीन के शयन कक्ष में अतिक्रमण किया था, संबंधित आरोपों के गुणागुण पर टिप्पण प्रकाशित किए थे, जुर्माना किया गया था ।

(2) संस्वीकृतियों का प्रकाशन :

यद्यपि, पुलिस को दी गई कोई संस्वीकृति विधि में अग्राह्य है, फिर भी विचारण के पूर्व संस्वीकृतियों के प्रकाशन न्यायालय की निष्पक्षता पर उच्च रूप से प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले और प्रभाव डालने वाले माने जाते हैं और गंभीर अवमान के बराबर होते हैं । आर. वर्सस क्लार्क, एक्स पी क्रिपिन : (1910) 103 एल.टी. 636 में, क्रिपिन को कनाडा में गिरफ्तार किया गया था किंतु औपचारिक रूप से आरोप नहीं लगाए गए थे, किंतु इंग्लैड में डेली क्रोनिकल में एक प्रकाशन हुआ जैसा उसके विदेशी संवाददाता द्वारा केबिल किया गया था, कि "क्रिपिन ने साक्षियों की उपस्थिति में स्वीकार किया कि उसने अपनी पत्नी को मारा था किंतु हत्या के कार्य से इन्कार किया ।" प्रकाशन को अवमान माना गया था । न्यायाधीश डार्लिंग ने मत व्यक्त किया कि "प्रतिक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव डालने के लिए परिकल्पित किसी चीज की कल्पना नहीं की जा सकती" ।

ऊपर निर्दिष्ट फगन के मामले में भी, एक प्रकाशन को, जिसमें यह था कि फगन ने शराब चोरी करने की संस्वीकृति की थी, गंभीर प्रतिकूल प्रभाव डालने का 'बहुत' सारवान खतरा सृजित करने वाला अभिनिर्धारित किया गया था ।

कैप्टन अल्फ्रड ड्रेयस, फ्रैन्च सेना में एक यहूदी अधिकारी, को 1894 में पेरिस में जर्मन दूतावास को सैनिक रहस्य देने के लिए अभिकथित रूप से महा-राजद्रोह से आरोपित किया गया था । मान्यताविरोधी मीडिया ने उसकी अनकही संस्वीकृतियों, आधारहीन आरोपों और भ्रामक घटनाओं को बहुत ज्यादा प्रचार दिया । वह अभियोजित किया गया था और डेविल्स आइलैंड पर कारावास से दंडादिष्ट किया गया था । उसके कारावास के बारह वर्ष पश्चात् सत्य का पता लगा था और उसे माफी दी गई थी और पुनः सेना में ग्रहण

किया गया था (कु. विस्मय राव, पांचवां वर्ष, विश्वविद्यालय विधि और विधिक अध्ययन स्कूल, इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय द्वारा मीडिया, चौथा स्तंभ ।

न्यू साउथ वेल्स में, ए.जी. (एनएसडब्ल्यू) वर्सस डीन (1990) 20 एन.एस.डब्ल्यू एल.आर. 650 में किसी पुलिस अधिकारी को अवमान का दोषी पाया गया था जब किसी हत्या संबंधी जांच में किसी संदिग्ध की गिरफ्तारी के अनुसरण में पुलिस मीडिया सम्मेलन के दौरान, उसने एक पत्रकार के प्रश्न का एक कथन के साथ उत्तर दिया जिसमें सुझाव दिया कि उस व्यक्ति ने पुलिस के सामने संस्वीकार किया था । उसे अवमान में अभिनिर्धारित किया गया था किंतु जुर्माने के बिना छोड़ दिया गया ।

(3) प्रकाशन जो मामले के गुणागुण पर टिप्पण करते हैं या प्रतिबिंब डालते हैं :

यह वास्तव में 'समाचार पत्र द्वारा विचारण' का चरम रूप है क्योंकि समाचार पत्र कार्यवाही, प्रतिपरीक्षा करने के अधिकार आदि के रक्षोपायों के बिना न्यायालय के कृत्य पर अनाधिकार कब्जा कर लेता है । ऐसे प्रकाशन तथ्यों का पूर्व निर्णय करते हैं और न्यायालय, साक्षियों तथा दूसरों को प्रभावित करते हैं ।

तथापि, यह अनुक्षेय है कि गिरफ्तारी का तथ्य और आरोप की ठीक प्रकृति जैसा कि आर. वर्सस पायन 1896 (1) क्यू.बी. 577 में था, प्रकाशित की जाए और वह अवमान नहीं है ।

व्यक्ति की दोषिता या निर्दोषिता के प्राख्यान गंभीर अवमान माने जाते हैं । आर. वर्सस बोलम, एक पक्षीय रूप से हैग : (1949) 93 सोल जो 220 में, हेग को 'पिशाच' के रूप में वर्णित किया गया था और यह कि उसने अन्य हत्याओं को भी किया था और प्रकाशन ने पीड़ितों के नाम दिए । लॉर्ड गोडार्ड ने संपादक को कारागार में भेज दिया और डेली मिरर के स्वत्वधारियों पर "अंग्रेजी पत्रकारिता के लिए एक कलंक" कहते हुए जुर्माना किया । आर. वर्सस ओधम्स प्रेस लिमिटेड एकपक्षीय रूप से ए.जी. : 1957 (1) क्यू बी. 73 में समाचार पत्र ने उस व्यक्ति को, जो वैश्यालय चलाने के लिए अभियुक्त था वर्णित किया कि वह ' व्यभिचार फैलाने और वैश्याओं का प्रबंध करने' के 'कलुषित व्यापार में'

था । उसे अवमान अभिनिर्धारित किया गया था । ए.जी. वर्सस न्यूज ग्रुप न्यूजपेपर्स लिमिटेड: 1988 (2) ए एल एल 906 में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि दोषिता का प्रकाशन अवमान के बराबर था ।

'वक्रोक्ति' द्वारा दोषिता का प्राख्यान भी थौर्प वर्सस वाग : (1979) सी.ए. ट्रांसक्रिप्ट 282, आर वर्सस मैक कैन : (1990) 92 क्रिमिनल अपील आरईपी 239, ए.जी वर्सस इग्लिस :1983 (1) ए.सी. 116 में अवमान होना अभिनिर्धारित किया गया था ।

शमीम वर्सस जीनत : 1971 क्रिमिनल एल 5 1586 (इला.) में, हत्या के लिए दोषसिद्धि के विरुद्ध किसी अपील के लंबित होते हुए किसी पत्रिका में एक लेख मामले के गुणागुण पर मत व्यक्त करते हुए, प्रकाशित किया गया था । उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि वह न्यायालय के अवमान के बराबर था क्योंकि वह न्याय के अनुक्रम में बाधा है ।

(4) फोटो :

फोटोग्राफों के प्रकाशन से, जो अभियुक्त की पहचान की प्रक्रिया में बाधा डालते हैं, भिन्न इस बात की भी संभावना है कि ऐसे प्रकाशन दोषिता को अतिरिक्त जोर से रंग दें । ए. जी. वर्सस न्यूज ग्रुप न्यूजपेपर्स लिमिटेड : (1984) 6 क्रिमिनल अपील आर.ई.पी. (एस) 418 में सन न्यूजपेपर ने, विचारण के दूसरे दिन एक व्यक्ति का फोटो प्रकाशित किया, जिसे अपने बच्चे को गंभीर चोट कारित करने के लिए आरोपित किया गया था और बच्चे की मां भी अपराधों की अभियुक्त थी । शीर्षक था " बच्चे को डैड (पिता) द्वारा अंधा किया गया था" । यह अभिकथन क्राउन के अभिकथनों का भाग नहीं था । विद्वान न्यायाधीश स्टीफन ब्राउन ने कहा कि " फोटो की सटी हुई स्थिति निःसंदेह यह खतरा उत्पन्न करती थी कि अपराधी, जिसने दोषी न होने का अभिवाक किया था, को उनके द्वारा बहुत अप्रिय स्थिति में रखा जाए जिन्होंने इस विशेष फोटो और शीर्ष को देखा" । सन ने अवमान स्वीकार किया और उस पर पांच हजार पाउंड का जुर्माना किया गया ।

न्यूजीलैंड में (इस रिपोर्ट का अध्याय 5 देखिए), अटर्नी जनरल वर्सस टोंक्स : (1934) एनजेडएलआर 141 (एफसी), यह अभिनिर्धारित किया गया था कि विचारण के पूर्व किसी अभियुक्त के फोटो का प्रकाशन, यदि पहचान के मुद्दा होने की संभावना थी तो अवमान के बराबर होगा । न्यायाधीश ब्लेयर ने मत व्यक्त किया-

> "यदि किसी अभियुक्त व्यक्ति का फोटो उसकी गिरफ्तारी के तुरंत पश्चात् किसी समाचार पत्र में प्रकाशित किया जाता है, तो ऐसे साक्षी, जिन्होंने उसे नहीं देखा है, अचेतन रूप से यह विश्वास कर सकते हैं कि अभियुक्त, जैसी फोटो खींची गई है, वह व्यक्ति है जिसे उन्होंने देखा है । यह तथ्य कि अभियुक्त व्यक्ति की पहचान करने का दावा करने वाले साक्षी ने, उसकी पहचान करने के पूर्व उसकी फोटो देखी है, प्रतिरक्षा को साक्षी की पहचान के ठोस होने पर प्रश्न करने के लिए बहाना देता है" ।

हमने अटर्नी जनरल (एन.एस.डब्ल्यु) वर्सस टाइम इन्क मैगजीनेको लिमिटेड : (अनरेप. सी ए 40331 / 94 तारीख 15 सितंबर, 1994) में आस्ट्रेलिया से एनएसडब्ल्यू मामले के प्रति निर्देश किया है (देखिए अध्याय 4) जहां साप्ताहिक पत्रिका 'हू' ने इवान मिलट की फोटो, जो क्रमिक हत्या मामले में अभियुक्त था उसकी गिरफ्तारी के पश्चात् मुखपृष्ठ पर प्रकाशित की थी और मुख्य न्यायाधीश ग्लीसन ने मत व्यक्त किया कि यह गंभीर रूप से साक्षियों द्वारा पहचान में, जब उस व्यक्ति को दूसरों के साथ पंक्ति में खड़ा किया जाता है, बाधा डालेगा । अभियुक्त के लिए यह जोर से बहस की जा सकती है कि-

> "पंक्ति में पहचान निरर्थक थी या कम से कम बहुत सीमित मूल्य की थी । यह बहस की जा सकती है कि, क्योंकि जिसे कभी-कभी विस्थापन प्रभाव के रूप में वर्णित किया जाता है, इस बात का बड़ा खतरा था कि पंक्तिबद्ध किए जाने के समय, साक्षी उस व्यक्ति की पहचान का कार्य नहीं कर रहा था, जो साक्षी द्वारा किसी पूर्व अवसर पर देखा गया था किंतु उस व्यक्ति को पहचान रहा था, जो फोटो में था" ।

आर. वर्सस टेलर : (1994) 98 क्रिमिनल अपील रिपोर्टेड 361 में, दो बहिनों के विरुद्ध, उनमें से एक के पूर्व प्रेमी की पत्नी की हत्या के लिए, हत्या का आरोप था । कुछ समाचार पत्रों ने मृतक के विवाह पर बनाए गए वीडियो की एक प्रति अभिप्राप्त कर ली और चर्च से निकलने वाले अतिथियों के अनुक्रम में एक फ्रेम को चिन्हित कर दिया जिसमें पहले दुल्हन को और तत्पश्चात् दूल्हे को चुंबन किया जा रहा था जिससे कि यह प्रतीत हो कि अभियुक्त द्वारा दूल्हे, उसके पूर्व प्रेमी, के गाल पर दिया गया 'पैक' मुहं से मुंह पर किया गया चुंबन था । इस फोटो के साथ शीर्ष पंक्ति थी 'चुंबन धोखा देता है' और 'हल्का आलिंगन - एलिसन से कुछ फीट पर प्रेमी चुंबन को शेयर करते हैं' । प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले प्रकाशन के कारण अपील न्यायालय ने दोषसिद्धियों को बातिल कर दिया और पुनः विचारण का आदेश नहीं दिया ।

(5) पुलिस क्रियाकलाप :

हमने ए. जी.(एनएसडब्ल्यू) वर्सस डीन : (1990) एनएसडब्ल्यू एलआर 650 (संस्वीकृतियों का प्रकाशन शीर्ष के नीचे) के प्रति पहले ही निर्देश किया है कि कैसे गिरफ्तारी के पश्चात् किसी अभिकथित संस्वीकृति का पुलिस द्वारा प्रकट करना अवमान होना अभिनिर्धारित किया गया था ।

बोरी एंड लोव (1996, तीसरा संस्करण पृष्ठ 151) पुलिस के उन क्रियाकलापों के प्रति निर्देश करते हैं, जो अवमान के बराबर हो सकते हैं । वे कहते हैं " किसी अपराध को घेरने वाले पुलिस क्रियाकलाप को, जैसे विभिन्न तलाशियां, संदिग्धों से प्रश्न करना और कोई गिरफ्तारी जो की जा सकती है, के प्रति निर्देशों को प्रकाशित करना पूर्णतया उचित हो सकता है किंतु यह नहीं सोचा जाना चाहिए कि ऐसा करने में स्वतः उन्मुक्तता है ....." ।

आस्ट्रेलियन मामला, आर. वर्सस पेसिनी (1956) वी.एल.आर. 544 में, उदाहरण के लिए, एक रेडियो स्टेशन को अवमान करने का दोषी ठहराया गया था क्योंकि उसने एक जासूस के साथ, जो अभियुक्त की गिरफ्तारी के साथ संबंधित रहा था, साक्षात्कार को, ऐसे

समय पर जब अभियुक्त विचारण की प्रतीक्षा कर रहा था, प्रसारित किया था, जिसमें यह सूचित किया गया था कि जासूस का अन्वेषण अभियुक्त की गिरफ्तारी के साथ सफल निष्कर्ष में पूर्ण हुआ था, जिसकी विवक्षा यह थी कि अभियुक्त दोषी था ।

ए.जी. (एन.एस.डब्ल्यू) वर्सस टी.सी.एन. चैनल 9 प्राइवेट लिमिटेड : (1990) 20 एनएलडब्ल्यू एलआर 368 में दो दूरस्थ अवस्थितियों में दो स्त्रियों और एक बच्चे के हत्या के मामले में, अभियुक्त ने पुलिस को अभ्यर्पण किया था, उसका साक्षात्कार किया गया, उसने संस्वीकार किया और तत्पश्चात् उसे पुलिस द्वारा अपराधों के स्थानों पर ले जाया गया था, जहां उसने उनको विभिन्न महत्वपूर्ण मामले संदर्षित किए । इन परिदर्शनों पर पुलिस और संदिग्ध के साथ टेलीविजन कर्मी दल सहित एक पत्रकार था । एक समय पर टेलीविजन कर्मी दल ने संदिग्ध और पुलिस के साथ उसी वायुयान में अपराध के स्थान तक यात्रा की । पुलिस ने एक प्रेस सम्मेलन किया जिसमें यह उद्घोषित किया गया कि संदिग्ध ने संस्वीकार कर लिया था । ये सारे मामले टेलीविजन समाचार में प्रसारित किए गए थे । न्यू साउथ वेल्स के अपील न्यायालय ने कहा कि इस प्रकाशन की प्रवृत्ति विचारणों में (जो अंततोगत्वा नहीं हुआ क्योंकि अभियुक्त ने अभिरक्षा में आत्महत्या कर ली) अभियुक्त के लिए प्रतिकूल प्रभाव का खतरा सृजित करने की थी और वह अभियुक्त के विरुद्ध बहुत मजबूत साक्ष्य के कारण कम नहीं हुआ था । अपील न्यायालय ने मत व्यक्त किया (पृष्ठ 382) :

> "यह विचार कि न्यायालय के अवमान से संबंधित नियम किसी प्रकार उस व्यक्ति के मामले में कम कड़ाई से लागू होते हैं, जिसके विरुद्ध बहुत मजबूत मामला है, उन नियमों की प्रकृति और प्रयोजन के बारे में मूल रूप से भ्रम प्रतिबिंबित करेगा" ।

अवमान, प्रचार को प्रोत्साहित करने में पुलिस की भूमिका के कारण भी, कम नहीं हुआ था । अपील न्यायालय ने कहा (पृष्ठ 381) :

" ..... साधारण नियम के रूप में हम विधि के इस पहलू में दर्शित सिद्धांतों के लिए और न्याय के उचित प्रशासन के लिए, यह पूर्ण रूप से अप्रिय मानते हैं कि पुलिस ने मीडिया के लाभ के लिए प्रश्न किए जाने के क्रम में या अपराध के परिदृश्य पर जाते हुए व्यक्तियों को दर्शित किया ।"

बोरी एंड लोव कनाडा से आर. वर्सस कैरोचिया : (1973) 43 डी.एल.आर. (3डी) 427 (क्यूबैक सी.ए.) के प्रति निर्देश करते हैं जहां कोई पुलिस अधिकारी उन आरोपों के लिए, जो किसी विशेष कंपनी के विरुद्ध लगाए गए थे, प्रेस विज्ञप्ति जारी करने के लिए और यह कहने के लिए कि और आरोप लगने वाले थे और साधारणतया अभियुक्त कंपनी को संगठित अपराध के साथ जोड़ने के लिए अवधान का दोषी अभिनिर्धारित किया गया था ।

लेखक कहते हैं कि ये मामले पुलिस के लिए, उनकी प्रेस विज्ञप्तियों के और उस पहुंच के, जो वे मीडिया को देते हैं, संबंध में, 'प्रशंसात्मक चेतावनी' हैं । इंग्लैंड में ऐसे अवसर आए हैं जिनमें पुलिस समझदारी की सीमा से आगे बढ़ गई है (यद्यपि कोई अभियोजन कभी नहीं किया गया है), इसका अत्यधिक बदनाम उदाहरण वह 'सुख भ्रांतिपूर्ण' प्रेस सम्मेलन है, जो पुलिस द्वारा पीटर सटक्लीफी की गिरफ्तारी (दूसरे आरोपों पर), के पश्चात् किया गया था, जो बाद में तथाकथित 'योर्क शायर रिपर' होने के लिए आरोपित किया गया था । सेटक्लिफ की गिरफ्तारी के साथ व्यवहार पर बहुत अधिक चिंता व्यक्त की गई किंतु यह प्रेस थी बजाय स्वयं पुलिस के, जिसने आलोचना का दंस झेला, जो निःसंदेह मामले के बारे में प्रेस के पश्चातवर्ती व्यवहार के कारण हुआ । लेखक कहते हैं कि " उस उत्तरदायित्व का ध्यान रखे बिना जो पुलिस पर होता है, मीडिया का स्वयं का उत्तरदायित्व है कि पुलिस प्रेस विज्ञप्ति पर भरोसा उनके विरुद्ध लाए गए अवमान के आरोपों के लिए, प्रतिरक्षा नहीं होगा, यदि उनका प्रकाशन प्रतिकूल प्रभाव के वास्तविक खतरे का सृजन करने वाला अभिनिर्धारित किया जाता है" (जैसा ए.जी. (एन.एस.डब्ल्यू)

वर्सस टीसीएन चैनल 9 न्यूज प्राइवेट लिमिटेड (1990) 20 एनएसडब्ल्यु एलआर 368 में है) ।

लेखक इन तथ्यों को महत्व देने के लिए एक स्काटिश मामले के प्रति निर्देश करते हैं जो प्रेस को पुलिस संक्रियाओं का वर्णन करने में ध्यान में रखने होते हैं (एच.एम.एडवोकेट वर्सस जॉर्ज आउटरम एंड कंपनी लिमिटेड : 1980 एसएलटी (नोट्स) 13 (न्यायाधिपति का उच्चन्यायालय) में, ग्लासबो हेरल्ड पर दो हजार पौंड का जुर्माना किया गया था और आगे गिरफ्तारी तथा पुलिस संक्रियाओं का ब्यौरेवार विवरण था यह शीर्ष पंक्ति प्रकाशित करने के लिए कि "स्कॉटलैंड में सशस्त्र पुलिस कार्यवाही ने बड़े औषध घेरे को तोड़ा" । इस लेख को अवमान अभिनिर्धारित करने में समाचार पत्र के बारे में कहा गया था कि उसने अत्यधिक अपराध में फसाने वाले स्वरूप का अभिकथित साक्ष्य प्रकाशित किया है जो यह सुझाव देता है कि अभियुक्त के दोष की उपधारणा की जा सकती है ।

यह अवमान नहीं हो सकता था यदि प्रकाशन पुलिस के कहने से जनता को यह चेतावनी देने के लिए आशयित है कि कोई बदनाम अपराधी बच कर भाग गया था और जनता को सावधान होना था या उसके लिए तलाश करनी थी (देखिए बोरी एंड लोव का पृष्ठ 170) ।

(6) निर्दोषिता का अभ्यारोपण :

लेखक उन मामलों के प्रति निर्देश करते हैं जो यह दर्शित करते हैं कि अभियुक्त की निर्दोषिता का सीधा अभ्यारोपण अवमान समझा जा सकता है जैसा आर वर्सस कैस्ट्रो आनसिलॉज एंड वेलीज मामले में (1873) एल.आर. 9 क्यू बी. 219 में किया गया था जहां संपत्ति के उत्तराधिकार के लिए दावेदार शपथ भंग और कूटरचना के आरोपों पर विचारण की प्रतीक्षा कर रहा था और एक सार्वजनिक बैठक की गई थी और दो संसद् सदस्यों ने, जो उपस्थित थे, अभिकथन किया कि अभियुक्त दोषी नहीं था किंतु किसी षडयंत्र का

पीड़ित था । दोनों संसद् सदस्य मुख्य न्यायाधीश कॉकबर्न द्वारा अवमान के दोषी अभिनिर्धारित किए गए थे ।

यह हमें न्यायाधीशों की आलोचना के संदर्भ में अंबार्ड वर्सस ए.जी. आफ त्रिनिदाद एंड टोबागो (1936) ए.सी. 322 में लॉर्ड एटकिन के प्रसिद्ध कथन की याद दिलाता है :

> "आलोचना का मार्ग लोकमार्ग है : गलत सिरों को वहां गलती करने की अनुज्ञा दी जाती है ; परंतु यह कि जनता के सदस्य न्याय के प्रशासन में भाग लेने वालों पर अनुचित उद्देश्यों का अभ्यारोपण करने से अनुपस्थित रहते हैं और सद्भाविक रूप से आलोचना के अधिकार का प्रयोग कर रहे होते हैं और न्याय के प्रशासन के लिए दुर्भावना से या बाधा डालने का प्रयास करने के लिए कार्य नहीं कर रहे होते हैं, वे उन्मुक्त हैं । न्याय चारदीवारी का गुण नहीं है, उसे संवीक्षा चाहे वे किसी साधारण मनुष्य के आदरपूर्ण, चाहे मुंहफट हों, टिप्पणों के लिए कष्ट उठाने की अनुज्ञा दी जानी चाहिए ।"

सही आलोचना और अवमान के बीच सीमारेखा पतली हो सकती है । आलोचना का मार्ग लोकमार्ग है और गलत व्यक्तियों को वहां गलती करने की अनुमति होती है किंतु फिर भी अवमान का खतरा लिया जा सकता है ।

आस्ट्रेलिया में डी.पी.पी. वर्सस रैन : 1987 (7) एनएसडब्ल्यु एलआर 616 (एनएसडब्ल्यु सीए) में, न्यू साउथ वेल्स के प्रधानमंत्री को किसी पत्रकार के प्रश्न के उत्तर में यह कहने के लिए अवमान का दोषी ठहराया गया था कि वह उच्च न्यायालय के उस न्यायाधीश की निर्दोषिता में विश्वास करता था, जिसे न्याय के अनुक्रम के विकृत रूप से संबंधित आरोपों के लिए सिद्धदोषी ठहराया गया था जब उस न्यायाधीश ने कहा कि पुनर्विचारण का परिणाम भिन्न अधिमत में हो सकता है । प्रधानमंत्री और समाचारपत्र को अवमान का दोषी अभिनिर्धारित किया गया था ।

(7) प्रतिकूल प्रभाव के वातावरण का सृजन करना :

बोरी एंड लोव (पिछला पृष्ठ 154) निम्नलिखित मामलों के प्रति निर्देश करते हैं ।

आर वर्सस हचीसन, एक पक्षीय रूप से मैकमोहन : 1936 (2) ए एल एल ई आर 1514 में एक समाचार फिल्म को, जिसके अनुशीर्षक में उस आरोप का संकेत था, जो वास्तविक आरोप से अधिक गंभीर था, अवमान अभिनिर्धारित किया गया था । जब एक व्यक्ति को गिरफ्तार किया गया था और अग्नायुध के अवैध कब्जे से, जब उसका पता लगा था, आरोपित किया गया था जबकि राजा एक जलूस में लंदन में जा रहा था, समाचार फिल्म ने व्यक्ति की गिरफ्तारी को 'राजा की हत्या का प्रयास' शीर्षक के अधीन दर्शित किया था । इसे अवमान अभिनिर्धारित किया गया था । न्यायाधीश स्विफ्ट ने स्वत्वधारियों को चेतावनी दी कि :

> " ..... यदि वे सनसनीखेज फिल्म बनाना चाहते हैं तो उन्हें उनका वर्णन करने में सावधानी बरतनी चाहिए, ऐसी भाषा का उपयोग नहीं करना चाहिए, जो न्याय के करने में कोई गड़बड़ करती हो" ।

दूसरे मामले में, जहां प्रकाशन ने अभियुक्त के कार्य को ' हत्या के रूप में' वर्णित किया था, जब कि जूरी के समक्ष मुद्दा यह था कि क्या प्रश्नगत कार किसी कारण से जल गई थी या क्या वह आशयित रूप से अभियुक्त द्वारा अधिभोगी को मारने के लिए जलाई गई थी, यह अभिनिर्धारित किया गया कि इससे जूरी के भ्रमित होने की संभावना थी । वास्तव में हत्या का मामला ऐसे दूसरे व्यक्ति से संबंधित था जिसकी मृत्यु हो गई थी जब कार जलाई गई थी । आर. वर्सस डेली हेरल्ड एक पक्षीय रूप से राउज (1931) 75 सोल जो 119 ।

अमेरिका में शैपर्ड वर्सस मैक्सवैल : (1965) 381 यू.एस. 532 में डा. शैपर्ड का अपनी पत्नी की हत्या के लिए विचारण किया गया था . मृत्यु समीक्षा संबंधी जांच पड़ताल एक स्कूल में सीधे प्रसारण के साथ की गई थी । पश्चातवर्ती न्यायालय कक्ष में तीन से

चार बेंचे मीडिया के लिए समनुदेशित की गई थीं, प्रेस की एक मेज न्यायालय की बार के भीतर बनाई गई थी, जो अभियुक्त के इतने समीप थी कि वह बिना सुनाई दिए अपने वकील से भी परामर्श नहीं कर सकता था । जूरी सदस्यों के बारे में लगातार प्रचार किया जा रहा था । अमेरिका के उच्चतम न्यायालय ने उस प्रतिकूल प्रभाव से भयभीत, जो अभियुक्त ने सहा था, दोषसिद्धि को विखंडित कर दिया ।

एम.पी. लोहिया बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य ए.आई.आर. 2005 एस.सी. 790 में, जिसे हमने पहले निर्दिष्ट किया है उच्चतम न्यायालय ने गंभीर रूप से एक समाचार पत्र में प्रकाशित एक तरफा लेख की निंदा की थी, जिसमें किसी अभिकथित दहेज मृत्यु में पत्नी के माता-पिता द्वारा किए गए अभिकथन प्रकाशित किए गए थे किंतु अभियुक्त द्वारा फाइल किया गया अभिलेख कि उसकी पत्नी पागल थी प्रकाशित नहीं किया गया था, । ऐसे प्रकाशन न्यायाधीश के समक्ष दबाव वाले वातावरण का सृजन करते हैं ।

(8) साक्षियों की आलोचना :

वही लेखक निम्नलिखित मामलों के प्रति निर्देश करते हैं (पिछला पृष्ठ 155) :

साक्षियों को भयोपरत किया जा सकता है यदि वे लोक आलोचना का विषय हो जाते हैं । आर वर्सस बौटम ले, (1908) टाइम्स, 19 दिसंबर में होरेसियो बौटम ले, एक संसद् सदस्य, पर धोखा देने के लिए षडयंत्र करने के लिए विचारण किया जा रहा था । वह एक समाचार पत्र का संपादक था । अभियुक्त के समाचार पत्र ने प्रतिपरीक्षा को 'निर्दयी प्रतिपरीक्षा' के रूप में वर्णित किया और अभियोजन साक्षी पर टिप्पणियां की । यह अभिनिर्धारित किया गया था कि लेख ने ऋजु सुनवाई में बाधा डाली क्योंकि इसने अभियोजन के लिए साक्षियों को 'लोक निंदा' में रखा, साक्षी को "उनकी निर्दयी प्रतिपरीक्षा की ..... में कराहते हुए एक अप्रसन्न व्यक्ति" के रूप में वर्णित किया गया था । ऐसे टिप्पण अभियोजन मामले पर प्रतिकूल प्रभाव डालने की ओर प्रवृत्त होते हैं और भावी साक्षियों को भी भयोपरत करते हैं ।

सामान्य नियम के रूप में, किसी साक्षी पर विरोधी टिप्पण से बचा जाना चाहिए क्योंकि ऐसा टिप्पण न्यायालय में उपस्थित होने के लिए साक्षियों की साधारण अनिच्छा में बढ़ोत्तरी ही करेगा (आर. वर्सस कैस्ट्रो आनसिलोज एंड वेलीज केस (1873) एल आर 9 क्यू बी 219) (आर वर्सस डेली हेरल्ड एक पक्षीय रूप से विशप आफ नार्विच, 1932 (2) आई सी बी. 402) ।

साक्षियों पर विश्वास न करना भी किसी विचारण पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला है । लेबाउचर, एकपक्षीय रूप से कोलंबस कंपनी लिमिटेड (1901) 17 टी एल आर 578 में टुथ में एक लेख प्रकाशित किया गया था जिसने कतिपय साक्षियों पर आक्रमण किया और साक्षी के चरित्र तक पर अविश्वास किया । न्यायाधीश ग्रूस ने कहा :

> "प्रश्नगत संपूर्ण लेख को देखते हुए, वह संदेह नहीं कर सका कि वह यह संकेत करने के लिए परिगणित किया गया था कि कोबैन ऐसा साक्षी नहीं था जिस पर भरोसा किया जा सके, कि उसने उसे ऐसे व्यक्ति के रूप में अभिनिर्धारित किया, जिसके आचरण की निंदा की जानी थी और यह कि वह कोबेन के विरुद्ध किसी जूरी सदस्य के, जिसने उसे पढ़ा हो, मस्तिष्क पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता था ।"

दूसरे मामले में एक प्रकाशन था कि साक्षी को राष्ट्रीय समाचार पत्र द्वारा संदाय किया जा रहा था, वह रकम मामले के अंतिम परिणाम के अनुसार अनिश्चित थी । अवमान अभियोजन पश्चातवर्ती किया गया : देखिए ए.जी. वर्सस न्यू स्टेट्समैन एंड नेशन पब्लिशिंग कंपनी लिमिटेड : 1980 (1) ए एल एल ई आर 644 ।

(9) साक्ष्य का समयपूर्व प्रकाशन :

बोरी एंड लोव (पिछला पृष्ठ 156) कहते हैं कि अपना स्वयं का अन्वेषण संचालित करने वाला और विचारण के पूर्व या दौरान परिणाम प्रकाशित करने वाला कोई समाचार पत्र कदाचित 'समाचार पत्र द्वारा विचारण' का अत्याधिक स्पष्ट उदाहरण है । ऐसे प्रकाशन

न्यायालय द्वारा तथ्यों के अवधारण को छिपाते हैं और अन्यथा 'प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले' हो सकते हैं । इसकी कोई गारंटी नहीं है कि समाचार पत्र द्वारा प्रकाशित तथ्य सत्य हैं, वहां प्रतिपरीक्षा करने का, साक्ष्य को संपोषित करने का कोई अवसर नहीं होता । इसकी कोई गारंटी नहीं होती कि प्रकाशित तथ्य, यदि वह अनुश्रुत के बराबर हों, विचारण में ग्रहण किए जाएंगे । आर. वर्सस इवनिंग स्टैन्डर्ड, एक पक्षीय रूप से डी.पी.पी.(1924) 40 टी.एल आर 833 में, न्यायालय ने पाया कि कतिपय समाचार पत्रों ने 'जानबूझ कर और व्यवस्थित रूप से ऐसे अनुक्रम में प्रवेश किया था जिसे आपराधिक अन्वेषण के रूप में वर्णित किया गया था ।' समाचार पत्र की प्रतिरक्षा यह थी कि उनका तथ्यों का विशदीकरण करने का कर्तव्य था । इस प्रतिरक्षा को मुख्य न्यायाधीश लॉर्ड हेवर्ड द्वारा (पृष्ठ 835 पर निम्नलिखित रूप में अस्वीकार किया गया था :

> "जबकि पुलिस या आपराधिक अन्वेषण विभाग को शान्तिपूर्वक और सारी मौनता तथा आरक्षिती के साथ अपना अन्वेषण करना था, इस बारे में कुछ न कहने के लिए सावधान रहते हुए कि जिससे मामले के विचारण पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े, चाहे अभियोजन की दृष्टि से या ..... प्रतिरक्षा की, यह किसी प्रकार कुछ कारणों से समाचार पत्रों का कर्तव्य हो गया था कि वे शौकिया जासूसों के स्वतंत्र कर्मचारी वर्ग को नियोजित करें, जो साक्ष्य की विधि की अज्ञानता के कारण हितों का, चाहे अभियोजन के या प्रतिरक्षा के, पूर्ण अनादर करेंगे ..... " ।

ऐसे अन्वेषणों के परिणामों का प्रकाशन ऋजु विचारण पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है और इसलिए वह अवमान के बराबर होगा । उस मामले में इवनिंग स्टैन्डर्ड के स्वत्वधारियों पर एक हजार पौंड का और दो अन्य समाचार पत्रों पर, प्रत्येक पर, तीन सौ पौंड का जुर्माना किया गया था ।

तथापि, लेखक इंगित करते हैं (पृष्ठ 157-158) कि आज स्थिति में 'अन्वेषणकारी' पत्रकारिता के साथ परिवर्तन हो गया है । वाटरगेट आदि जैसे मामले, थैलीडोमाइट मामला पत्रकारों का ही कार्य थे ।

किंतु हमारी दृष्टि से, अन्वेषण ग्रहण करने वाली पत्रकारिता अनुज्ञेय है यदि वह दांडिक कार्यवाहियों के 'सक्रिय' हो जाने और किसी व्यक्ति के गिरफ्तार किए जाने के पश्चात् जारी रखी जाती है और यदि निजी अन्वेषण के आधार पर वह व्यक्ति दोषी या निर्दोष के रूप में वर्णित किया जाता है, तो ऐसा प्रकाशन न्यायालयों, साक्षियों और जनता पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है तथा अवमान के बराबर हो सकता है ।

(10) साक्षियों के साथ साक्षात्कारों का प्रकाशन :

बोर्न एंड लोव कहते हैं (पिछला पृष्ठ 158) कि सिद्धांततः किसी साक्ष्य को, जो कि कोई साक्षी बाद में न्यायालय में दे सकता है, प्रकाशित करना अवमान के बराबर हो सकता है । अर्थात् यह कहने को नहीं है कि किसी साक्षी का कोई कथन विचारण के लंबित होते हुए प्रकाशित किया ही नहीं जा सकता है ।

ऐसे साक्षियों के, जिनकी मामले में प्रतिपरीक्षा नहीं की गई है, कथन हमारी राय में मामले का एक तरफा चित्र प्रस्तुत करते हैं ।

यह हो सकता है कि कुछ 'नग्न तथ्य' जनता की उत्सुकता की तुष्टि के लिए, जैसा कि उक्त लेखकों द्वारा कहा गया है, यद्यपि आरोप न्यायालय में लंबित हों, वर्णित किए जाएं, किंतु किसी साक्षी के साथ गहराई से साक्षात्कार समस्याएं उत्पन्न कर सकता है ।

इस निमित्त, कुछ संबंधित पहलू सालमन समिति द्वारा (मुख्य न्यायाधीश सालमन की अध्यक्षता में अवमान विधि, जैसा वह जांच अधिकरणों पर प्रभाव डालती है, संबंधी समिति 1969 सीएमएनडी एलईओ 78, पैरा 31) निर्दिष्ट किए गए थे । समिति ने कहा कि साक्षी को डराया जा सकता है या अनुचित रूप से ऐसा लेखा देने के लिए मार्गदर्शित किया जा सकता है जो सत्य से विपरीत हो या जो एक प्रारंभ अतर्विष्ट करता हो । साक्षी स्वयं, किसी टेलीविजन साक्षात्कार में, तथ्यों के गलत स्मरण द्वारा तनाव के कारण एक दृष्टिकोण को स्वीकार कर सकता है । जब बाद में उन्हें साक्ष्य देना होता है, तो वे उस पर स्थिर रहने के लिए, जो उन्होंने मीडिया के साक्षात्कार में कहा है, बंधा हुआ अनुभव कर सकते हैं

। फिलिमोर समिति ने भी उपर्युक्त दृष्टिकोण को स्वीकार किया और वह साक्षी के टेलीविजन साक्षात्कार के बारे में चिंतित थी, ऐसा लेखकों ने इंगित किया : (देखिए 1974 सीएमएनडी 5794, पैरा 55) । उस समिति ने कहा :

> "टेलीविजन साक्षात्कार नाटकीय प्रभाव के खतरों को बढ़ाते हैं । उहादरण के लिए किसी मामले में अंतर्वलित किसी व्यक्ति से टेलीविजन पर ' कठिन और उलझन भरे प्रश्न' पूछा जाना न्यायालय में किसी प्रतिपरीक्षा का रूप लेना मालूम हो सकता है । यह स्पष्ट रूप से उस साक्ष्य पर, जो वह विचारण में दे सकता है, प्रभाव डालने या उसे विकृत करने के खतरे का सृजन कर सकता है । ऐसा कोई साक्षात्कार 'टेलीविजन द्वारा विचारण' माना जा सकता है ।"

समिति, निःसंदेह, इस बात से सहमत थी कि साक्षात्कार जनता की सूचना के लिए उपयोगी सहायता करता है ।

लेखक कहते हैं कि अवमान के लिए अभियोजन की अनुपस्थिति स्पष्ट कर सकती है कि ऐसे साक्षात्कारों को अवमान नहीं माना गया है । किंतु लेखक कहते हैं कि इसमें खतरे हैं जैसा कि ए.जी. (एनएसडब्ल्यू वर्सस मिरर न्यूज पेपर्स लिमिटेड (1980) (1) एनएसडब्ल्यू एलआर 374 (सीए) में है । किसी मनोरंजन केंद्र में अग्नि दुर्घटना के दौरान सात व्यक्तियों की मृत्यु के बारे में मृत्यु समीक्षक द्वारा जांच की गई थी । एक साक्षी के बारे में, जो पहले ही साक्ष्य दे चुका था यह विस्तृत रूप से रिपोर्ट किया गया था कि उसने, वास्तव में कहा था कि किसी परिचारक ने दो बच्चों को ' भूतगाड़ी' पर आग में जाने की अनुज्ञा दी थी । डेली टेलीग्राफ ने, यह विश्वास करते हुए कि परिचारक साक्ष्य नहीं देगा, उसके द्वारा दिया गया एक ब्यौरेवार लेखा प्रकाशित किया जिसमें उसने पहले साक्षी के अभिकथनों से स्वयं की प्रतिरक्षा करनी चाही । लेख के उस भाग में कहा गया था कि डेली टेलीग्राफ में प्रकाशन इस प्रकार की ध्वनि दे सकता है कि उसने (परिचारक ने), दो बच्चों को मृत्यु के लिए भेजा था । किंतु उसने कहा, कि ऐसा नहीं था । उसे एक बालक के साथ, जो अग्नि में अपने साथियों का अनुसरण करने के लिए कृतसंकल्प था, कुश्ती तक

लड़नी पड़ी थी और यह कि उसे उसको कार से निकालने के लिए बुरा भला कहना पड़ा था । अपील न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि प्रकाशन ने न्याय के अनुक्रम में बाधा डाली थी और वह अवमान था तथा उसने स्वत्वधारियों पर दस हजार आस्ट्रेलियन डालर का जुर्माना किया था ।

लेखक कहते हैं कि विचारण के पश्चात् ' पृष्ठभूमि' सामग्री के प्रकाशन की दृष्टि से साक्षात्कार को संचालित करना साधारणतया विधि सम्मत पद्धति मानी जाती है, किंतु वह अवमान के बराबर होगा यदि यह दर्शित किया जा सके कि वह डराने धमकाने वाली किस्म का रहा है जैसे साक्षियों को साक्ष्य देने से भयोपरत करना ।

चालू विधिक कार्यवाहियों में साक्षियों को उनकी कहानियों के लिए संदाय (यू.के.) प्रेस कंप्लेंट्स कमीशन कोड आफ प्रैक्टिस के खंड 8 के विरुद्ध है । (लेखक ' साक्षियों को संदाय' पर एक ब्यौरेवार विचार विमर्श का उल्लेख करते हैं पृष्ठ 408 से 410) । किंतु लेखक कहते हैं (पृष्ठ 409) कि " ऐसी कोई व्यवस्था अवमान के बराबर हो सकती है क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि वह साक्षी के लिए अपना साक्ष्य 'बनाने' के लिए प्रलोभन का काम करेगा जिससे कि वित्तीय रूप से अधिक लाभदायक परिणाम सुनिश्चित किया जा सके" ।

जरमी थोर्प के विचारण में (लेखक इंगित करते हैं) अभिकथन थे कि संडे टेलीग्राफ, एक प्रमुख साक्षी पीटर वैसिल को भावी साक्षी के रूप में उसके प्रकटीकरणों के लिए फीस का संदाय करने के लिए, जो सूचना के अनुसार दोषी के अधिमत पर अनिश्चित थी, सहमत हुआ था । इसकी प्रेस परिषद् द्वारा निंदा की गई । पूर्व में, समान मुद्दे पर, अटर्नी जनरल ने विधि में परिवर्तन करने के लिए वायदा किया था किंतु संभवतया प्रेस परिषद् द्वारा की गई कार्रवाई के कारण ऐसा कोई परिवर्तन नहीं किया गया था ।

बोरी एंड लोब (पृष्ठ 409-410) कथन करते हैं कि साक्षी की फीस का, जिसकी रकम किसी विशिष्ट अधिमत पर अनिश्चित हो, संदाय करने की पद्धति अवांछनीय है क्योंकि इससे प्रतिकूल प्रभाव का खतरा होने की संभावना है । जैसा हम न्यू स्टेट्समैन

द्वारा प्रकाशित प्रकटीकरणों से जानते हैं (देखिए एजी वर्सस न्यू स्टेट्समैन एंड नेशन पब्लिशिंग कंपनी लिमिटेड : 1980 (1 एएलएल ई आर 644), कि थोर्प विचारण में जूरी सदस्य बैशल के लिए सहमत संदायों द्वारा अत्यधिक प्रभावित थे और किसी भी दशा में ऐसे करार प्रकट रूप से साक्षियों के लिए अपने साक्ष्य में कुछ और जोड़ देने या उसे बनाने के लिए प्रलोभन प्रतीत होते हैं" ।

लॉर्ड चांसलर के कार्यालय की परामर्श-पश्चात् रिपोर्ट में (मार्च, 2003), यह अनुभव किया गया था कि विधान आवश्यक नहीं था और मीडिया इस बात से सहमत था कि स्वतः विनियमन प्रक्रिया विकसित की जा सकती है जिसमें सुनिश्चित सिद्धांत सम्मिलित होने चाहिए । फरवरी, 2003 तक मीडिया द्वारा किए गए प्रस्ताव सरकार द्वारा स्वीकार कर लिए गए थे ।

न्यू साउथ वेल्स विधि आयोग ने अपने विचार विमर्श पत्र 43 (2000) में पैरा 2.45 में ऐसे प्रकाशनों की, जो संदिग्ध या अभियुक्त के लिए प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले हो सकते हैं, लंबी सूची दी है ।

(i) अभियुक्त का कोई फोटो, जहां पहचान मुद्दा होने की संभावना हो, जैसा आपराधिक मामलों में होता है ;

(ii) सुझाव कि अपराधी की पूर्व दोषसिद्धियां हैं, या वह कोई अपराध करने के लिए आरोपित किया गया है और / या पहले दोषमुक्त किया गया है, या अन्य आपराधिक क्रियाकलापों में अंतर्वलित रहा है ;

(iii) सुझाव कि अपराधी ने प्रश्नगत अपराध करने के लिए संस्वीकृति दी है ;

(iv) सुझाव कि अपराधी उस अपराध का दोषी या उसमें अंतर्वलित है जिसके लिए उसे आरोपित किया गया है या यह कि जूरी को अपराधी को दोषसिद्ध या दोषमुक्त करना चाहिए ; और

(v) ऐसे टिप्पण जो अभियुक्त के लिए सहानुभूति या वैमनस्य उत्पन्न करते हैं और / या जो अभियोजन का मान घटाते हैं या जो अभियुक्त या किसी साक्षी के चरित्र या विश्वसनीयता के प्रति अनुग्रहपूर्ण या प्रतिकूल निर्देश करते हैं ।

भारत :

इन्हीं शीर्षकों के अधीन आने वाले भारतीय न्यायालयों के बहुत से विनिश्चय हैं । हम उनके प्रति निर्देश करके इस रिपोर्ट के भार में और वृद्धि नहीं करना चाहते हैं ।

हमारे देश में इस समय अवमान की विधि की जानकारी की कमी दर्शित करती है कि साक्षियों के व्यापक रूप से साक्षात्कार किए जा रहे हैं । यह वर्तमान विधि के अधीन भी अत्यधिक आपत्तिजनक है, यदि वह आरोप पत्र फाइल किए जाने के पश्चात् किया गया हो ।

यह अध्याय, वास्तव में, मीडिया और जनता को शिक्षित करने के लिए आशयित है कि जो भी आजकल मीडिया में हो रहा है वह अत्यधिक आपत्तिपूर्ण हो सकता है । केवल इससे कि इसको न्यायालयों द्वारा सहन किया गया है, इसका अवमान होना समाप्त नहीं हो जाता है ।

अध्याय 10

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 के उपबंधों का संशोधन करने के लिए सिफारिशें

इस अध्याय में हम उस आधार पर जिसकी हमने पूर्ववर्ती अध्यायों में चर्चा की है, न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 के संशोधन के लिए अपनी सिफारिशों के प्रति निर्देश करेंगे ।

(1) प्रारंभ में "प्रकाशन" को, प्रिन्ट में प्रकाशन और इलेक्ट्रानिकी मीडिया, रेडिया प्रसारण और केबिल टेलीविजन और विश्वव्यापी वेब को सम्मिलित करने वाले के रूप में, मूल अधिनियम की धारा 2 के खंड (ग) में स्पष्टीकरण का अंतःस्थापन करके परिभाषित करना आवश्यक है, जिससे कि यथा उपर्युक्त 'प्रकाशन' शब्द के अर्थ का विस्तार किया जा सके । यह प्रस्ताव विधेयक की धारा 3 में अंतर्विष्ट है ।

(2क) हमने प्रारंभिक अध्यायों में इंगित किया है कि अनुच्छेद 19 (1)(क) में गारंटीकृत वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा ऋजु दांडिक विचारण के लिए अपेक्षित दांडिक न्याय की सम्यक् प्रक्रिया के बीच न्याय के प्रशासन के भागरूप में, न्यायोचित संतुलन का सृजन करने के लिए यह आवश्यक है ।

यद्यपि अनुच्छेद 19(2) न्याय के प्रशासन के प्रयोजनों के लिए युक्तियुक्त निर्बन्धनों के अधिरोपण के प्रति निर्देश नहीं करता है, किंतु अनुच्छेद 19(2) में यह निर्देश कि न्यायालयों के अवमान के प्रयोजन के लिए निर्बन्धन अधिरोपित किए जा सकते हैं, उपदर्शित करता है कि न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 (धारा 2, 3) न्याय के प्रशासन के संरक्षण और न्याय के सम्यक् अनुक्रम का ध्यान रखता है ।

हमारी सिफारिश स्वाभाविक रूप से इसके लिए आशयित होनी चाहिए कि धारा 3 के उपबंधों को, विशेष रूप से, धारा 3 के स्पष्टीकरण को ए. के. गोपालन बनाम नूरदीन : 1969 (2) एससीसी 734 में उच्चतम न्यायालय के अनुरूप लाया जाए, जिसमें, वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रति निर्देश करने के पश्चात् उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित

किया कि किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी के पश्चात् किए गए प्रकाशन आपराधिक अवमान हो सकते हैं यदि ऐसे प्रकाशन किसी दांडिक न्यायालय में बाद में किसी विचारण पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं । जैसा कि स्पष्टीकरण इस समय है, 'किसी दांडिक कार्यवाही का लंबित होना' को खंड (ख) में किसी दांडिक न्यायालय द्वारा किसी आरोप पत्र या चालान के फाइल किए जाने से या समन अथवा वारंट के जारी किए जाने से प्रारंभ होने वाले के रूप में परिभाषित किया गया है । उक्त मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि गिरफ्तारी के पश्चात् और आरोप पत्र के फाइल किए जाने के पूर्व किया गया प्रकाशन भी प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला हो सकता है । यदि ऐसा है तो वह गारंटी अनुच्छेद 21 के अधीन ' सम्यक् प्रक्रिया' मे सांकेतिक होनी चाहिए, जैसा कि मेनका गांधी के मामले में स्पष्ट किया गया है और उस सीमा तक, यह अनुज्ञेय है कि गिरफ्तारी के पश्चात्, चाहे ऐसी गिरफ्तारी आरोप पत्र या चालान के फाइल किए जाने के पूर्व की गई हो, मीडिया द्वारा किए गए प्रकाशनों को विनियमित किया जाए ।

हमने देखा है कि यू.के. और कई देशों में यदि कोई गिरफ्तारी की गई होती है तो दांडिक कार्यवाही को " सक्रिय" के रूप में माना जाता है । यह हाल में स्काटलैंड न्यायालय द्वारा विनिश्चित किए गए सिद्धांत को स्थान देने के लिए है (देखिए अध्याय 6) कि गिरफ्तार किया गया कोई व्यक्ति तुरंत न्यायालय के संरक्षण के भीतर आ जाता है क्योंकि उसे गिरफ्तारी के चौबीस घंटों के भीतर किसी न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाना होता है । " गिरफ्तारी" को प्रारंभिक बिंदु के रूप में लेते हुए, प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले प्रकाशनों पर कोई निर्बन्धन युक्तियुक्त होगा यदि मेनका गांधी के मामले ए.आई.आर. 1978 एस.सी. 597 के पश्चात्, उन्हें अनुच्छेद 21 के अधीन सम्यक् प्रक्रिया अपेक्षा को पूरा करना हो क्योंकि वह निर्णय अपेक्षा करता है कि स्वतंत्रता का संरक्षण करने वाली प्रक्रिया ऋजु न्यायोचित और युक्तियुक्त होनी चाहिए तथा मनमानी या अनुच्छेद 21 की अतिक्रामक नहीं होनी चाहिए ।

अतः, हमारी दृष्टि से धारा 3(1), (2) और स्पष्टीकरण खंडों (क) और (ख) में विभिन्न स्थानों पर प्रयुक्त 'लंबित' शब्द को अवश्य ' सक्रिय' शब्द द्वारा प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए क्योंकि 'लंबित' शब्द यह आशय देता है कि कोई आपराधिक मामला वास्तव में लंबित होना चाहिए । यू.के. एक्ट, 1981 में और न्यू साउथ वेल्स विधि आयोग की रिपोर्ट, 2003 से उपाबद्ध विधेयक में प्रयुक्त ' सक्रिय' शब्द हमारी राय में अधिक उचित है और उक्त अधिनियम तथा विधेयक में, कोई दांडिक कार्यवाही गिरफ्तारी की तारीख से ' सक्रिय' होने के रूप में परिभाषित की गई है ।

अतः हम सिफारिश करते हैं कि धारा 3(1), (2) और स्पष्टीकरणमें, विभिन्न स्थानों पर प्रयुक्त ' लंबित' शब्द को ' सक्रिय' शब्द द्वारा अवश्य प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए ।

(ख) आगे 'सक्रिय' शब्द की पुनरीक्षित परिभाषा न केवल धारा 3 के प्रयोजनों के लिए किंतु संपूर्ण अधिनियम के प्रयोजनों के लिए अवश्य लागू होनी चाहिए । वस्तुतः 'लंबित' शब्द का धारा 3 के , सिवाय अधिनियम की किसी अन्य धारा में उपयोग नहीं किया गया है । कुछ नए उपबंध जिनका हम प्रस्ताव कर रहे हैं, ' सक्रिय' शब्द का उपयोग करते हैं और इसलिए ' सक्रिय' शब्द की परिभाषा "अधिनियम के सभी उपबंधों" को, न कि केवल धारा 3 को अवश्य लागू होनी चाहिए ।

ये परिवर्तन विधेयक की धारा 4 में प्रस्तावित हैं ।

(3) जहां तक धारा 3 का भंग है, जैसा प्रस्तावित है, जब कोई प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला प्रकाशन गिरफ्तारी के पश्चात् या कोई आरोप पत्र फाइल किए जाने के पश्चात् या समन अथवा वारंट जारी किए जाने के पश्चात् किया जाता है तो इस समय, यदि कोई अधीनस्थ न्यायालयों का आपराधिक अवमान हो तो उन न्यायालयों को अवमान के लिए दंड देने की कोई शक्ति नहीं है किंतु वे केवल धारा 15(2) के अधीन उच्च न्यायालय को निर्देश कर सकते हैं । यह उपबंध अच्छा है सिवाय इसके कि धारा 3(2) और स्पष्टीकरण (या विद्यमान धारा 3(2) और स्पष्टीकरण भी) के उपबंधों को आहत करने वाले

प्रकाशनों द्वारा अवमान के विशेष मामले में, प्रक्रिया जटिल और अधिक समय लेने वाली है । प्रकाशन का परिणाम अधिक नुकसान में हो सकता है यदि अवमान शक्ति का प्रयोग उच्च न्यायालय द्वारा, उच्चतम न्यायालय को निर्देश के माध्यम से, धारा 3(2) के अतिक्रमणों के प्रयोजनों के लिए किया जाना है ।

हमारा विचार है कि न्यायालय को धारा 2(ग) के उपखंड (ii) और उपखंड (iii) के अधीन प्रकाशन द्वारा आपराधिक अवमान के लिए दंड देने में समर्थ बनाने के प्रयोजन के लिए पृथक् धारा (धारा 10क) को अंतःस्थापित किया जाना होगा जिससे कि स्वप्रेरणा से या किसी व्यक्ति के - जैसे अभियुक्त या संदिग्ध या प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले प्रकाशन से प्रभावित अन्य व्यक्तियों - के आवेदन पर धारा 15(1) के अधीन कथित रीति में उच्च न्यायालय में सीधे कार्यवाही की जा सके । हम धारा 2 के खंड (1) के प्रति यहां निर्देश कर रहे हैं और उपखंड (ii) और उपखंड (iii) तथा खंड (ग) को, जो प्रकाशनों के बारे में हैं, निर्बन्धित कर रहे हैं । हम यहां धारा 2(ग) के खंड (i) से संबंधित नहीं हैं, जिसके लिए महाधिवक्ता द्वारा निर्देश या प्रस्ताव पर धारा 15(2) प्रक्रिया लागू होती रहेगी ।

आगे एक बार जब हम धारा 2(ग) के खंड (ii) और खंड (iii) के प्रति निर्देश करते हैं, तो इसमें प्रकाशन के बारे में वे सभी आपराधिक अवमान आ जाएंगे जो उपखंड (ii) और उपखंड (iii) के अंतर्गत आते हैं, जिन्हें अधिनियम की विभिन्न धाराओं द्वारा संरक्षण नहीं दिया गया है । इसके अतिरिक्त हमने धारा 15(1) में विनिर्दिष्ट रूप में महाधिवक्ता की सहमति के लिए उपबंध किया है ।

(4) अगला प्रश्न यह है कि यू.के. एक्ट की धारा 4(2) या न्यू साउथ वेल्स रिपोर्ट (2003) से संलग्न विधेयक की धारा 7, धारा 8, धारा 9 से मिलती जुलती किसी चीज के लिए उपबंध किया जाए । प्रथम हम इन उपबंधों के प्रति निर्देश करेंगे ।

(क) यू.के. एक्ट, 1981 की धारा 4(2) न्यायालय को ऐसे आपराधिक मामलों की, जो सक्रिय हैं, रिपोर्टों के प्रकाशन को स्थगित करते हुए आदेश पारित करने के लिए अनुज्ञात करती है, यदि ऐसा प्रकाशन ऐसी कार्यवाही या किसी

आसन्न कार्यवाही के लिए "प्रतिकूल प्रभाव का सारवान खतरा" सृजित करता हो । धारा 4(2) सिविल और साथ ही दांडिक कार्यवाहियों को, जो 'सक्रिय' हैं, लागू है । हमारी सिफारिशें यहां सक्रिय दांडिक कार्यवाहियों पर प्रभाव डालने वाले प्रकाशनों तक ही सीमित है ।

(ख) हम उस उपबंध से प्रसन्न नहीं हैं जो ऐसी न्यायालय कार्यवाहियों की, जो सक्रिय हैं 'रिपोर्ट करना' स्थगित करता है जैसा यू.के.एक्ट की धारा 4(2) में अंतर्विष्ट है । हम वास्तव में उन प्रकाशनों से संबंधित हैं, जो ऋजु विचारण पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं ।

(ग) न्यू साउथ वेल्स बिल की धारा 7, धारा 8, धारा 9 प्रकाशनों को अवमान के बराबर मानती हैं यदि वे प्रतिकूल प्रभाव डालने का सारवान खतरा सृजित करते हैं । वे स्थगन आदेशों से संबंधित नहीं हैं । बिल न्यू साउथ वेल्स विधि आयोग (2003) की उस रिपोर्ट के उपाबंध-क में है । किंतु उस बिल के परिशिष्ट-ख में न्यायालय अभिलेखों या रिपोर्टों तक पहुंच को विनियमित करने के लिए न्यायालय को शक्ति देने वाला दूसरा प्रारूप विधेयक अंतर्विष्ट है और उसमें 'दमन आदेश' पारित करने के लिए उपबंध अंतर्विष्ट है, किंतु वहां यथा प्रस्थापित धाराएं प्रकाशनों द्वारा प्रतिकूल प्रभाव के सारवान खतरे के प्रति निर्देश नहीं करती हैं ।

(घ) हमारी दृष्टि से प्रथमतः हमारे द्वारा प्रस्तावित की जाने वाली धारा को किसी सक्रिय दांडिक कार्यवाही से और न कि केवल मामले के बारे में रिपोर्ट करने से, जैसा कि यू.के. एक्ट की धारा 4(2) में है, संबंधित किसी मामले के प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले प्रकाशन के बारे में स्थगन आदेशों को पारित करने के लिए न्यायालय में शक्तियां अवश्य निहित होनी चाहिए ।

(ङ) आगे अंग्रेजी न्यायालयों द्वारा 'प्रतिकूल प्रभाव का सारवान खतरा' शब्दों के इस रूप में निर्वचन से कि जहां 'कोई सारवान खतरा नहीं है' या 'कोई

दूरस्थ खतरा नहीं है' और 'प्रतिकूल प्रभाव' शब्द को शासित करने वाले विशेषण की अनुपस्थिति की दृष्टि से, हमारा विचार है कि यू.के. एक्ट की धारा 4(2) में 'प्रतिकूल प्रभाव का सारवान खतरा' शब्दों के स्थान पर, 'स्थगन' आदेशों को पारित करने के लिए न्यायालय को शक्तियां देने वाली प्रस्थापित धारा में, हमें

" गंभीर प्रतिकूल प्रभाव का वास्तविक खतरा"

शब्दों का उपयोग करना चाहिए जिससे कि जोर केवल ' खतरा' शब्द पर ही न हो किंतु ' प्रतिकूल' शब्द पर भी हो ।

(च) यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि हम धारा 3 में, जो धारा 2 में न्याय के प्रशासन में 'बाधा डालने' या 'बाधा डालने के लिए प्रवृत्त' के बारे में या धारा 3 में 'न्याय का अनुक्रम' शब्दों के बारे में है, इन शब्दों का (गंभीर प्रतिकूल प्रभाव का महत्वपूर्ण खतरा) उपयोग क्यों नहीं कर रहे हैं ।

इसका कारण यह है कि धारा 2(ज) और 3 में प्रयुक्त शब्द परिभाषित करते हैं कि कौन सा प्रकाशन 'आपराधिक अवमान' हो सकता है किंतु 'पूर्व निर्बन्धन' के किसी आदेश को पारित करके वाक् स्वतंत्रता को निर्बन्धित करने का प्रश्न, जैसा यू.के. एक्ट, 1981 की धारा 4(2) में है, अधिक कठोर शर्तों की अपेक्षा करता है । इसलिए प्रकाशन के बारे में स्थगन आदेशों को पारित करने के प्रयोजनों के लिए, यह आवश्यक है कि " गंभीर प्रतिकूल प्रभाव का महत्वपूर्ण खतरा" शब्दों का उपयोग किया जाए । पूर्व निर्बन्धन, जैसा कि उच्चतम न्यायालय द्वारा रिलायंस पेट्रोकैमिकल्स में इंगित किया गया है, अनुच्छेद 19(1)(क) के अधीन प्रकाशन के लिए प्रेस के अधिकार पर गंभीर अधिक्रमण है और उसमें केवल इसलिए बाधा नहीं डाली जा सकती क्योंकि प्रकाशन न्याय के अनुक्रम में बाधा डालता है या बाधा डालने की ओर प्रवृत्त है, जैसा कि धारा 2(ग) या धारा 3 में कथित है । पूर्व निर्बन्धन अधिक कठोर शर्तों की अपेक्षा करता है ।

(छ) अगला प्रश्न यह है कि किस न्यायालय को स्थगन आदेश पारित करने चाहिए । हमारी दृष्टि से ऐसी शक्तियां अधीनस्थ न्यायालयों में, जहां दांडिक कार्यवाहियां 'सक्रिय' हैं, निहित नहीं की जा सकती । यह इसलिए है क्योंकि 1971 के अधिनियम के अधीन अधीनस्थ न्यायालयों को अवमान के लिए कार्यवाही करने की कोई शक्ति नहीं है । धारा 15(2) के अधीन वे केवल उच्च न्यायालय को 'निर्देश' कर सकते हैं ।

आगे वाक् स्वतंत्रता के अधिकार और संदिग्ध / अभियुक्त के सम्यक् प्रक्रिया अधिकार का संतुलन, जैसा मेनका गांधी के मामले में स्पष्ट किया गया है, उच्च न्यायालय द्वारा, जो कि संवैधानिक न्यायालय है, अधिक समुचित रूप से किया जा सकता है ।

स्थगन आदेशों को पारित करने के प्रयोजन के लिए उच्च न्यायालय की न्यायपीठ में कम से कम दो न्यायाधीश होंगे ।

(ज) प्रकाशन के स्थगन का यह अभिप्राय नहीं है कि उसका परिणाम पूर्ण स्थगन होगा । प्रारंभ में स्थगन का कोई आदेश अवश्य ही अस्थायी होना चाहिए और वह एक पक्षीय रूप से पारित किया जा सकता है और केवल एक सप्ताह के लिए होना चाहिए जिससे वह मीडिया को उसके परिवर्तन या रद्दकरण के लिए आगे आने में समर्थ बना सके । निःसंदेह निर्बन्धन का प्रारंभिक आदेश मीडिया में अवश्य प्रकाशित किया जाना चाहिए जिससे कि मीडिया को आदेश के पारित किए जाने के बारे में और आदेश में परिवर्तन कराने / उसे रद्द कराने के बारे में जानने का अवसर प्राप्त होगा ।

(झ) तथापि, एक सप्ताह की समाप्ति पर स्थगन आदेश के व्यपगत हो जाने का खतरा होगा यदि कोई आवेदन मीडिया द्वारा उसमें परिवर्तन या उपांतरण के लिए फाइल नहीं किया जाता है और एक सप्ताह में उसमें कोई परिवर्तन/उसका रद्दकरण मंजूर नहीं किया जाता है । अतः यह आवश्यक है कि विधि द्वारा उसके

स्वतः विस्तारण के लिए उपबंध किया जाए, यदि एक सप्ताह के भीतर कोई आवेदन फाइल नहीं किया जाता है या जहां आदेश में एक सप्ताह के भीतर कोई परिवर्तन या उसका रद्दकरण नहीं किया जाता है । निःसंदेह ऐसे स्वतः विस्तारण के पश्चात् भी, मीडिया उसमें परिवर्तन या रद्दकरण के लिए आवेदन कर सकता है ।

(ञ) अतः हम धारा 14क के अंतःस्थापन की सिफारिश करते हैं, जैसा कि उपाबद्ध विधेयक की धारा 6 में कहा गया है ।

(4) हम धारा 14ख का भी प्रस्ताव करते हैं जिसके अधीन स्थगन आदेश का कोई भंग अर्थात् जहां मीडिया स्थगन आदेश के भंग में कोई प्रकाशन करता है, वह न्यायालय के अवमान के बराबर होगा जिसके लिए उच्च न्यायालय आपराधिक विधि के अनुसार अवमान के लिए कार्रवाई कर सकेगा । (यह भी विधेयक की धारा 6 में अंतर्विष्ट है) :

हम ' विधि के अनुसार', शब्द का उपयोग कर रहे हैं जिससे कि उच्च न्यायालय न्यायालय अवमान अधिनियम के अधीन या संविधान के अनुच्छेद 215 के अधीन कार्यवाही कर सकता है ।

(5) हमने प्रकाशनों के संबंध में स्थगन आदेशों को पारित करने और ऐसे किसी आदेश के भंग के प्रयोजन के लिए यथा उपर्युक्त धारा 14क और धारा 14ख का प्रस्ताव किया है । किंतु जैसा उपर्युक्त धारा के अधीन हमारे विचार विमर्श में कथित है, एक अधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता किसी अधीनस्थ न्यायालय के आपराधिक अवमान के लिए वहां दंड के बारे में है, जहां दांडिक कार्यवाहियां धारा 3 की उपधारा (2) में कथित रूप में सक्रिय हों ।

(6) जहां तक संशोधनकारी अधिनियम के लागू होने का संबंध है, वह ऐसे प्रकाशनों को, जो धारा 3 की उपधारा (2) के भीतर सक्रिय दांडिक कार्यवाहियों के संबंध में दांडिक अवमान के बराबर हों, जो संशोधनकारी अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात् किए गए हों, लागू होगा । यह विधेयक की धारा 7 में अंतर्विष्ट है ।

इन आधारों पर एक प्रारूप विधेयक इसके साथ संलग्न है ।

(7) मीडिया व्यक्तियों को विधि के कतिपय पहलुओं के बारे में प्रशिक्षित किया जाना :

मीडिया की स्वतंत्रता आत्यंतिक नहीं है, अतः प्रिन्ट और इलेक्ट्रानिक मीडिया से संबंधित मीडिया व्यक्तियों को अनुच्छेद 19(1)(क) के अधीन अधिकार के विस्तार के बारे में और इस बारे में कि अनुच्छेद 19(2) के अधीन क्या प्रकाशित किए जाने के लिए अनुज्ञात नहीं है, पर्याप्त जानकारी से सज्जित करना होगा । संवैधानिक विधि, मानव अधिकार, जीवन और स्वतंत्रता का संरक्षण, मानहानि से संबंधित विधि और न्यायालय का अवमान से संबंधित पहलू मीडिया के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं ।

यह आवश्यक है कि पत्रकारिता के पाठ्यक्रम में ऊपर निर्दिष्ट विधि के विभिन्न पहलू होने चाहिए । यह भी आवश्यक है कि पत्रकारिता और विधि में डिप्लोमा और डिग्री पाठ्यक्रम हों ।

हम तदनुसार सिफारिश करते हैं ।

(न्यायमूर्ति एम. जगन्नाथ राव)
अध्यक्ष

(आर. एल. मीना)
उपाध्यक्ष

(डा. डी. पी. शर्मा)
सदस्य सचिव

न्यायालय अवमान (संशोधन) विधेयक, 2006

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 (1971 का 70) के उपबंधों का संशोधन करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के सत्तावनवे वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :-

संक्षिप्त नाम और प्रारंभ ।

1. (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम न्यायालय अवमान (संशोधन) अधिनियम, 2006 है ।

(2) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा, जो राजपत्र में भारत सरकार द्वारा अधिसूचित की जाए ।

परिभाषाएं ।

2. इस अधिनियम में ' मूल अधिनियम' शब्दों से न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 अभिप्रेत होगा ।

धारा 2 का संशोधन ।

3. मूल अधिनियम की धारा 2 में, एक स्पष्टीकरण धारा 2 के खंड (ग) के नीचे अंतःस्थापित किया जाएगा :

"स्पष्टीकरण : प्रकाशन के अंतर्गत प्रिन्ट में प्रकाशन, रेडियो प्रसारण, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, केबिल टेलीविजन नेटवर्क, विश्वव्यापी वेब हैं" ।

मूल अधिनियम की धारा 3 का संशोधन ।

4. (क) मूल अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) में-

"जो प्रकाशन के समय लंबित किसी सिविल या दांडिक कार्यवाही के संबंध में न्याय के अनुक्रम में हस्तक्षेप करती है या जिसकी प्रवृत्ति उसमें हस्तक्षेप करने की है अथवा जो उसमें बाधा डालती है या जिसकी प्रवृत्ति उसमें बाधा डालने की है, उस दशा में न्यायालय अवमान का दोषी नहीं होगा जिसमें उस समय उसके पास यह विश्वास करने के समुचित आधार नहीं थे कि वह कार्यवाही लंबित थी"

शब्दों के स्थान पर निम्नलिखित शब्द रखे जाएंगे, अर्थात् -

"जो प्रकाशन के समय लंबित किसी सिविल या दांडिक कार्यवाही के संबंध में न्याय के अनुक्रम में हस्तक्षेप करती है या जिसकी प्रवृत्ति उसमें हस्तक्षेप करने की है अथवा जो उसमें बाधा डालती है या जिसकी प्रवृत्ति उसमें बाधा डालने की है, उस दशा में न्यायालय अवमान का दोषी नहीं होगा जिसमें उस समय उसके पास यह विश्वास करने के समुचित आधार नहीं थे कि वह कार्यवाही सक्रिय थी" ।

(ख) मूल अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (2) में-

"किसी ऐसी सिविल या दांडिक कार्यवाही के संबंध में, जो प्रकाशन के समय लंबित नहीं है"

शब्दों के स्थान पर निम्नलिखित शब्द रखे जाएंगे, अर्थात्-

"किसी ऐसी सिविल या दांडिक कार्यवाही के संबंध में, जो सक्रिय नहीं है" ।

(ग) उपधारा (3) के नीचे स्पष्टीकरण में, "इस धारा के प्रयोजनों के लिए" शब्दों के स्थान पर, "इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए" शब्द रखे जाएंगे ।

(घ) स्पष्टीकरण में, खंड (क) में,

(i) कोष्ठक और अक्षर (क) के पूर्व आने वाले "लंबित कही जाती है" शब्दों के स्थान पर, "सक्रिय कही जाती है" शब्द रखे जाएंगे ।

(ii) खंड (ख) में आने वाले "दंड प्रक्रिया संहिता, 1898" शब्दों के स्थान पर, "दंड प्रक्रिया संहिता, 1973" शब्द रखे जाएंगे ।

(iii) खंड (ख) (i) के स्थान पर, निम्नलिखित खंड (ख) (i) रखा जाएगा, अर्थात्-

"(i) जहां वह किसी अपराध के किए जाने से संबंधित है वहां जब कोई व्यक्ति गिरफ्तार किया जाता है या जब आरोप पत्र या चालान फाइल किया जाता है अथवा जब अपराधी के विरुद्ध न्यायालय यथास्थिति, समन या वारंट निकालता है, जो भी पूर्वतर हो, और ।"

(iv) उपखंड (ख) (ii) के पश्चात् आने वाले " किसी सिविल या दांडिक कार्यवाही के मामले में तब तक लंबित बनी रही समझी जाएगी" शब्दों के स्थान पर, " किसी सिविल या दांडिक कार्यवाही के मामले में तब तक सक्रिय बनी रही समझी जाएगी" शब्द रखे जाएंगे ।

(ङ) स्पष्टीकरण के खंड (ख) में, " जिसे सुन लिया गया है और अंतिम रूप से विनिश्चित कर दिया गया है" शब्दों के पश्चात् आने वाले " केवल इस बात के ही कारण लंबित नहीं समझी जाएगी" शब्दों के स्थान पर, " केवल इस बात के ही कारण सक्रिय नहीं समझी जाएगी" शब्द रखे जाएंगे ।

धारा 10क का अंतःस्थापन ।

5. निम्नलिखित धारा को धारा 10 के पश्चात् अंतःस्थापित किया जाएगा, अर्थात्-

"प्रकाशन द्वारा अधीनस्थ न्यायालय के आपराधिक अवमान का संज्ञान ।

10क. धारा 2 के खंड (ग) के उपखंड (ii) और उपखंड (iii) के अंतर्गत आने वाले प्रकाशनों से उद्भूत होने वाले उच्च न्यायालय के अधीनस्थ

न्यायालयों के आपराधिक अवमान के संबंध में धारा 15 की उपधारा (2) में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, उच्च न्यायालय स्वप्रेरणा से या धारा 15 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट व्यक्तियों द्वारा किए गए प्रस्ताव पर कार्रवाई कर सकता है ।

परंतु यह कि महाधिवक्ता या राजपत्र में केंद्रीय सरकार द्वारा अधिसूचित विधि अधिकारी की सहमति अभिप्राप्त करना आवश्यक नहीं होगा, जैसा धारा 15 की उपधारा (1) में कथित है ।"

6. धारा 14क और धारा 14ख का अंतःस्थापन ।

निम्नलिखित धाराएं मूल अधिनियम की धारा 14 के पश्चात् अंतःस्थापित की जाएंगी, अर्थात्-

"मीडिया द्वारा प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले प्रकाशनों के स्थगन के लिए उच्च न्यायालय के आदेश ।

14क. (1) किसी दांडिक कार्यवाही में, जो सक्रिय है, उच्च न्यायालय एक पक्षीय रूप से साधारण निदेश जारी कर सकेगा, जब कभी उसे ऐसा करना आवश्यक प्रतीत होता है कि कोई मामला, जिसका प्रकाशन ऐसी कार्यवाही के हेतुक के लिए या उन कार्यवाहियों में अथवा किसी अन्य दांडिक कार्यवाही में या ऐसी कार्यवाही के किसी भाग में, सक्रिय या आसन्न, गंभीर प्रतिकूल प्रभाव का वास्तविक खतरा कारित कर सकता है, मीडिया या किसी व्यक्ति द्वारा, उसके आदेश की तारीख से सात दिन की प्रारंभिक अवधि के लिए, प्रकाशित नहीं किया जाएगा या यह कि ऐसा मामला शर्तों के अधीन रहते हुए प्रकाशित किया जाएगा और उच्च न्यायालय ऐसे किसी आदेश के प्रकाशन के लिए निदेशित कर सकेगा ।

(2) उपधारा (1) के अधीन कोई आदेश उच्च न्यायालय द्वारा-

(क) महाधिवक्ता या धारा 15 की उपधारा (1) के खंड (क) में निर्दिष्ट किसी विधि अधिकारी द्वारा या

(ख) किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा जिसे गिरफ्तार किया गया है या जो ऐसी आपराधिक कार्यवाहियों में कोई अपराधी है, जिसके विरुद्ध न्यायालय द्वारा कोई आरोप पत्र या चालान फाइल किया गया है या समन अथवा वारंट निकाला गया है, या

(ग) किसी व्यक्ति द्वारा, जो उपधारा (1) में निर्दिष्ट खतरे और प्रतिकूल प्रभाव से बचने में हितबद्ध है,

किए गए आवेदन पर पारित किया जा सकेगा ।

(3) उपधारा (1) के अधीन पारित शर्तों के साथ या उनके बिना, प्रकाशन के स्थगन के किसी आदेश में उच्च न्यायालय द्वारा मीडिया के प्रतिनिधियों की प्रेरणा पर या ऐसे परिवर्तन या रद्दकरण में हितबद्ध किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उपधारा (1) में निर्दिष्ट सात दिन की अवधि के भीतर या उपधारा (4) में यथा उपबंधित ऐसे आदेश के विस्तार की अवधि के पश्चात् उच्च न्यायालय में उसके लिए किसी आवेदन के फाइल किए जाने पर, परिवर्तन किया जा सकेगा या उसे रद्द किया जा सकेगा ।

(4) यदि उपधारा (2) में कथित रूप में सात दिन की अवधि के भीतर ऐसे परिवर्तन या रद्दकरण के लिए कोई आवेदन फाइल नहीं किया जाता है या यदि फाइल किया जाता है तो सात दिन की उक्त अवधि के भीतर उसमें उपांतरण नहीं किया जाता है, तो उपधारा (1) के अधीन पारित आदेश का सात दिन के पश्चात् विस्तार हो जाएगा जब तक कि उसमें सात दिन के भीतर फाइल किए गए या पूर्वोक्त सात दिन के पश्चात् फाइल किए गए किसी आवेदन द्वारा परिवर्तन न किया गया हो या उसे रद्द न किया गया हो ।

स्पष्टीकरण- इस धारा और धारा 14ख के प्रयोजनों के लिए, उच्च न्यायालय से उच्च न्यायालय की ऐसी न्यायपीठ अभिप्रेत होगी जिसमें कम से कम दो न्यायाधीश हों ।

धारा 14क के अधीन पारित किसी आदेश के अतिक्रमण के लिए आपराधिक अवमान हेतु कार्रवाई ।

14ख. जहां कोई व्यक्ति धारा 14क के अधीन पारित प्रकाशन के स्थगन के किसी आदेश का या आदेशों में अधिकथित शर्तों का अतिक्रमण करता है, वहां उच्च न्यायालय विधि के अनुसार उच्च न्यायालय में आपराधिक अवमान के लिए कार्यवाहियां प्रारंभ कर सकेगा और दंड के बारे में ऐसा आदेश पारित कर सकेगा जो वह ठीक समझे ।"

अधिनियम का लागू होना ।

"7. इस अधिनियम द्वारा यथा संशोधित मूल अधिनियम के उपबंध ऐसी दांडिक कार्यवाही के संबंध में, जो मूल अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (2) में कथित रूप में सक्रिय है या ऐसी कार्यवाहियों के संबंध में जो मूल अधिनियम की धारा 14क में कथित रूप में सक्रिय या सन्निकट हैं, किसी व्यक्ति द्वारा किए गए प्रकाशनों को लागू होंगे ।"